मृच्छकटिक : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ० (कु०) सुषमा

इण्डो-विज़न प्राइवेट लिमिटेड
II ए-२२० नेहरू नगर, गाजियाबाद—२०१००१ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण १९८५

मूल्य ६० रु०

मृच्छकटिक : एक आलोचनात्मक अध्ययन
लेखिका : डॉ० (कु०) सुषमा
प्रकाशक : इण्डोविजन प्राइवेट लिमिटेड, II ए-२२० नेहरू नगर,
गाजियाबाद, (उ० प्र०) २०१००१
मुद्रक : तथागत प्रिंटिंग प्रेस, १५० तेजाब मिल,
जी० टी० रोड, गाजियाबाद।

प्राक्कथन
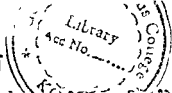
संस्कृत-साहित्य की विशाल नाट्य-परम्परा में शूद्रक प्रणीत, मृच्छकटिक जैसे प्रकरण के विषय में संस्कृत-साहित्य के इतिहास के ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और आधुनिक काल में मृच्छकटिक और शूद्रक के विविध पक्षों को आधार बनाकर लिखा जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक भी मृच्छकटिक के विविध पक्षों का एक साथ ही परिचय देने की दिशा में एक लघु प्रयास है। यह पुस्तक मुख्यतः विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में एम० ए० संस्कृत के छात्र-छात्राओं की अपेक्षाओं को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। इसमें सामान्यतः परीक्षोपयोगी पक्षों को ही अनतिसंक्षिप्त एवं अनतिविस्तृत रूप में सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यदि विश्वविद्यालय-स्तरीय छात्र, जिनके लिए यह पुस्तक मुख्यतः लिखी गई है, और अन्य जिज्ञासु मेधावी पाठक इससे कुछ लाभान्वित हो सकें, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगी। छात्रवृन्द ही इस पुस्तक की उपादेयता का मूल्यांकन करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में संस्कृत विद्वानों के जिन अनेक अमूल्य ग्रन्थों और लेखों इत्यादि से समुचित सहायता ली गई है, उनका उल्लेख पुस्तक में यथास्थान कर दिया है। तथापि प्रो० ए० बी० कीथ, डा० एम० के० डे के विवेचनात्मक ग्रन्थों और डा० रमा शंकर तिवारी-कृत 'महाकवि शूद्रक', डा० शालग्राम द्विवेदी कृत 'मृच्छकटिक', कान्तानाथ तैलंग शास्त्रीकृत 'मृच्छकटिक-समीक्षा' तथा रांगेय राघव कृत 'मिट्टी की गाड़ी' का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। इन सभी विद्वान् मनीषियों के प्रति अपना आभार-प्रदर्शन करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ।

समादरणीय डॉ० महेश भारतीय, रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, एम० एम० एच० कालिज, गाजियाबाद, ने प्रकाशन के कार्य में जो अथक सहयोग एवं परिश्रम किया है, वह अकथनीय है।

इस पुस्तक के प्रकाशक इण्डोविजन प्राइवेट लिमिटेड, गाजियाबाद के प्रति मैं आभार प्रकट करते हुए हर्षातिरेक का अनुभव कर रही हूँ, जिसने इस पुस्तक का यथोचित काल में प्रकाशित करने का भरसक प्रयास किया है।

विनीता
सुषमा

सादर समर्पण

सर्वशास्त्रमयी श्रीमद्भगवद्गीता के मर्मज्ञ, अनन्य उपासक तथा निष्काम कर्मयोगी एवं गीता आश्रम विद्यामंदिर, मुजफ्फरनगर के संस्थापक परम श्रद्धेय दिवंगत गुरुदत्त भाईसाहब जी को

जिनके पावन चरणों में बैठकर सहस्रों जनों ने श्रीमद्भगवद्गीता माँ का दुग्धामृत-पान किया।

संदर्भ ग्रन्थ

महाकवि शूद्रक— डॉ० रमाशंकर तिवारी
मृच्छकटिक— डॉ० शालग्राम द्विवेदी
मृच्छकटिक-समीक्षा— पं० कान्तानाथ तैलंग शास्त्री
मृच्छकटिक— (व्याख्याकार) डॉ० श्रीनिवास शास्त्री
मृच्छकटिक— (,,) पं० ब्रह्मानन्द शुक्ल
मृच्छकटिक अथवा मिट्टी की गाड़ी— अनुवादक—डॉ० रांगेय राघव
शूद्रक— श्री चन्द्रबली पाण्डेय
संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा— श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय और शान्तूराम व्यास
संस्कृत-कवि-दर्शन— डॉ० भोलाशंकर व्यास
संस्कृत-साहित्य का इतिहास— आचार्य बलदेव उपाध्याय
संस्कृत-साहित्य का इतिहास— श्री वाचस्पति गैरोला
संस्कृत-साहित्य का इतिहास— डॉ० वी० वरदाचार्य । अनुवादक—डॉ० कपिल देव द्विवेदी
संस्कृत काव्यकार— डॉ० हरिदत्त शास्त्री
संस्कृत नाटक— प्रो० कीथ, अनुवादक डॉ० उदयभान सिंह
अभिज्ञान-शाकुन्तल— अनुवादक—डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
साहित्यदर्पण— व्याख्याकार—डॉ० सत्यव्रतसिंह एवं डॉ० निरूपण विद्यालंकार
दशरूपक— व्याख्याकार—डॉ० भोलाशंकर व्यास
नाट्यदर्पण— रामचन्द्र गुणचन्द्र
काव्यालंकार सूत्रवृत्ति— वामन

The Little Clay Cart—A. W. Ryder
The Sanskrit Drama—Prof. A. B. Keith
A History of Sanskrit Literature—M. Winternitz
History of Sanskrit Literature—S. K. Dey
The Classical Drama of India—Henry W. Wells
Bhas : A Study—A. D. Pusalkar
The Theatre of the Hindus—H. H. Wilson
Introduction to the Study of Mricchakatika—Dr. G. V. Devasthali
Preface to Mricchakatika—G. K. Bhat.
Drama in Sanskrit Literature—Jagirdar
Charudatta—C R. Deodhar
Indian Drama—Sten Konow
History of Sanskrit Literature—Krishnamachariar

विषय-सूची

१. मृच्छकटिक का कर्तृत्व

मृच्छकटिक का रचयिता कौन ?

संस्कृत-साहित्य में अनेक ग्रन्थ-रत्न ऐसे हैं, जिनके कर्ता और काल का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। यही कारण है कि अधिकांश संस्कृत-विद्वानों के कर्तृत्व तथा समय का परिचय तत्कालीन शास्त्रीय प्रमाणों पर आधारित है। मृच्छकटिक भी एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसके रचयिता के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है।

मृच्छकटिक की प्रस्तावना के अनुसार शूद्रक जाति का द्विज था। यह देखने में बड़ा सुन्दर था। यह एक बड़ा विद्वान् तथा उच्चकोटि का कवि था। यह ऋग्वेद, सामवेद, गणित, वेश्याओं की कला अथवा अग्निवेशकृत चतुष्षष्टिकला और हस्तिशास्त्र का पण्डित था। इसे शंकर जी की अनुकम्पा से परम-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह बड़ा शक्तिशाली तथा पराक्रमी था। इसे बड़े-बड़े शत्रुओं से अथवा बड़े-बड़े हाथियों से बाहु-युद्ध करने का शौक था। यह संग्राम-प्रिय राजा था। इसको द्विजों में मुख्य कहा गया है। यह प्रमादशून्य और तपोनिष्ठ था। इसने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। इसने एक सौ दस वर्ष की दीर्घायु पाई थी। अन्त में अपने पुत्र को राज्य देकर इसने अग्नि में प्रवेश किया।[1]

यद्यपि मृच्छकटिक की प्रस्तावना में राजा शूद्रक को इस नाटक का कर्ता बतलाया गया है, किन्तु इसका आविर्भाव कब हुआ और वह किस देश का राजा था, इस सम्बन्ध में वहाँ कोई संकेत नहीं है। समालोचकों ने मृच्छकटिक के कर्ता के सम्बन्ध में अनेक अनुमान लगाये हैं और अपनी मान्यताओं के समर्थन में अनेकविध युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। विद्वान् समालोचकों की विविध युक्ति-प्रत्युक्तियों से प्रस्तुत विषय के जटिल हो जाने पर भी उनके द्वारा स्वीकृत मान्यताओं के परिशीलन से इस विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

प्रस्तावना में जो कुछ कहा गया है, कुछ विद्वान् उस पर विश्वास नहीं करते। वे शूद्रक को कल्पित पुरुष मानते हैं। कुछ विद्वान् शूद्रक को इतिहास-

---

१. (क) द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः॥ मृच्छकटिक १/३

(ख) ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥ वही १/४

(ग) समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदो वेदविदां तपोधनश्च।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव॥ वही १/५

प्रसिद्ध व्यक्ति तो मानते है किन्तु उसे मृच्छकटिक का कर्ता नही मानते । कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जो शूद्रक को इतिहासप्रसिद्ध पुरुष तथा मृच्छकटिक का कर्ता भी मानते है । कुछ विद्वान् मृच्छकटिक के शूद्रक को इतिहास-प्रसिद्ध किसी राजा या कवि से अभिन्न मानते हैं । इस प्रकार मतवैभिन्य के कारण, निश्चित प्रमाणों के अभाव मे विद्वान् समालोचकों ने अनेक कल्पनायें की हैं । मृच्छकटिक के कर्तृत्व-विषयक मतभेदो को निम्न वर्गों मे सन्निविष्ट किया जा सकता है—

१- मृच्छकटिक का कर्ता कोई अज्ञात कवि है—डा० सिलवाँ लेवी तथा प्रो० कीथ आदि ।
२- मृच्छकटिक दण्डी की रचना है—डा० पिशेल आदि ।
३- मृच्छकटिक भास की रचना है—श्री नेरूरकर आदि ।
४- मृच्छकटिक का रचयिता राजा शूद्रक है—डा० देवस्थली आदि ।

१. डा० सिलवाँ लेवी का मत—डा० सिलवाँ लेवी का मत है कि मृच्छकटिक शूद्रक की कृति नही है, अपितु किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की और अपनी कृति मे प्राचीनता का पुट लाने के उद्देश्य से उसे शूद्रक की कृति के रूप मे प्रसिद्ध कर दिया ।

डा० लेवी ने अपनी कल्पना का समर्थन करने के लिये कहा है कि—'अन्य कवि अपनी कृति को कालिदास से प्राचीन सिद्ध करना चाहता था, अतः कालिदास के आश्रयदाता विक्रमादित्य से प्राचीन राजा शूद्रक के नाम पर उसे प्रसिद्ध कर दिया ।' किन्तु यह युक्ति पुष्ट नही है । मानव-स्वभाव के अनुसार जो कवि परिश्रम से ग्रन्थ तैयार करेगा, उसका श्रेय भी वह स्वयं ही लेगा । बिना विवशता के वह अपने ग्रन्थ को दूसरे के नाम पर क्यो चलायेगा । भला ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो अपनी कृति को दूसरे नाम से प्रसिद्ध करे ?

प्रो० कीथ का मत—प्रो० कीथ भी शूद्रक को मृच्छकटिक का कर्ता नही मानते । वे शूद्रक को एक काल्पनिक व्यक्ति (Legendary person) मानते हैं । शूद्रक एक अजीब नाम है । सामान्यतः राजाओं का ऐसा नाम नही होता । भास-कृत चारुदत्त नाटक को बढ़ाकर मृच्छकटिक के रूप मे प्रस्तुत करने वाले कवि ने काल्पनिक शूद्रक के नाम पर ही अपनी कृति को प्रसिद्ध कर दिया ।

प्रो० कीथ के मत के दो अंश हैं—१. शूद्रक एक काल्पनिक पुरुष है और (२) मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक नहीं, कोई दूसरा कवि है ।

प्रो० कीथ के मत के प्रथम अंश के सम्बन्ध मे विद्वान् समीक्षकों का कथन है कि शूद्रक का नाम संस्कृत-साहित्य के अनेक ग्रन्थों मे आया है । अतः उसे काल्पनिक बताना उचित नही प्रतीत होता है । इस सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा ।

डा० कीथ के मत के दूसरे अंश से विद्वानों ने अपनी सहमति प्रकट की है । इस सम्बन्ध मे श्री कान्तानाथ तैलंग-कृत विवेचन प्रस्तुत है—"हमारे विचार से

भी शूद्रक मृच्छकटिक के कर्ता नही हैं। इसके कर्ता कोई दूसरे ही कवि हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कवि ने भास का दरिद्रचारुदत्त देखा। उन्हे वह अपूर्ण प्रतीत हुआ। उन्होंने आवश्यकता और अपनी रुचि के अनुसार दरिद्रचारुदत्त मे परिवर्तन किये। उसकी कथा के साथ अपनी कल्पना से रची हुई अथवा गुणाढ्य की बृहत्कथा से ली हुई गोपालदारक आर्यक के विद्रोह की कथा बट दी। इस प्रकार मृच्छकटिक तैयार हुआ। कवि ने अपना नाम जानबूझ कर छिपाया। प्रस्तावना मे शूद्रक के साथ 'किल' शब्द का प्रयोग यही सूचित करता है। कवि ने इस शब्द का प्रयोग एक दो बार नही, चार-चार बार किया है। तीन बार तो इसका प्रयोग शूद्रक के साथ किया गया है और एक बार चारुदत्त के साथ। प्रस्तावना मे शूद्रक का नाम बताने वाले पद्य देने के पहले ही कवि ने लिखा है—'एतत् कवि. किल'।[1] इसके बाद पुन. पांचवें और सातवें पद्य मे शूद्रक के साथ 'किल' आया है। *इस अव्यय का प्रयोग प्रायः ऐतिह्य, अलीकता या सम्भावना* सूचन करने के लिये किया जाता है। यह अधिकतर अनिश्चय व्यक्त करता है। 'लब्ध्वा चायु. शताब्द दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्ट.'[2]—बभूव[3] और 'चकार'[4] के प्रकाश मे यहाँ 'किल' शब्द ऐतिह्य आदि अर्थों का ही बोध कराता है। कवि को अपनी निश्चित आयु का प्रमाण कैसे मालूम हो सकता है? बभूव और चकार का लिट् लकार भी परोक्षभूत का बोधक होने के कारण ऐतिह्य आदि अर्थों का ही समर्थन करता है। इसके अतिरिक्त चकार और बभूव के प्रकाश मे यह भी मानना पड़ेगा कि शूद्रक के मरने के बहुत काल बाद प्रस्तावना के श्लोक प्रक्षिप्त किये गये। ऐसी स्थिति मे यह प्रश्न उठेगा कि आखिर शूद्रक ने अपना नाटक बिना अपना नाम दिये ही क्यों चला दिया? वह तो राजा था, उसे किसी का डर तो था नही। इसके अतिरिक्त बहुत काल तक किसी को उसका नाम डालने की क्यों नहीं सूझी? इन प्रश्नो का कोई सन्तोषप्रद उत्तर नही मिलता। हमारे विचार मे यदि ये श्लोक प्रक्षिप्त होते तो इनका स्वरूप ही दूसरा होता। यदि सच्चे दिल से केवल कवि का नाम स्थायी बनाने तथा उनका परिचय देने के लिये ही ये श्लोक प्रक्षिप्त किये गये होते, तो इनमे संदेह उत्पन्न करने वाली विचित्र बातें तथा परोक्षभूत की क्रिया न रखी गई होती। अतः हम तो यही मानना श्रेयस्कर समझते हैं कि यह नाटक शूद्रक का नही है। किसी दूसरे कवि ने उसे रचकर शूद्रक के नाम से चला दिया है। शूद्रक इतिहास-सिद्ध व्यक्ति थे या नही इससे कोई मतलब नही।

इस सम्बन्ध मे एक प्रश्न और यह है कि जिस कवि ने भी यह नाटक बना कर शूद्रक के नाम पर चलाया, उसने ऐसा क्यों किया। हमारे विचार से इसके

---

१. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ४
२. वही, प्रथम अंक, पृ० ६ (१।४)
३. वही, प्रथम अंक, १।५
४. वही प्रथम अंक, १।७

दो कारण हैं। पहला तो यह कि जिस कवि ने भी यह नाटक तैयार किया होगा उसने यह सोचा होगा कि इसका आधा भाग तो भास का किया हुआ है, केवल आधा ही मेरा है। ऐसी स्थिति में समूचे नाटक को मैं अपना कैसे कहूं ? यदि मैं ऐसा करूंगा तो लोग मुझे चोर कहेंगे। दूसरा यह कि इस नाटक में कवि ने जो घटना चक्र दिखलाया है, वह उस समय के सामाजिक नियमों और विचारधारा के सर्वथा प्रतिकूल है। भास ने वसन्तसेना को चारुदत्त के घर जाने के लिये तैयार करके ही नाटक समाप्त किया परन्तु मृच्छकटिक के कर्ता ने तो चारुदत्त और शर्विलक के दो-दो ब्राह्मणों का वेश्याओं के साथ विवाह कराकर छोड़ा। आज के जगत् में ये घटनाएं भले ही असामान्य न प्रतीत होती हों, परन्तु उस समय की भावनाओं के प्रकाश में विचार करने पर कवि का अपना नाम न प्रकट करने का कारण मिल जायेगा। घटना-चक्र इतना क्रांतिकारी होने पर भी नाटककला की दृष्टि से उत्तम होने के कारण पढ़ने-पढ़ाने में चल पड़ा।"[1]

२ पिशेल का मत—पिशेल दण्डी को मृच्छकटिक का कर्ता मानते हैं। उनका कहना है कि दण्डी के तीन प्रबन्ध[2] माने गये हैं। उनमें से दशकुमारचरित और काव्यादर्श दो ही उपलब्ध हैं। तीसरा अज्ञात है और वह मृच्छकटिक है। डा० पिशेल ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं— (क) दण्डी के काव्यादर्श[3] में 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' यह पद्य उपलब्ध होता है तथा यही पद्य मृच्छकटिक[4] में भी प्राप्त होता है। इससे यह सम्भावना होती है कि दोनों कृतियाँ एक ही व्यक्ति की हैं। (ख) दशकुमारचरित और मृच्छकटिक में वर्णित सामाजिक दशा में बहुत अधिक समानता है। इससे प्रकट होता है कि दोनों एक ही कवि की कृतियाँ हैं।

डा० पिशेल की युक्तियों में कोई सार-तत्त्व प्रतीत नहीं होता। लिम्पतीव तमोऽङ्गानि श्लोक तो मूलतः भासकृत चारुदत्त नाटक का है। दूसरी युक्ति के सम्बन्ध में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन कृतियों में एक सी सामाजिक दशा का वर्णन होता है, क्या वे एक ही कवि की रचना होती हैं ? इसके अतिरिक्त प्रश्न उठता है कि मृच्छकटिक के साथ दण्डी का असली नाम क्यों नहीं प्रसिद्ध हुआ। अवन्तिसुन्दरीकथा नामक रचना की उपलब्धि के कारण विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि अवन्तिसुन्दरीकथा ही दण्डी की तीसरी रचना है। अतः डा० पिशेल की युक्ति का मूल आधार ही समाप्त हो जाता है।

३. श्री नेरूरकर का मत—श्री नेरूरकर भास को मृच्छकटिक का कर्ता बताते हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि भास के वास्तविक नाम से यह नाटक क्यों

१. मृच्छकटिक-समीक्षा (चौखम्बा)-कान्तानाथ तैलङ्ग शास्त्री पृ० ५-७
२. त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः। —राजशेखर
३. काव्यादर्श २।२२६
४. मृच्छकटिक १।३४

नहीं प्रचलित हुआ ? इस संबंधमें एक बात और विचारणीय है कि मृच्छकटिक की प्रस्तावना में शूद्रक को राजा कहा गया है किंतु भास या दण्डी राजा नहीं हैं। भास ने अपने चारुदत्त नाटक का परिवर्द्धित रूप ही मृच्छकटिक के रूप में प्रस्तुत किया, यह कल्पना भी युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती, अतएव निस्सार है।

शूद्रक कौन था ?

१ स्कन्द पुराण के कुमारिका खण्ड में राजा शूद्रक का उल्लेख किया गया है। कुछ विद्वान् इन्हें ही मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक मानते हैं। इतना ही नहीं, वे इन्हें आन्ध्र वंश के प्रथम राजा सिमुक (सिशुक या सिप्रक) से अभिन्न व्यक्ति मानते हैं। इस कल्पना के आधार पर तो शूद्रक कालिदास और भास दोनों से प्राचीन हो जायेंगे। डा० स्मिथ के अनुसार सिमुक का काल २४० ई० पू० के करीब है। कालिदास का समय प्रथम श० ई० पू० से पहले नहीं ले जाया जा सकता। जो विद्वान् कालिदास का समय प्रथम श० ई० पू० मानते हैं, उनके अनुसार भास का काल द्वितीय श० ई० पू० होगा। इस स्थिति में यह कहना पड़ेगा कि भास ने ही शूद्रक के मृच्छकटिक से कथा की चोरी कर दरिद्रचारुदत्त की रचना की है। किन्तु भाषा और कला की दृष्टि से तुलना करने पर दरिद्रचारुदत्त पुराना प्रतीत होता है। शूद्रक को कालिदास से भी प्राचीन नहीं माना जा सकता। यदि शूद्रक कालिदास से प्राचीन होते, तो कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि प्रसिद्ध नाटककारों के साथ उनका भी उल्लेख किया होता। मृच्छकटिककार को न भास से ही प्राचीन माना जा सकता है और न ही कालिदास से। अतः शूद्रक को सिमुक से अभिन्न मानने की कल्पना उचित नहीं है।

२. पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय का मत—श्री पाण्डेय जी ने शूद्रक को आन्ध्र वंश का वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि माना है। उनका कथन है कि अवन्तिसुन्दरीकथा-सार में इन्द्राणिगुप्त का दूसरा नाम शूद्रक बताया है, अतः वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि ही इन्द्राणीगुप्त अथवा शूद्रक है। यह शूद्रक ही मृच्छकटिक का कर्ता है। शूद्रक पुलुमावि का उपनाम है। इसे सिद्ध करने के लिए पाण्डेय जी ने जो तर्क दिया है, वह इस प्रकार है—"और यदि शब्द के अर्थ को समझें और दण्डी के इन्द्राणिगुप्त को पुलुमावि मान लें, तो इसमें दोष क्या ? इन्द्र का पुलुमावि नहीं, तो पुलोमारि होना तो प्रसिद्ध ही है, फिर इसमें दूर की कोई उड़ान नहीं। हाँ, दुराव की पकड़ अवश्य है।" वस्तुतः नामों के इस प्रकार परस्पर समन्वय में अनेक दोषों की सम्भावना हो सकती है। फिर नामों की ऐसी संगति तो कहीं भी लगाई जा सकती है।

३. डा० देवस्थली का मत—डा० देवस्थली का मत है कि मृच्छकटिक की प्रस्तावना के श्लोक शूद्रक के नहीं हैं, किन्तु इस बात को अप्रमाणित सिद्ध करने

के लिए उनके पास कोई तर्क नहीं । इससे यह कहा जा सकता है कि वे परम्परा के पुजारी हैं । उनका कथन है कि हमारा इतिहास का ज्ञान अपूर्ण होने के कारण हम शूद्रक के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहने में असमर्थ हैं । आज हम प्राचीन भारत के किसी राजा से शूद्रक की अभिन्नता नहीं सिद्ध कर सकते, परन्तु वे हमारी ही तरह इस जगत् के प्राणी थे और मृच्छकटिक उन्हीं की रचना है । जब तक इस बात का सप्रमाण खण्डन नहीं किया जाता, तब तक हम यही मानते हैं । इस प्रकार डा० देवस्थली ने अपने मत के समर्थन के लिए कोई प्रमाण नहीं दिया है, अपितु परम्परागत विचारों को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया है ।

४. **प्रो० कोनो का मत**—प्रो० कोनो का कथन है कि आभीर वंश का राजा शिवदत्त ही शूद्रक है । इसका राज्यकाल ईसा की तृतीय शताब्दी है । प्रो० कोनो के मत का आधार 'गोपालदारक आर्यक' यह शब्द है, क्योंकि आभीर और गोपाल समानार्थक है । आभीर राजा शिवदत्त को शूद्रक मानने की कल्पना को पुष्ट करने के लिए मृच्छकटिक के गोपालदारक आर्यक में आभीर राजा शिवदत्त की कल्पना करना व्यर्थ है । भास ने अपने **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** में उज्जयिनी के राजा प्रद्योत (ई० पू० ५००) के पुत्रों के रूप में भी गोपाल और पालक का उल्लेख किया है ।

५. कुछ विद्वानों के अनुसार मृच्छकटिक के श्लोक ८.३४ में वर्णित **'रुद्रो राजा'** क्षत्रप वंश का रुद्रदामन् ही है, जिसका समय १३० ई० है । वस्तुतः यह कल्पना नाम मात्र के साम्य पर आधारित हैं, अतः तथ्यहीन है ।

निष्कर्ष—राजशेखर का कथन है कि रामिल और सोमिल ने **'शूद्रक कथा'** नाम का ग्रन्थ लिखा था । बाण ने **कादम्बरी** और **हर्षचरित** में शूद्रक का उल्लेख किया है, यथा **कादम्बरी** में शूद्रक की राजधानी विदिशा बतलाई है और हर्षचरित में चन्द्रकेतु के शत्रु के रूप में शूद्रक का उल्लेख किया है । दण्डी ने **दशकुमारचरित** और **अवन्तिसुन्दरीकथा** में शूद्रक का निर्देश किया है । सोमदेव ने **कथासरित्सागर** में, कल्हण ने **राजतरंगिणी** में शूद्रक के विषय में लिखा है । **वेतालपञ्चविंशति** में भी शूद्रक का नाम आया है जहाँ शूद्रक की राजधानी वर्धमान या शोभावती बतलाई गई है । इसके अतिरिक्त शूद्रकवध, विक्रान्तशूद्रक और शूद्रकचरित नाम के ग्रन्थों का भी शूद्रक से स्पष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है । यद्यपि ये ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं, किन्तु अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में इनका प्रासंगिक वर्णन मिलता है । वामन ने **काव्यालंकारसूत्रवृत्ति** में शूद्रक का नामतः निर्देश किया है— **"शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेषु"** (अधि० ४, अ०—२-४) । वामन ने (८वीं श०) मृच्छकटिक के कई उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं ।[1] **कादम्बरी** का शूद्रक भले ही

१. (क) द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम्—अधि० ४, अ० ३/२३
(ख) याता वनिर्भवति मद्गृहदेहलीना । अधि० ५, अ० १/३

कल्पना की सृष्टि माना जा सकता है अथवा यह भी सम्भव हो सकता है कि बाणभट्ट ने अत्यन्त-प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध किसी राजा के नाम से अपने पात्र को शूद्रक की संज्ञा दी हो, किन्तु अन्य इतने ग्रन्थों मे शूद्रक के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा गया है, वह सब यह मानने के लिए विवश कर देता है कि निश्चय ही शूद्रक नाम के कोई व्यक्ति अवश्य रहे है, यह वृतान्त काल्पनिक नही है। जिस व्यक्ति का इतने ग्रन्थों में निर्देश हो, उसे सहसा काल्पनिक कहना युक्तिसंगत प्रतीत नही होता।

यदि मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक न होकर कोई अन्य कवि है तो उसने इसे शूद्रक के नाम से क्यों प्रसिद्ध किया, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसका एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि किसी कवि-कलाकार ने भास का दरिद्रचारुदत्त देखा होगा, उसको उसमें अपूर्णता नजर आई होगी। अतः उसने इसे पूर्ण किया। उसने अपनी रुचि और आवश्यकतानुसार दरिद्रचारुदत्त मे परिवर्तन भी किये। उसकी कथा के साथ अपनी कल्पित अथवा गुणाढ्य की बृहत्कथा से ली हुई गोपालदारक आर्यक की कथा जोड़ दी। इस प्रकार मृच्छकटिक तैयार हुआ। किंतु कवि ने अपना नाम यह सोचकर छिपाया कि इसका पूर्वार्द्ध भास-रचित है, केवल उत्तरार्द्ध ही मेरा है। ऐसी स्थिति में चोरी का दोषारोपण होता है। सम्भवतः इस कारण से उसने नामोल्लेख का विचार ही नही किया।

दूसरा कारण यह भी प्रतीत होता है कि नाटक मे कवि ने जो घटना-चक्र दिखलाया है, वह तत्कालीन समाज के नियमों और विचारधारा के सर्वथा विरुद्ध है। भास ने तो वसन्तसेना को चारुदत्त के घर जाने के लिए तैयार करके ही नाटक की समाप्ति कर दी, किन्तु मृच्छकटिक के रचयिता ने तो चारुदत्त और शर्विलक दो-दो ब्राह्मणों का वेश्याओं के साथ विवाह कर दिया। इस बात से ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार ने अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में सहमति प्रकट की है। इसके अतिरिक्त कवि ने ब्राह्मणों को चोर, जुआरी और वेश्याओं के संगीत मे अनुरक्त दिखलाया है। नीच कोटि के ब्राह्मणों के साथ-साथ उच्चकोटि के ब्राह्मणों के द्वारा ऐसा कराकर सारे ब्राह्मण-समाज को ही भ्रष्ट दिखलाया है। कवि ने क्षत्रियों को भी नीचा दिखाया है, वे भी अपनी मान-मर्यादा खो चुके थे। राजा पालक को क्रूर और दुराचारी दिखाया है। वह मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र के ग्रन्थों की अवहेलना करने वाला था। उस समय धर्मशास्त्र के उच्च ग्रन्थों की उपेक्षा एक सामान्य बात थी। शकार के साथ सम्बन्ध जोडकर राजा पालक को नीच जाति की रखैल रखने वाला दिखाकर उसकी हीनता का ही प्रदर्शन नही किया है, अपितु उसे आर्यक के हाथ से मरवाया है। इसके अतिरिक्त राज्य के उच्च पदों पर वीरक और चन्दनक जैसे शूद्रों को अधिष्ठित दिखाया है। इस प्रकार ये सब तथ्य उस समय के समाज के नग्न चित्र को प्रस्तुत करते हैं। ऐसा कलाकार यदि अपनी रचना के साथ अपना नाम प्रसिद्ध करता

तो निश्चय ही वह उस समय के समाज—राजा और प्रजा—का कोपभाजन बनता। इसी से मृच्छकटिक के कर्ता के रूप में प्रसिद्ध करने के लिए शूद्रक नाम चुनने का भी रहस्य मिल जाता है।

यदि यह कहा जाये कि नाटक तो शूद्रक का है, केवल प्रस्तावना के श्लोक किसी अन्य कवि के द्वारा प्रक्षिप्त हैं तो ऐसा मानने का स्वभावतः यह अर्थ होगा कि शूद्रक ने अपना नाटक अपने नाम के बिना ही चला दिया। इसके अतिरिक्त 'चकार' और 'बभूव' के आधार पर यह भी मानना पड़ेगा कि शूद्रक के मरने के बहुत समय पश्चात् प्रस्तावना के श्लोक लिखे गये। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न पैदा होगा कि शूद्रक ने अपना नाटक बिना अपना नाम दिये क्यों चला दिया ? इसके अतिरिक्त चिरकाल तक किसी को उसका नाम डालने की सूझ क्यों नहीं आई ? वस्तुतः इन प्रश्नों का कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिलता। यदि ये (प्रस्तावना के) श्लोक प्रक्षिप्त होते, तो इनका स्वरूप ही दूसरा होता। अतः श्लोकों का प्रक्षिप्त होना भी ठीक नहीं लगता।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक शूद्रक द्वारा सम्पादित है। यह शूद्रक आर्यक और गोपालक की भाँति शासक होते हुए भी एक स्वच्छन्द मनोवृत्ति के निरंकुश दाक्षिणात्य कवि है। शूद्रक को कल्पित व्यक्ति कहना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता।

मृच्छकटिक का रचनाकाल—

किसी भी ग्रन्थ का रचनाकाल निर्धारित करने के दो मार्ग हैं। एक तो यह कि ग्रन्थकर्ता का काल निश्चित करके उसे ही ग्रन्थ का काल माना जाए। दूसरा आभ्यंतर और बाह्य प्रमाणों के आधार पर स्वतन्त्र रूप में ग्रन्थ का समय-निर्धारण किया जाए। मृच्छकटिक के सम्बन्ध में कहीं से भी न तो इसके ग्रन्थकर्ता और न ही इसकी निर्माण-तिथि का निश्चित पता चल सका है। अतः इस नाटक का काल आभ्यन्तर और बाह्य प्रमाणों के आधार पर ही अवलम्बित है। इसका रचनाकाल तृतीय श० ई० पू० से लेकर षष्ठ शताब्दी तक दोलायमान है।

विद्वानों के मतानुसार भास का दरिद्रचारुदत्त मृच्छकटिक की अपेक्षा प्राचीन है। यह भी सुनिश्चित है कि मृच्छकटिक का निर्माण भास के दरिद्रचारुदत्त के आधार पर हुआ है। ऐसा मान लेने से भास का समय मृच्छकटिक की ऊपरी सीमा सिद्ध होता है। भास का काल कालिदास के काल पर निर्भर है और कालिदास का काल अभी निश्चित नहीं हुआ है। कालिदास के विषय में निश्चित रूप से यही कहा जाता है कि वह ई० पू० प्रथम श० से लेकर छठी श० ई० के बीच हुए थे। कुछ विद्वान् उन्हें प्रथम श० ई० पू० से लेकर चतुर्थ श० ई० तक मानते हैं। यदि कालिदास को प्र० श० ई० पू० में स्वीकार किया जाये तो भास का काल द्वितीय श० ई० पू० के करीब मानना ठीक होगा और यदि उन्हें (कालिदास को) चतुर्थ श० ई० में माना जाए तो भास को तृतीय श० ई० में मानना होगा। इस

प्रकार द्वितीय श० ई० या तृतीय श० ई० मृच्छकटिक के निर्माण-काल की उपरितम सीमा हुई। निम्नतम सीमा के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं—

आचार्य वामन की मान्यता—वामन ने अपनी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में मृच्छकटिक का उल्लेख किया है। वामन का समय ८ वीं श० ई० माना जाता है। यह मृच्छकटिक के निर्माण काल की निम्नतम सीमा है।

डा० बलदेव उपाध्याय का मत—

पं० बलदेव उपाध्याय जी का कथन है कि दण्डी ने अपने अलंकार-ग्रन्थ काव्यादर्श में मृच्छकटिक के 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' पद्य को उद्धृत किया है। दण्डी को विद्वान् ७ वीं श० ई० में मानते हैं। अत इसी के आसपास मृच्छकटिक की रचना का काल होना चाहिए।

डा० देवस्थली का मत—

डा० देवस्थली का कथन है कि मृच्छकटिक के दो श्लोक और एक पंक्ति पंचतंत्र[1] में मिलती है। *पंचतंत्र का काल ५ वीं श० ई० माना जाता है, अत.* मृच्छकटिक का निर्माण उसी समय होना संभव है। किंतु पंचतन्त्र का काल अभी संदिग्ध है। इसीलिए दण्डी-काल ७ वी श० ई० को ही मृच्छकटिक की निम्नतम सीमा मानना उचित है।

इसी प्रकार कालिदास के काल को ध्यान में रखते हुए मृच्छकटिक का काल ई० पू० २०० से लेकर ७ वीं श० ई० अथवा ३सरी श० ई० से लेकर ७ वीं श० ई० तक सिद्ध होता है।

वराहमिहिर के आधार पर निर्णय

ज्योतिषशास्त्र के विद्वान् वराहमिहिर ने बृहस्पति को मंगल का मित्र माना है, किन्तु मृच्छकटिक के नवम अंक में आधिकरणिक के द्वारा कहे गये 'अङ्गारक-विरुद्धस्य'[2] इत्यादि श्लोक में बृहस्पति को मंगल का शत्रुग्रह माना गया है। सम्भवत. वराहमिहिर से पूर्व यह सिद्धान्त (बृहस्पति को मंगल का शत्रुग्रह मानना) प्रचलित रहा होगा। वराहमिहिर का समय छठी० श० ई० माना जाता है। अत मृच्छकटिक का निर्माण-काल (षष्ठ श० ई०) से भी पहले सिद्ध होता है। कुछ विद्वान् 'अङ्गारकविरुद्धस्य' श्लोक का दूसरा अर्थ मानते हैं। उनके अनुसार इस श्लोक का तात्पर्य केवल इतना ही है कि 'जिस पुरुष का मंगलग्रह विरुद्ध है तथा जिसका बृहस्पति भी क्षीण है, उसके पास धूमकेतु की तरह इस अन्यग्रह का उदय हुआ'। प्रस्तुत अर्थ में मंगल और बृहस्पति के परस्पर विरोधभाव अथवा शत्रुभाव की कोई बात नहीं है। अत. इस श्लोक पर आश्रित कल्पना को मृच्छकटिक के निर्माण काल का आधार स्वीकार करना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता।

---

१. दण्डी, काव्यादर्श २/२२६

२. मृच्छकटिक, IX,—३३

मनुस्मृति के आधार पर निर्णय—

कुछ विद्वान् मृच्छकटिक के नवम अंक के 'अय हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीद्' श्लोक में प्रयुक्त मनु का नाम देखकर कहते हैं कि मृच्छकटिक मनुस्मृति के बाद रचित हुआ है। मनुस्मृति का काल द्वितीय श० ई० पू० स्वीकार किया गया है। अतः द्वितीय श० ई० मृच्छकटिक की उपरितम सीमा निश्चित होती है। द्वितीय श० ई० पू० की सीमा तो भास के काल से भी प्राप्त हो जाती है। अतः दोनों में साम्य होने से कोई विशेष बात का ज्ञान नहीं होता।

भाषाविधान और नाट्यकला के आधार पर काल-निर्धारण—

कुछ मनीषी विद्वानों ने मृच्छकटिक का काल-निर्धारण भाषाविधान एवं नाटक-कला के आधार पर करने का प्रयास किया है। यथा—किसी पात्र के विशेष प्राकृत भाषा बोलने का नियम, रसों की प्रधानता तथा अप्रधानता सम्बन्धी मान्यताएँ आदि बाद के प्रचलित नाट्यकला के अनेक नियमों से मृच्छकटिक का कर्ता परिचित नहीं है। साथ ही मृच्छकटिक की शैली में भास जैसी सादगी और सरलता है, इसकी शैली कालिदास के समान परिष्कृत नहीं है, न ही भवभूति के समान कलापूर्ण है। इससे स्पष्ट होता है कि मृच्छकटिक संस्कृतनाटक के प्रारम्भिक काल की कृति है। इसके अतिरिक्त मृच्छकटिक की प्राकृत भाषाएँ व्याकरण के नियमों के सर्वथा अनुकूल नहीं हैं। वे प्राकृत भाषा के विकास की आरम्भिक अवस्था को सूचित करती हैं। शकार तथा विट जैसे पात्रों की योजना से भी यही सिद्ध होता है कि मृच्छकटिक प्राचीन काल का नाटक है। वैशिकी कला (१.४) का उल्लेख तथा किसी वेश्या के नायिका होने की कल्पना वात्स्यायन के कामसूत्र की रचना के समकालीन है। वात्स्यायन-कामसूत्र का समय प्रथम श० ई० पू० से पश्चात् नहीं हो सकता, अतः मृच्छकटिक का समय भी इसके ही आसपास है। इस प्रकार इन उपर्युक्त कल्पनाओं से भी कोई नवीन तथ्य सामने नहीं आते। डा० कीथ का मत है कि भाषा और नाट्य रचना-विधान की सरलता और सादगी के आधार पर मृच्छकटिक की प्राचीनता सिद्ध नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि मृच्छकटिककार ने भास की भाषा तथा शैली का पूर्णतया अनुसरण किया है, शकार और विट जैसे पात्रों की कल्पना की है। बौद्ध-भिक्षुओं का तथाविध वर्णन भी भास से ही लिया गया है तथा प्राकृत भाषाओं में भी भास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

डा० भट्ट ने अन्य विद्वानों के विचार प्रस्तुत करते हुए अपने विचार प्रकट किये हैं —

It can be seen that these widely different views do not bring us any nearer to the solution of the problem. Keith and De are in a way right when they say that the dates are insufficient to assign any precise date.[2]

१. वही; IX, ३६

2. Dr. G. K. Bhata, *Mrcchakatika*, p. 191.

The conclusion that is possible from the discussion is as follows :-

1. That Mricchakatika cannot be put later than the 8th century A.D.
2. The earlier limit is rather uncertain. But the internal evidence brings us somewhere to the 3rd or the 4th century A. D[1]

इस प्रकार अनेकविध निर्णय करने पर भी मृच्छकटिक के सम्बन्ध में किसी निश्चित आधार पर पहुँचना असम्भव सा ही प्रतीत होता है तथापि सूक्ष्मता से दृष्टिपात करने पर यह बात स्पष्ट प्रतिभासित होती है कि मृच्छकटिक की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद और हर्ष के साम्राज्य के उदय के पूर्व की अवस्था से मिलती-जुलती है। अनुमानतः इन दोनो के बीच का काल मृच्छकटिक के निर्माण का समय रहा होगा। इस काल में देश मे किसी प्रभावशाली सम्राट् के न होने के कारण देश-व्यवस्था निरंकुश थी। राजा-प्रजा का आपसी विरोध वृद्धि पर था, षडयन्त्र आरम्भ हो गये थे, सर्वत्र अराजकता का साम्राज्य था। अतः इस आधार पर यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत होगा कि मृच्छकटिक का समय पंचम श० ई० का अन्तिम अथवा छठी श० ई० का आदि भाग है।

मृच्छकटिक के कर्ता का जीवन-परिचय—

शूद्रक के जीवन के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय जानकारी पुराण या साहित्य से उपलब्ध नही होती है। संस्कृत के प्राचीन कवियों ने अपने जीवन के सम्बन्ध मे प्रायः मौनावलम्बन ही किया है। मृच्छकटिक के कर्ता शूद्रक के सम्बन्ध में भी यही बात है।

संस्कृत के प्रायः सभी नाटककारों ने नाटक की प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख करते हुए अपने वंश तथा विद्वत्ता का यत्किञ्चित् परिचय दिया है। शूद्रक ने प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कवियों का परिचय तो नही दिया है, हाँ अपना कुछ परिचय अवश्य दिया है। प्रस्तावना के अनुसार शूद्रक जाति का द्विज है। विद्वानों ने द्विज का अर्थ 'क्षत्रिय' किया है। यह बड़ा सुन्दर और सुडौल था, हाथी जैसी मतवाली चाल वाला तथा अत्यधिक शक्तिशाली था। ऋग्वेद, सामवेद, गणित आदि का विद्वान् था। उसने शिव की कृपा से ज्ञान प्राप्त किया था। वह समरव्यसनी और तपोनिष्ठ था। बड़े बड़े हाथियो से बाहुयुद्ध करने मे प्रवीण था। उसने सौ वर्ष तथा १० दिन की आयु व्यतीत करके पुत्र को राज्य सौंप कर अग्नि मे प्रवेश किया[2]। प्रस्तावना में शूद्रक को राजा भी बतलाया गया है—'शूद्रको नृपः'[3]।

---

1. Dr. G. K. Bhat—*Mricchakatika* p. 196.
२. मृच्छकटिक १/३, ४, ५
३. वही १/७

किंतु प्रस्तावना में कवि के देशकाल आदि के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती।

मृच्छकटिक का कर्ता दाक्षिणात्य (महाराष्ट्र का निवासी) प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह आन्ध्रवंश का आदिम राजा है। आन्ध्रवंश का राज्य दक्षिण में ही था। अतः शूद्रक का दाक्षिणात्य होना सिद्ध होता है।

वामन के काव्यालंकारसूत्रवृत्ति के एक टीकाकार ने शूद्रक को 'राजा कोमतिः' लिखा है। एम० आर० काले का कथन है कि मद्रास प्रदेश की एक व्यापारिक जाति आज भी 'कोमति' (Comati) कहलाती है। इससे ज्ञात होता है कि शूद्रक दाक्षिणात्य था।

अन्त साक्ष्यों (आभ्यन्तर प्रमाणों) में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—

(१) मृच्छकटिक के प्रथम अंक में पैसे के अर्थ में नाणक शब्द का प्रयोग किया है गया।[१]

(२) मृच्छकटिक के द्वितीय अंक में नाटककार ने हाथी के नाम के रूप में 'खुण्टमोडक' शब्द का प्रयोग किया है।[२]

(३) दशम अंक में चाण्डाल ने दुर्गादेवी को सह्यवासिनी देवी के नाम से स्मरण किया है।[३] भवभूति जैसे दाक्षिणात्य कवियों ने ही दुर्गादेवी का सह्यवासिनी नाम से वर्णन किया है।

(४) षष्ठ अंक में नाटककार ने वीरक और चन्दनक के झगड़े के अवसर पर दाक्षिणात्य और कर्नाटकलह शब्दों का प्रयोग किया है।[४] इसके साथ ही दक्षिण की कई भाषाओं के नाम भी गिनाये हैं। इन में से अधिकांश दक्षिण में बोली जाती हैं।[५]

उपर्युक्त बातों के आधार पर मृच्छकटिककार को दाक्षिणात्यों में भी महाराष्ट्र का होना स्वीकार किया जा सकता है।

मृच्छकटिक के परिशीलन से ज्ञात होता है कि शूद्रक वैदिक धर्मानुयायी था। उसने ऋग्वेद और सामवेद का ज्ञान प्राप्त किया था। मृच्छकटिक का कर्ता शिवजी का भक्त था जैसा कि 'शम्भो. समाधि. वः पातु'[६] 'नीलकण्ठस्य कण्ठः'[७]

१. वही I/२३
२. सुवर्णस्वार्थं। यः स आर्यायाः खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती।
३. भगवति सह्यवासिनि, प्रसीद प्रसीद।
४ वयं दाक्षिणात्या अव्यक्तभाषिणः। वही, श्लोक २० के बाद
५. वही।
६ मृच्छकटिक १/१
७. वही, १/२

और 'जयति वृषभकेतुः'[1] इत्यादि वाक्यांशों से प्रतीत होता है। वह देवी-देवताओं की पूजा में भी विश्वास रखता था। यही कारण था कि उसने चारुदत्त के मुखारविन्द से देव की पूजा का महत्त्व प्रकट कराया है। भरतवाक्य के श्लोकों में ब्राह्मणों के सदाचारी और राजाओं के धर्मपरायण होने की कामना की गई है।[2] इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह वर्णाश्रम-व्यवस्था में निष्ठा रखता था। यह गौ का भी भक्त था। 'कांश्चित्तुच्छयति'[3] इत्यादि उक्तियों से प्रतीत होता है कि वह भाग्यवादी था। चारुदत्त आदि के सवादों में शूद्रक के कुछ अन्य विश्वासों और मान्यताओं की भी झलक मिलती है।

मृच्छकटिककार एक बड़ा विद्वान् था। इसकी विद्वत्ता तथा बहुज्ञता इनके नाटक में ही स्पष्ट हो जाती है। उसने विविध विषयों का अध्ययन किया था यथा—वेद, गणितकला, हस्तिशिक्षा आदि। कवि ने अपने आपको 'ऋग्वेदं सामवेदं'[4] कहा है। इसे ज्योतिष और धर्मशास्त्र का भी सम्यक् ज्ञान था। नवम अङ्क में 'अङ्गारक-विरुद्धस्य'[5] इत्यादि श्लोक तथा न्यायालय का दृश्य इस बात के प्रमाण हैं। धर्मशास्त्र में वर्णित न्यायाधीश आदि के गुणों और कर्तव्यों का सूक्ष्म परिशीलन किया था, यह बात मनु के वचनों के उल्लेख करने से तथा न्यायाधीशों की मानसिक दशा के विश्लेषण से प्रतिभासित होती है।

शूद्रक का साहित्यिक ज्ञान उच्चकोटि का था। इन्हें संस्कृत और प्राकृतभाषाओं का प्रौढ़ ज्ञान था। जितनी प्राकृत भाषाओं का प्रयोग मृच्छकटिक नाटक में मिलता है, उतनी भाषाओं का अन्य नाटकों में नहीं मिलता। ये छन्द और अलंकारों के भी पण्डित थे। इनका नाट्यकला सम्बन्धी ज्ञान मृच्छकटिक की कथावस्तु से ही स्पष्ट हो जाता है। नाटकीय रचना-विधान का वैशिष्ट्य इस बात से ही स्पष्ट हो जाता है कि दशरूपककार ने अन्य नाटकों के उद्धरणों के साथ-साथ मृच्छकटिक के भी उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त वामन ने भी मृच्छकटिक के उदाहरण दिये है।

इस समय शूद्रक की केवल एक कृति मृच्छकटिक ही उपलब्ध है। कुछ वर्ष पूर्व पद्मप्राभृतक नामक एक भाण दक्षिणी भारत में प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक श्री वल्लभदेव का कथन है कि यह मृच्छकटिक के कर्ता की ही रचना है, किन्तु अभी इसके याथार्थ्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। श्री वल्लभदेव ने यह भी बतलाया है कि 'वत्सराजचरित' शूद्रक की तीसरी रचना है तथा सम्भवतः शूद्रक की चतुर्थ रचना कामदत्त नामक एक प्रकरण ग्रन्थ है। इन ग्रन्थों

१. वही १०/४६
२. वही १०/६०
३. वही १०/५६
४. वही १/५
५. वही, नवम अङ्क

के सम्बन्ध मे अभी केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनके अनुशीलन से मृच्छकटिक के कर्ता के जीवन एवं स्थिति काल पर विशेष प्रकाश पड सकेगा।

निष्कर्ष—शूद्रक राजा थे या नही ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र मे से किस जाति के थे ? क्या यही मृच्छकटिक के प्रणेता थे ? क्या शूद्रक का व्यक्तित्व काल्पनिक है या ऐतिहासिक ? क्या चारुदत्त मृच्छकटिक का संक्षिप्त रूपान्तर है अथवा मृच्छकटिक चारुदत्त का परिवर्धित संस्करण है। इन विविध गुत्थियों को सुलझाने मे विद्वान् मनीषियों ने साहित्य तथा इतिहासगत तथ्यों को आधार बनाया है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित कतिपय निष्कर्ष सारपूर्ण प्रतीत होते हैं—

(१) मृच्छकटिक का रचयिता शूद्रक ही है जो द्विजमुख्यतम हैं।

(२) यह शूद्रक राजा था जो कदाचित् बहुत प्रसिद्ध न हो सका।

(३) मृच्छकटिककार का व्यक्तित्व रोमांटिक था। समरव्यसनी होने के साथ-साथ प्रणयी था।

(४) शूद्रक का शासनकाल गुप्तयुग के पतन के पश्चात् तथा हर्षवर्धन के उदयकाल के पूर्व की अवधि मे प्रतीत होता है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि गुप्त साम्राज्य के पश्चात् तथा हर्षवर्धन के उदय के पूर्व तक इस देश मे कोई सार्वभौम राजा उत्पन्न नहीं हुआ था। उस काल में भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त तथा अनियन्त्रित थी। राजा चरित्रभ्रष्ट हो गये थे। मृच्छकटिक द्वारा ऐसी ही कुत्सित राजनीति तथा समाज का चित्राकन करना शूद्रक का लक्ष्य था।

(५) भास-रचित चारुदत्त मृच्छकटिक से पूर्व की ही रचना है। मृच्छकटिक उसका परिवर्धित संस्करण है। भास के शताब्दियों पश्चात् कवि शूद्रक ने अपने अद्भुत नाट्यकौशल एवं सूझबूझ से मृच्छकटिक की रचना की।

२. मृच्छकटिक की नाट्यविधा तथा नामकरण

अंग्रेजी शब्द ड्रामा ही संस्कृत साहित्य में रूपक नाम से प्रसिद्ध है। नाटक रूपक के दस प्रकारों में से अन्यतम है। साहित्याचार्यों के अनुसार काव्य के दो प्रकार हैं—(१) श्रव्य और (२) दृश्य।[१] श्रव्य-काव्य आदि अध्ययन-कक्ष की वस्तु है, तो दृश्य-काव्य रंगमंच की वस्तु है। जिन काव्यों का रंगमंच पर अभिनय किया जा सकता है, वे ही दृश्य-काव्य कहलाते हैं। दृश्य-काव्यों का लक्ष्य अभिनय द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन करना और रसोद्बोध करना होता है। दृश्यकाव्य भी दो प्रकार के होते हैं—(१) रूपक और (२) उपरूपक। रूपक दस प्रकार का होता है—१. नाटक, २. प्रकरण, ३. भाण, ४. प्रहसन, ५. डिम, ६. व्यायोग ७. समवकार, ८. वीथी, ९. अंक और १०. ईहामृग।[२]

उपरूपक के १८ भेद हैं[३]—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका। इनमें नाटिका अधिक प्रसिद्ध है। ये उपरूपक भी कुछ बातों को छोड़कर प्रायः नाटक के ही समान होते हैं।

दृश्यकाव्य के भेद रूपक एवं उपरूपक वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर किये गये हैं।[४] अर्थात् भारतीय नाट्यशास्त्र की दृष्टि से दृश्यकाव्य के तीन तत्त्व हैं—वस्तु, नेता और रस। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण आधुनिक समीक्षा-शास्त्र की दृष्टि से नाटक के निम्न तत्त्व माने जाते हैं—कथानक, पात्र और चरित्रचित्रण, संवाद, देश-काल का चित्रण, भाषा-शैली, अभिनेयता और रस।

मृच्छकटिक : प्रकरण

मृच्छकटिक को रूपक के एक भेद प्रकरण की कोटि में रखा जाता है। साहित्यदर्पणकार तथा नाट्यदर्पणकार ने भी इसे प्रकरण ही माना है। प्रकरण रूपक का एक भेद है। इसमें वृत्त लौकिक तथा कविकल्पित होता है। मुख्य रस शृंगार होता है। ब्राह्मण, अमात्य या वणिक् में से कोई एक नायक होता है। वह

१. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। साहित्यदर्पण ६/१

२. (क) नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोग-समवकार-डिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥ सा० दर्पण ६/३

३. अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः।
विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्॥ सा० द० ६

४. वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः। दशरूपक १/११

नायक धीरप्रशान्त लक्षणयुक्त होता है तथा विपरीत परिस्थितियों में भी धर्म, अर्थ, काम में परायण होता है। इसमें नायिका कुलस्त्री या वेश्या में से कोई एक होती है। किसी प्रकरण में कुलीना स्त्री या वेश्या दोनों ही नायिका होती है। इस प्रकार नायिका के आधार पर प्रकरण तीन प्रकार के होते हैं। जिस प्रकरण में दोनों प्रकार की नायिकायें (कुलीना स्त्री तथा वेश्या) होती हैं, वह धूर्त, जुआरी, सभिक, विट, चेट आदि पात्रों से भरा होता है।[1] [यह प्रकरण नाटक का ही परिवर्तित रूप है अत. शेष सन्धि, प्रवेशक आदि नाटक के ही समान होते हैं।]

मृच्छकटिक का कथानक नाटक की भांति प्रख्यात नहीं है अपितु लोकाश्रित तथा कविकल्पित है। इसका अङ्गी रस शृंगार है, करुण (दशम अंक में) हास्य तथा बीभत्स (वसन्तसेनामोटन में) इत्यादि अङ्ग रूप में प्रयुक्त हैं। नायक चारुदत्त ब्राह्मण है, धीरप्रशान्त है तथा वह दरिद्रता की अवस्था में भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में तत्पर दिखाई देता है। यहाँ दो नायिकाएँ हैं—१. कुलस्त्री धूता और २ गणिका वसन्त सेना। इस प्रकार दो प्रकार की नायिका होने के कारण यह तीसरे प्रकार का प्रकरण है। इसमें धूर्त, द्यूतकर, विट, चेट शकार आदि की भी योजना की गई है। दशरूपककार के अनुसार मृच्छकटिक को संकीर्ण प्रकरण कहा जा सकता है।[2] नान्दी से आरम्भ कर प्रस्तावना का सुन्दर नियोजन हुआ है। *अङ्कों की योजना के सम्बन्ध में आचार्यों के द्वारा निर्धारित इस नियम का* मृच्छकटिक में पूर्ण पालन किया गया है कि एक अङ्क की घटनाओं के लिए एक दिन से अधिक का समय नहीं लगना चाहिए।[3] प्रवेशक अथवा विष्कम्भक का उपयोग इसमें नहीं किया गया है, यह इस प्रकरण की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। सामान्य नाटकों के समान मृच्छकटिक भी भरतवाक्य के साथ समाप्त हुआ है।

मृच्छकटिक में यत्किञ्चित् अंश में लक्षण ग्रन्थों के सब नियमों का सम्यक् पालन नहीं हो सका है। उसका कारण उसकी प्राचीनता माना जा सकता है।

---

१ (क) भवेद् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः।
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्।
तेन भेदास्त्रयः तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः
कितवद्यूतकारादिविटचेटकसंकुलः ॥ सा० द० ६/५१३

(ख) प्रकरणं वणिग्विप्रसचिवस्वाम्यसंकरात्।
मन्दगोत्राङ्गनं दिव्यानाश्रितं मध्यचेष्टितम्।
दासश्रेष्ठिविटैर्युक्तं क्लेशाढ्यं तच्च तत्त्वधा।
कल्पितफलवस्तूनामेकद्वित्रिविधाननः ॥ नाट्यदर्पण, सूत्र ११०/६६,६७

२ संकीर्णं धूर्तसंकुलम्।

३. एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्। द० रूपक ३/३६

मृच्छकटिक के रचना-काल में नाट्य के नियम भलीभाँति निर्धारित नहीं किये जा सके थे। अनेक नाटकों की रचना के पश्चात् उनके आधार पर ही नाट्य-नियमों का निर्माण किया गया और उन्हें साहित्यिक रूप दे दिया गया। अत. मृच्छकटिक जैसी प्राचीन रचना में प्रकरण की कतिपय विशेषताओं का अभाव अथवा शास्त्रीय-विधान की अवहेलना भी दृष्टिगोचर होती है। यथा—

साहित्यदर्पण के अनुसार प्रकरण का नामकरण नायक-नायिका के नाम पर होना चाहिए[1] किन्तु शूद्रक ने शास्त्रीय विधान की अवहेलना की है तथा षष्ठ अङ्क में वर्णित उस छोटी सी किन्तु महत्त्वपूर्ण घटना के आधार पर प्रकरण का नामकरण किया है जिसमें बालक रोहसेन ने मिट्टी की गाडी की उपेक्षा कर सोने की गाडी से खेलने का आग्रह किया है। इस प्रकार शास्त्रीय विधान की अवहेलना होने पर भी मृच्छकटिक अभिधान के कारण इस का महत्व ही निराला है।

दशरूपक के अनुसार नायक को प्रत्येक अङ्क में उपस्थित रहना चाहिए।[2] किन्तु मृच्छकटिक प्रकरण के दस अङ्कों में से चार अङ्कों—द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ एवं अष्टम— में नायक चारुदत्त के चरित का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सका है।

नाट्यशास्त्र तथा दशरूपक के अनुसार कुलीना स्त्री तथा गणिका दोनों नायिकाओं का रंगमंच पर एक साथ मिलन निषिद्ध माना गया है।[3] किन्तु मृच्छकटिक में धूता और वसन्तसेना न केवल रंगमंच पर साथ-साथ उपस्थित हुई हैं, अपितु परस्पर कुशल-क्षेम के अनन्तर स्वागत तथा आलिंगन भी किया है।[4]

इन कतिपय कमियों के होते हुए भी सर्वाङ्ग रूप से विचार करने पर यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि मृच्छकटिक में शास्त्रीय विधान का अधिकांशतः परिपालन किया गया है। राज्य-विप्लव तथा पालक के वध को प्रत्यक्ष प्रदर्शित न करके[5] और नायक-नायिका के अन्तिम सुखद-मिलन का चित्रण कर मृच्छकटिककार ने अपनी नाट्यप्रतिभा-जनित निरालेपन के साथ-साथ भारतीय साहित्यिक मर्यादा की रक्षा की है। अतः साहित्य-क्षेत्र में मृच्छकटिक जैसे संकीर्ण प्रकरण का अन्य कोई उदाहरण मिलना दुर्लभ है।

---

१. नायिकानायकाख्यानात् संज्ञा प्रकरणादिषु।
यथा मालतीमाधवादि । सा० दर्पण ६/१४३

२. (क) प्रत्यक्षनेतृचरितो ... . । दशरूपक ३/३०
(ख) सन्निहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यो नाटके प्रकरणे च। नाट्यशास्त्र २०/३१

३. गृहवार्ता यत्र भवेत् न तत्र वेश्याङ्गना कार्या।
यदि वेशयुवतियुक्तं न कुलस्त्रीसंगमो भवेत् तत्र ॥ नाट्यशास्त्र २०/५५-५६

४. धूता—दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी?
वसन्तसेना—अधुना कुशलिनी संवृत्तास्मि। (इत्यन्योन्यमालिङ्गतः)
मृच्छकटिक (चौखम्बा) पृ० ५६८

५ दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।
स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः॥ साहित्यदर्पण ६/१६-१८

३. मृच्छकटिक का रचना-विधान

दृश्यकाव्य रंगमंच की वस्तु है। उसमें रंगमंच की आवश्यकता के अनुसार दृश्यों की व्यवस्था करनी होती है। अतः उसमें पूर्वरंग, नान्दी-पाठ, प्रस्तावना आदि की समुचित व्यवस्था की जाती है।

पूर्वरंग—नान्दी—रूपक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने से पूर्व नट के द्वारा नाट्यशाला के विघ्नों की शान्ति के लिए जो मंगलाचरण किया जाता है, उसे पूर्वरङ्ग कहा जाता है। इस पूर्वरङ्ग के प्रत्याहार आदि[1] अनेक अङ्गों में से नान्दी-पाठ अनिवार्य एवं मुख्य माना गया है।

रूपक के आदि में मंगलाचरण के रूप में पाठकों और दर्शकों की रक्षा के लिए इष्टदेव से की गई प्रार्थना नान्दी कहलाती है। नान्दी में किसी देवता, ब्राह्मण इत्यादि की आशीर्वाद वचन-युक्त वन्दना के साथ-साथ नाट्य-वस्तु के मुख्य तथ्यों की विज्ञप्ति भी होनी चाहिए।[2] नान्दी द्वादशपदा अथवा अष्टपदा होनी चाहिए।[3] संस्कृत नाट्यशास्त्र की विधा के अनुरूप मृच्छकटिक का आरम्भ नान्दी से हुआ है जिसमें स्रग्धरा और अनुष्टुप् छन्दों में रचित दो श्लोक प्रयुक्त हैं। पहले में शंकर की प्रलयोन्मुख परमात्मा में लीन निर्विकल्पक समाधि तथा दूसरे में पार्वती की भुज-लताओं से सुशोभित शंकर के नीले कण्ठ से सामाजिकों के मंगल की याचना की गई है।[4] प्रस्तुत नान्दी में नीलकण्ठ (शंकर) और गौरी (पार्वती) क्रमशः प्रकरण के नायक-नायिका के प्रतीक के रूप में प्रतिपादित समझे गये हैं। उनका मिलन नन्दीपाठ के द्वितीय श्लोक के द्वितीय चरण द्वारा संकेतित है। श्यामाम्बुद (बादल) तथा विद्युल्लेखा (बिजली) पंचम अङ्क में वर्णित दुर्दिन के संकेतक माने

---

१. यन्नाट्यवस्तुन पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥
प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि।
तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये॥ सा० द० ६/२२-२३

२. आशीर्वचनसंयुक्तः श्लोकः काव्यार्थसूचकः।
नान्दीति कथ्यते प्राज्ञैः।

३. (क) सूत्रधारः पठेत् तत्र मध्यमं स्वरमाश्रितः।
नान्दी पदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलंकृताम्॥ नाट्यशास्त्र ५/१०७
(ख) पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत। साहित्यदर्पण ६/२५

४. (क) पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानोः।
शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः॥ मृच्छकटिक १/१
(ख) पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः।
गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते॥ वही, १/२

गये है तदा श्यामल और गौरवर्ण क्रमशः सज्जनों और खलों द्वारा किये गये कार्यों के व्यंजक कहे गये है। यथा चारुदत्त सज्जनों का शिरोमणि है तो शकार दुष्टों का। काले बादल और उनमें बिजली की रेखा इस बात के द्योतक कहे जा सकते हैं कि नायक चारुदत्त के संकटापन्न जीवन में वसन्तसेना बिजली की कौंध के समान उसे आलोकित करती रही। शंकर के लिए शम्भु तथा नीलकण्ठ पर्यायवाची शब्दों केप्रयोग से यह ध्वनित होना है कि भगवान शंकर अन्ततः समस्त अनिष्टों का वैसे ही शमन कर देंगे जैसे हालाहल का पान कर उन्होंने दूसरों—देवताओं—का कल्याण किया और स्वयं भी विष को कण्ठ से नीचे न उतार कर अपना भी हित सम्पादन[1] किया। प्रकरण के नायक चारुदत्त ने औरों का अहित नहीं करते हुए ही अपना हित किया। उन्होंने गणिका वसन्तसेना को इस प्रकार अपनाया कि औरों के सम्बन्ध भी यथावत् बने रहे।

एक अमेरिकन समालोचक हेनरी वेल्स ने मृच्छकटिक प्रकरण की नान्दी का रहस्योद्घाटन करते हुए लिखा है कि शंकर के कण्ठ के उल्लेख से नाटककार शूद्रक ने शिव से वाणी के वरदान की याचना की है और बादल तथा बिजली की उपमा से इस स्थापना की पुष्टि की है कि पुरुष बादल है और नारी बिजली है।[2] पंचम अंक में चारुदत्त ने स्वयं वसन्तसेना का ध्यान बादल तथा बिजली के मिलन-दृश्य की ओर आकृष्ट किया है, जिससे संकेत ग्रहण कर वसन्तसेना उसके भुज-पाश में लिपट गई है।[3]

मृच्छकटिक की नान्दी आठ पदों की है तथा पत्रावली नाम वाली है। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि प्रस्तुत नान्दी के द्वारा अन्य नाटकों के समान कथानक की मुख्य रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है।

प्रस्तावना—(आमुख)—नान्दी-पाठ के बाद प्रस्तावना होती है। सूत्रधार का नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक के साथ नाटकीय वस्तु से सम्बन्धित विषय पर वार्तालाप ही प्रस्तावना कहलाती है जिसके द्वारा प्रस्तुत कथा की विज्ञप्ति हो जाए।[4] वस्तुतः प्रस्तावना नाटककार के संक्षिप्त परिचय के साथ-साथ अभिनेय

१. Dr. Devasthali : *Introduction to the Study of Mrcchakaṭika* (1951) Page 45.

२. Henry W. wells. *The Classical Drama of India* (1963) Page 139-140

३. एषाऽम्भोदसमागमप्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता।
रक्ता कान्तमिवाम्बरं प्रियतमा विद्युत् समालिङ्गति॥ मृच्छकटिक ५/४६

४. नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥ साहित्यदर्पण ६/३१-३२

नाटक का भी ज्ञान करा देने वाली होती है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना इस दृष्टि से औचित्यपूर्ण है क्योंकि वह नाटककार के परिचय के साथ-साथ मुख्य कथानक तथा तत्सम्बद्ध अवान्तर कथाओं की भी सूचना देने वाली है।[1] आचार्यों ने प्रस्तावना के पाँच भेद स्वीकार किये हैं—१- उद्घातक (उद्घात्यक), २-कथोद्घात, ३- प्रयोगातिशय, ४- प्रवर्तक और ५- अवलगित।[2]

अप्रतीतार्थक पदों के अर्थ की प्रतीति कराने के लिए जहाँ अन्य पद साथ में जोड दिये जाएँ, वहाँ उद्घातक प्रस्तावना होती है।[3]

जहाँ सूत्रधार का वाक्य या वाक्यार्थ लेकर कोई पात्र प्रवेश करे, वहाँ कथोद्घात प्रस्तावना होती है।[4]

जहाँ एक ही प्रयोग में दूसरा प्रयोग भी प्रारम्भ हो जाए तथा उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो, वहाँ प्रयोगातिशय प्रस्तावना होती है।[5]

जहाँ सूत्रधार उपस्थित समय अथवा ऋतु का वर्णन करे तथा उसी के आश्रय से पात्र का प्रवेश हो, वहाँ प्रवर्तक प्रस्तावना होती है।[6]

जहाँ एक प्रयोग में सादृश्यादि के द्वारा समावेश कराकर किसी पात्र का सूचन किया जाए, वहाँ अवलगित प्रस्तावना होती है।[7]

मृच्छकटिक में प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना है क्योंकि निमन्त्रण के लिए किसी ब्राह्मण को खोजते हुए सूत्रधार ने—'एष चारुदत्तस्य मित्रं मैत्रेय इत

---

१. (क) एवमहमार्य्यंमिश्रान् प्रणिपत्य विज्ञापयामि, यदिदं वय मृच्छकटिक नाम प्रकरणं प्रयोक्तुं व्यवसिताः।—मृच्छकटिक, प्रथम अङ्क पृ० ३

(ख) अवन्तिपुर्य्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥
तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं, नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभावं भवितव्यता तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः॥ वही, १/६-७

२- उद्घात (त्य) क कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा।
प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः॥ साहित्यदर्पण ६/३३

३ पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः।
योजयन्ति पदैरन्यैः सः उद्घात्य (त) क उच्यते॥ साहित्यदर्पण ६/३४

४. सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा।
भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत्कथोद्घातः स उच्यते॥ वही, ६/३५

५. यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत्प्रयोगातिशयस्तदा॥ वही ६/३६

६. कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम्॥ वही ६/३७

७. यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः॥ वही ६/३८

एवागच्छति"[1] इस वाक्य से मैत्रेय का प्रवेश सूचित किया है। इस प्रकार अभिनेय वस्तु की सूचना देकर और नाटकीय पात्र का प्रवेश कराने के पश्चात् सूत्रधार रङ्गमंच से चला जाता है और प्रस्तावना समाप्त हो जाती है।

हेनरी वेल्स ने मृच्छकटिक की प्रस्तावना की प्रशंसा करते हुए कहा है कि प्रस्तुत नाटक के नाना रूप एवं पार्श्व हैं, जैसे उसके चरित्र नाना रूप एवं नाना जाति के हैं। धर्म एवं लोक, आदर्श एवं यथार्थ, गाम्भीर्य एवं परिहास, इन समस्त परस्पर विरोधी तत्त्वों का सम्मिलन इसमे हुआ है। प्रस्तावना मे प्रकरण की इस नाना-रूपिणी आत्मा का सुन्दर परिणाम दृष्टिगोचर होता है।[2]

सूत्रधार :

प्रत्येक संस्कृत नाटक के आरम्भ मे सूत्रधार का वर्णन आता है। नाटक का आरम्भ नान्दीपाठ से होता है और यह नान्दीपाठ सूत्रधार द्वारा किया जाता है। नाट्यवस्तु का प्रयोग करने वाला सूत्रधार होता है।[3] किसी-किसी नाटक मे नान्दी-पाठ के पश्चात् सूत्रधार चला जाता है और दूसरा नट स्थापक कवि और उसकी कृति आदि का परिचय देता है।[4] मृच्छकटिक में पत्रावली नामक अष्टपदा नान्दी का पाठ करने के बाद स्थापक का कार्य भी सूत्रधार ही करता है। यह सूत्रधार भारती वृत्ति का आश्रय लेकर कवि-परिचय तथा काव्यार्थ-सूचना देता है। नट का वह वाग्व्यापार जो अधिकांशतः संस्कृतभाषा मे होता है, भारतीवृत्ति कहलाता है।[5] भारतीवृत्ति के चार अंग होते हैं—१- प्ररोचना, २- वीथी, ३- प्रहसन और आमुख (प्रस्तावना)।

प्रस्तावना के पश्चात् नाटकीय कार्यारम्भ होता है। इसमे दो प्रकार की घटनाओ को प्रस्तुत किया जाता है— १- दृश्य और २- सूच्य।[6]

दृश्य वे सरस घटनाएं होती हैं जिनका नायक से सम्बन्ध होता है और जिनका रंगमंच पर अभिनय करना होता है।[7] इन घटनाओं का सन्निवेश अंकों

---

१. मृच्छकटिक (चौखम्बा), प्रथम अङ्क, पृ० १६

२. Henry Wells : *The Classical Drama of India* (1963), Page 140-41

३. (क) सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः।
   (ख) नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
   सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

४. पूर्वरंगं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते।
   प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेत् ततः॥ साहित्यदर्पण ६/२६

५. या वाक्यप्रधाना पुरुषप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाग्युक्ता।
   स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः॥ नाट्यशास्त्र २२-२५

६. द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
   सूच्यमेव भवेत्किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्॥ दशरूपक १/५६

७. दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः॥ वही १/५७

मे किया जाता है । प्रत्येक अक मे प्राय. एक ही दिन में एक ही प्रयोजन के निमित्त किये गये कार्यों को समाविष्ट किया जाता है ।

सूच्य—वे घटनायें होती है जो नीरस होती है तथा दो दिन से लेकर वर्ष पर्यन्त चलने वाली होती हैं और जो अङ्को मे दर्शनीय नही होती है किन्तु कथा-प्रवाह की दृष्टि से आवश्यक होती है।[1] सूच्य वस्तुओ की सूचना देना पारिभाषिक शब्दावली मे अर्थोपक्षेपण कहा जाता है। अर्थ का उपक्षेपण कराने वाले साधनों को अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। सूच्य घटनाओ की सूचना इन्ही अर्थोपक्षेपको द्वारा दी जाती है। ये अर्थोपक्षेपक पाँच प्रकार के होते हैं—१. विष्कम्भक, २. प्रवेशक, ३. चूलिका, ४ अङ्कमुख (अङ्कास्य) और ५. अङ्कावतार।[2]

प्रवेशक तथा विष्कम्भक दोनो भूत तथा भविष्य की घटनाओं अथवा कथाशो के सूचक होते है। प्रवेशक का प्रयोग दो अको के बीच मे ही होता है किंतु विष्कम्भक का प्रयोग प्रथम अङ्क के आरम्भ मे भी होती है और दो अङ्को के बीच मे भी। प्रवेशक के सभी पात्र निम्न श्रेणी के होते हैं, जबकि विष्कम्भक मे मध्यम श्रेणी के पात्रो का रहना आवश्यक है।[3]

नेपथ्य में पात्र के द्वारा अर्थ की सूचना चूलिका कहलाती है।[4] जहाँ एक अंक की समाप्ति के समय उस अक मे प्रयुक्त पात्रो के द्वारा किसी छूटे हुए अर्थ की सूचना दी जाए वहाँ अंकास्य होता है।[5]

जहाँ प्रथम अङ्क की वस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अङ्क की वस्तु चले, वहाँ अङ्कावतार होता है।[6]

उपर्युक्त अर्थोपक्षेपकों मे से मृच्छकटिक प्रकरण मे चूलिका (नेपथ्य से वस्तु की सूचना) का तो यत्र-तत्र प्रयोग दृष्टिगोचर होता है किन्तु विष्कम्भक, प्रवेशक आदि का प्रयोग नही मिलता है। उसका कारण यह माना जा सकता है कि नाट्य-रचना-विधान का यह सूक्ष्म विभाजन मृच्छकटिक-रचना-काल मे इतना प्रसिद्ध नही हुआ था।

---

१. नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः। दशरूपक १/५७

२. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ॥ वही १/५८

३ (क) वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ वही, १/५९

(ख) एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः
तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ॥ वही, १/६०
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः। वही, १/६१

४. अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना ॥ वही १/६१

५. (क) अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्। वही १/६२

६. अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ॥ वही १/६२

संस्कृत नाटकों की समाप्ति—मंगल-पाठ—जिसे भरतवाक्य कहा जाता है—से होती है। भरत का अर्थ नट होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के प्रथम प्रणेता आचार्य भरत के नाम पर इस अन्तिम प्रशस्ति का नामकरण भरतवाक्य किया गया है। किसी प्रमुख नट द्वारा भरतवाक्य का पाठ किया जाता है। इसमें आश्रयदाता राजा या स्वयं कवि के कल्याण की कामना की जाती है अथवा प्रजामात्र के कल्याण की कामना की जाती है। मृच्छकटिक के भरतवाक्य में प्राणीमात्र के कल्याणार्थ की गई कामना के साथ-साथ ब्राह्मणों के सदाचारी होने और भूमिपालों के धर्मपरायण होकर पृथ्वीपालन करने की मंगल-कामना की गई है।[1]

मृच्छकटिक का नामकरण

आपाततः 'मृच्छकटिक' नाम सुनने से बड़ा विचित्र सा लगता है और इसका अर्थ भी संधि-विच्छेद के बिना सरलता से समझ में नहीं आता। 'मृच्छकटिक' शब्द दो शब्दों—मृत् + शकटिक—से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है मिट्टी की गाड़ी।

नाट्य-नियमों के अनुसार प्रकरण का नामकरण नायक-नायिका के नाम पर आधारित होना चाहिए,[2] तथापि मृच्छकटिक प्रकरण का नामकरण इसके षष्ठ अंक में वर्णित एक विशेष घटना के आधार पर किया गया है। चारुदत्त की दासी रदनिका चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को खेलने के लिए मिट्टी की गाड़ी देती है, किन्तु वह उसे नहीं लेना चाहता, क्योंकि वह पड़ोसी के पुत्र के पास देखी हुई सोने की गाड़ी ही चाहता है। वह उसके लिये रोता और मचलता है। रदनिका उसे बहलाने के लिए गोद में लिये हुए वसन्तसेना के पास ले आती है। जब वसन्तसेना को रोहसेन के रोने-चिल्लाने का कारण ज्ञात होता है, तो वह अपने स्वर्णाभूषण उतार कर सोने की गाड़ी बनवाने के लिए उसे दे देती है। 'मिट्टी की गाड़ी' सम्बन्धी घटना इस प्रकरण की कथा के विकास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, अतः इसके आधार पर ही इसका नाम 'मृच्छकटिक' किया गया है। वस्तुतः इस नामकरण की उपयुक्तता तथा चरितार्थता इससे ही प्रकट हो जाती है कि यह नाम कौतूहल उत्पन्न करने वाला है। नाममात्र से ही सहृदय-सामाजिकों के हृदय में प्रकरण की कथा जानने का औत्सुक्य उत्पन्न हो जाता है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त घटना में जब 'मिट्टी की गाड़ी' तथा 'सोने की गाड़ी' दोनों का उल्लेख है, तो ऐसी स्थिति में इस का नाम 'सुवर्ण-

---

१. क्षीरिण्यः सन्तु गावो भवतु वसुमती सर्वसंपन्नसस्या
पर्जन्यः कालवर्षी सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्तां जन्मभाजः सततमभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः॥ मृच्छकटिक १०/६०

२. नायिकानायकाख्यानात् संज्ञा प्रकरणादिषु। सा० द०, ६/१४३

शकटिकम्' क्यों नही रक्खा गया ? इसके अतिरिक्त इसका नाम 'वसन्तसेना-चारुदत्तम्' क्यों नहीं रक्खा गया ? साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक का नाम गर्भित अर्थ को प्रकट करने वाला[1] होना चाहिए। उपर्युक्त दोनों नामकरणों—'सुवर्णशकटिकम्' तथा 'वसन्तसेना-चारुदत्तम्'—मे उक्त आशय पूर्ण नही होता, क्योंकि उनमे कोई रहस्य तथा चमत्कार नही है। अतः मृच्छकटिक नाम ही सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। किंतु पुन प्रश्न उठता है कि 'मृच्छकटिक' नाम मे कौन सा गर्भित अर्थ का प्रकाशन होता है ? इस सम्बन्ध मे विद्वानो ने विभिन्न समाधान प्रस्तुत किये हैं—

१ इस प्रश्न के समाधान मे पहली बात तो यह कही जा सकती है कि मिट्टी की गाडी के कारण ही सुवर्ण की गाडी का प्रस्ताव हुआ, अत इस घटना का मूल कारण तो मिट्टी की गाडी ही है।

२. कवि इस नाम के द्वारा जीवन के लिए शिक्षा देना चाहता है कि *असन्तोष का क्या फल होता है। इस ससार मे जो लोग अपनी परिस्थिति से* असन्तुष्ट होकर दूसरो से ईर्ष्या करते हैं, उन्हे जीवन मे अनेक कष्ट उठाने पडते है। *सद्गुणो द्वारा अपनी उन्नति के लिए प्रयत्नशील होना तो उचित है किन्तु* दूसरों की उन्नति से ईर्ष्या करना उचित नही है। रोहसेन अपनी मिट्टी की गाडी से सन्तुष्ट नही है, वह पडोसी के पुत्र की सी सोने की गाडी की इच्छा करता है। इस असन्तोष रूपी दोष के कारण वह अपने पिता के लिए अनेक आपत्तियो का कारण बन जाता है।

असन्तोष इस प्रकरण का मूल है और वह मिट्टी की गाडी के सम्बन्ध मे ही है। इस प्रकार सोने की गाडी की अपेक्षा इस प्रकरण में मिट्टी की गाडी को अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और इसी आधार पर सुवर्णशकटिकम् के के स्थान पर 'मृच्छकटिकम्' नामकरण ही उपयुक्त समझा गया है। प्रकरण के मूल असन्तोष की झलक रोहसेन के अतिरिक्त अन्य मुख्य पात्रो मे भी दिखाई देती है। यथा वसन्तसेना सुलभ शकार की अपेक्षा सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मण चारुदत्त से प्रेम करती है, चारुदत्त अपनी विवाहित स्त्री धूता की अपेक्षा वसन्तसेना गणिका को चाहता है। इस असन्तोष का फल वसन्तसेना और चारुदत्त को भोगना पडता है। *रोहसेन का मिट्टी की गाडी को न लेकर सोने की गाडी की इच्छा करना ही प्रकरण मे सर्वव्यापी असन्तोष का मुख्य प्रतीक है, इसलिए मिट्टी की गाडी की घटना के आधार पर ही इसका नाम 'मृच्छकटिकम्' दिया गया है।*

मृच्छकटिक शब्द से प्रवहण-विपर्यय की घटना का भी सूचना मिलती है, *जो मृच्छकटिक प्रकरण की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। प्रकरण के षष्ठ अङ्क मे रोहसेन जैसे ही मिट्टी की गाडी के स्थान पर सोने की गाडी लेने की इच्छा करता है, उसके पश्चात् ही प्रवहण-परिवर्तन की घटना घटित हो जाती*

१. नाम कार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्। सा० द०, ६/१४२

है, जिसके कारण वसन्तसेना चारुदत्त द्वारा भेजी गई गाडी मे बैठकर भूल से शकार की दूसरी गाडी मे बैठ जाती है और चारुदत्त के पास पहुँचने के बदले शकार के पास पहुँच जाती है। इस प्रकार रोहसेन का मिट्टी की गाडी को सोने की गाडी से बदलना सम्बन्धी घटना भावी प्रवहण-विपर्यय की महत्त्वपूर्ण घटना की सूचना देती है। वास्तव मे नियति मनुष्य-जीवन मे आगामी शुभ और अशुभ घटनाओं की सूचना किसी न किसी रूप मे दे देती है। मिट्टी की गाडी के बदले मे सोने की गाडी सम्बन्धी बालक रोहसेन का दुराग्रह छोटी सी घटना प्रतीत होती है किन्तु इस प्रकरण के नामकरण के आधार रूप मे होने के कारण इसकी महत्ता स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। मिट्टी की गाडी के परित्याग के कारण ही अनेक सकटों का सामना करना पडता है। इसलिए मिट्टी की गाडी ही स्वर्ण-निर्मित गाडी की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु प्रतीत होती है। इसी कारण इस प्रकरण का नाम मिट्टी की गाडी की घटना के आधार पर मृच्छकटिकम् रखा गया है।

भास-रचित चारुदत्त मृच्छकटिक का मूल है। उपलब्ध चारुदत्त मे केवल चार अक है। उसकी कथा मृच्छकटिक के चतुर्थ अंक की कथा तक है, जहाँ वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अभिसरण के लिए रवाना होती है। चारुदत्त नाटक के अन्त मे उक्ति—'प्रिय मे, प्रभूताङ्कनाटकं संवृत्तम्' तथा गणिका वसन्तसेना की उक्ति—'हञ्जे! मा खलु वर्धय' नाटक की समाप्ति की सूचना देती है। इस नाटक की प्राप्त हस्तलिखित प्रति के अन्त मे लिखा हुआ—'*अवसितं चारुदत्तम्*' वाक्य भी नाटक की समाप्ति की सूचना देता है। श्री सी० आर० देवधर ने कहा है—

"किन्तु कुछ विद्वान्-समीक्षक इस नाटक को अपूर्ण मानते है। उनका कथन है कि इसमे कम से कम एक अंक और रहा होगा। इसकी कथा मृच्छकटिक के पंचम अंक की कथापर्यन्त अवश्य रही होगी।"

यदि उपर्युक्त मत ठीक है, तो इस मृच्छकटिक प्रकरण के रचयिता ने षष्ठ अक से दशम अक तक ही अपनी कल्पना से रचा होगा। इस प्रकार मृच्छकटिक को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—पहला भाग प्रथम अंक से पंचम अंक तक जिसे मृच्छकटिककार ने भास के चारुदत्त से लिया है और दूसरा भाग षष्ठ अक से दशम अंक तक, जिसे कवि ने अपनी कल्पना से रचा है। इन दोनों भागो को जोड़कर 'मृच्छकटिक' तैयार हुआ है। षष्ठ अक मे मिट्टी की गाडी की घटना आती है, अतः कवि ने अपनी कल्पना एवं सूझ-बूझ को प्रकट करने के लिए ही इस प्रकरण का नाम 'मृच्छकटिक' रखा है। इस नामकरण का आशय सम्भवतः यह रहा होगा कि सहृदय सामाजिक इस तथ्य को समझ जायें कि इस प्रकरण का मिट्टी की गाडी की घटना से पूर्व का अंश पुराना है और इस घटना के बाद का अंश नवीन है। इस प्रकार रोहसेन द्वारा मिट्टी की गाडी के बदले सोने की गाडी के लिए रोने और मचलने की कथा से नये भाग का आरम्भ होता है और इसकी समाप्ति भी बड़े रोचक ढंग से दिखाई गई है।

४. मृच्छकटिक की कथावस्तु

रूपक या प्रबन्ध में वस्तु (कथावस्तु या इतिवृत्त) दो प्रकार की होती है—१. आधिकारिक और २. प्रासंगिक।[1] आधिकारिक कथावस्तु प्रधान होती है और प्रासंगिक कथावस्तु गौण होती है। रूपक में आधिकारिक वस्तु का प्रमुख स्थान होता है, क्योंकि यह रूपक में नायक के फल की प्राप्ति से सम्बद्ध होती है। प्रासंगिक वस्तु आधिकारिक वस्तु की सहायिका होती है। उदाहरणार्थ मृच्छकटिक में चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-कथा आधिकारिक वस्तु है तथा आर्यक और राजा पालक की कथा प्रासंगिक है।

प्रासंगिक वस्तु भी पताका तथा प्रकरी भेद से दो प्रकार की होती है। जो प्रासंगिक वृत्त मुख्य कथा के साथ रूपक में अन्त तक चलता है, उसे पताका कहते हैं और जो प्रासंगिक कथा कुछ काल तक चलकर रुक जाती है, उसे प्रकरी कहते हैं।[2]

कथानक के रूप में वस्तु पाँच अर्थ प्रकृतियों, पाँच अवस्थाओं और पाँच सन्धियों में विभक्त हो जाती है।

कथावस्तु की पाँच अर्थ प्रकृतियाँ—

भारतीय आचार्यों के अनुसार कथावस्तु की बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नाम की पाँच अर्थप्रकृतियाँ होती हैं।[3]

बीज—कथाद्वन्द्व और अन्तिमफल के मूलकारण को बीज कहते हैं।

बिन्दु—अवान्तर घटनाओं से विच्छिन्न मूलकथा को पुनः जोड़ने वाली उक्ति या घटना को बिन्दु कहते हैं।

पताका—मूलकथा के अन्तर्गत किसी बड़े प्रासंगिक इतिवृत्त को पताका कहते हैं।

प्रकरी—मूलकथा के अन्तर्गत किसी छोटे प्रासंगिक इतिवृत्त को प्रकरी कहते हैं।

---

१. (क) तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः ॥ दशरूपक १/११

(ख) अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥ वही १/१२

(ग) प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः । वही १/१३

२. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥ दशरूपक १/१३

३. (क) बीजं पताका प्रकरी बिन्दुः कार्यं यथारुचि ।
फलस्य हेतवः पंच चेतनाचेतनात्मकाः ॥ नाट्यदर्पण, सूत्र २५, १/२८

(ख) बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
अर्थप्रकृतयः पंच पंच चेष्टा अपि क्रमात् ॥ अग्निपुराणम्, पृ० ४६१
संस्करण प्रथम, १९६६, चौ० सं० सिरीज, वाराणसी

कार्य—कथा मे साध्यविषय को कार्य कहा जाता है ।

बीज—मृच्छकटिक के प्रथम अंक मे वसन्तसेना का पीछा करते समय शकार की इस उक्ति—भावे! भावे ! एशा गब्भदाशी कामदेवा अदणुज्जाणादो पहुदि ताहं दलिद्द चालुदत्ताह अणुलत्ता ण मां कामेदि'[1] से वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति अनुराग प्रकट होता है । यही इस प्रकरण की कथावस्तु का बीज हैं ।

बिन्दु—मृच्छकटिक के द्वितीय अंक मे जुआडियों के वर्णन मे मूलकथा विच्छिन्न हो जाती है, किन्तु कर्णपूरक जब वसन्तसेना को चारुदत्त से प्राप्त जाती-कुसुमवासित प्रावारक देता है, तब वसन्तसेना उसे पहचानकर बहुत प्रसन्न होती है । यही से पुनः मूलकथा का आरम्भ होता है । अतः कर्णपूरक सम्बन्धी घटना इस कथा का बिन्दु है ।

पताका—तृतीय अंक मे सधिच्छेद की घटना घटती है । यहाँ से शर्विलक का चरित्र आरम्भ होता है । पहले तो वह चारुदत्त के घर चोरी करता है, परन्तु पीछे वह चारुदत्त का सहायक बन जाता है । शर्विलक की कथा का मदनिका-प्राप्ति रूपी फल चतुर्थ अंक मे ही प्राप्त हो जाता है, तथापि यह वृत्तान्त मूल-कथा के अन्त तक चलता है । अन्त में शर्विलक ही इस बात की घोषणा करता है कि राजा ने वसन्तसेना को चारुदत्त की वधू मान लिया है ।[2] शर्विलक का वृत्तान्त मृच्छ-कटिक की कथा का व्यापक प्रासंगिक वृत्त है, अतः इसे मूलकथा की पताका माना जाना चाहिए ।

अष्टम अंक में परिव्राजक भिक्षु की कथा आरम्भ होती है । इस भिक्षु को संवाहक के रूप मे द्वितीय अंक मे हम देखते है । सम्भवतः यह वही परिव्राजक है जिसे कर्णपूरक हाथी से बचाता है । संवाहक के रूप में वह कुछ दिनों तक चारुदत्त का भृत्य रहा । परिव्राजक हो जाने पर भी यह वसन्तसेना और चारुदत्त का सहायक बना रहता है । इस भिक्षु के वृत्तान्त को कथा की प्रकरी माना जा सकता है । यद्यपि यह राजा पालक का सेवक है तथापि चारुदत्त का प्रशंसक है ।

वसन्तसेना के मन में चारुदत्त की वधू बनने की अभिलाषा है । यह अभि-लाषा बने रहना ही इस प्रकरण का प्रमुख उद्देश्य (कार्य) है । इसकी पूर्णसिद्धि दशम अंक के अन्त मे होती है । इस प्रकार कथा के जिस अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति होने ही समस्त प्रयत्न समाप्त हो जाते हैं, वह कार्य कहलाता है ।

पंच कार्यावस्थायें—

भारतीय आचार्यों के अनुसार कथावस्तु के कार्य की पाँच अवस्थायें होती

---

१. (संस्कृत छाया)—भाव भाव ! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता, न मां कामयते । मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ५२

२ आर्ये वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति ।

मृच्छकटिक, दशम अंक, पृ० ५६८

है[1]—१. आरम्भ, २. प्रयत्न, ३. प्राप्त्याशा, ४. नियताप्ति और ५. फलागम।

आरम्भ—जिसमें मुख्य फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता दिखलाई जाती है, उसे आरम्भ कहते हैं।

यत्न (प्रयत्न)—फल की प्राप्ति के लिए जो शीघ्रतापूर्वक उपाय किये जाते हैं, उन्हें प्रयत्न कहते हैं।

प्राप्त्याशा—उपाय और विघ्नों की आशंका होते-होते जब फल-प्राप्ति की सम्भावना हो जाती है, उसे प्राप्त्याशा कहते हैं।

नियताप्ति—विघ्नों के दूर हो जाने पर जब फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है, वह नियताप्ति कहलाती है।

फलागम—जहाँ समग्र फल की प्राप्ति हो जाती है, उसे फलागम कहते हैं।[2]

आरम्भ अवस्था—मृच्छकटिक के प्रथम अङ्क में शकार अपने साथियों के साथ रात के अंधेरे में वसन्तसेना का पीछा करते हुए चारुदत्त के घर के पास पहुँचता है। उसी समय विदूषक रदनिका के साथ बाहर जाने के लिए घर का दरवाजा खोलता है। अवसर पाकर वसन्तसेना अपने आँचल की हवा से रदनिका के हाथ का दीपक बुझा देती है और चुपचाप अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर उसे रोहसेन को भीतर ले जाने के लिये कहता है। वह रोहसेन को ओढ़ाने के लिए अपना प्रावारक वसन्तसेना पर फेंकता है। वसन्तसेना प्रावारक की सुगन्ध से मस्त होकर मन ही मन चारुदत्त के यौवन की सराहना करती है। इसमें वसन्तसेना की जिज्ञासा एवं उत्सुकता का प्रकाशन होता है। इसी समय विदूषक और रदनिका बाहर से वापिस आ जाते हैं। विदूषक चारुदत्त को बतलाता है कि जिसे तुम रदनिका समझ रहे हो, वह वसन्तसेना है। चारुदत्त वसन्तसेना को पहचानकर उसके यौवन और सौंदर्य की प्रशंसा करता है। इससे चारुदत्त का औत्सुक्य प्रकट होता है। इस औत्सुक्य की चरमसीमा चारुदत्त की—'तिष्ठतु प्रणयः'[3]—उक्ति से होती है। इस उक्ति का वाच्यार्थ तो है 'प्रेम बना रहे', किन्तु इस उक्ति के बाद वसन्तसेना जो कुछ अपने मन में (स्वगत) कहती है, उससे प्रतीत होता है कि वह इस उक्ति को चारुदत्त की ओर से संभोग-प्रार्थना समझती है।

प्रथम अंक में—"अम्महे ! जादीकुसुमवासिदो पावारओ"[4] तथा "चतुरो

१. (क) आरम्भयत्नप्राप्त्याशा नियताप्तिफलागमाः।
नेतुर्वृत्ते प्रधाने स्युः पञ्चावस्था ध्रुवं क्रमात्॥ नाट्यदर्पण सूत्र ३७, १/३४
(ख) फलायौत्सुक्यमारम्भः प्रयत्नो व्यापृतिस्त्वरा।
फलसम्भावना किञ्चित् प्राप्त्याशा हेतुमात्रतः॥ वही, सूत्र ३८-४०, १/३५
२. नियताप्तिरपायानामभावात् कार्यनिर्णयः।
साक्षादिष्टार्थसम्भूतिर्नायकस्य फलागमः॥ नाट्यदर्पण, सूत्र ४१-४२, १/३६
३. मृच्छकटिक प्रथम अङ्क, पृ० ८८
४. अहो ! जातीकुसुमवासितः प्रावारकः। मृ० क०, प्र० अ० पृ० ८२

मघुरो अ ग्रअ उवण्णासो'[1] इत्यादि उक्तियों से वसन्तसेना की तथा—"प्रविश गृहमिति प्रतीयमाना न चलति भाग्यकृनां दशामवेक्ष्य"[2] इत्यादि उक्ति से चारुदत्त की पारस्परिक प्रथम उत्सुकता प्रकट हो जाती है। अनः इस अंश को कार्य की आरम्भावस्था मानना उपयुक्त है।

२. यत्न—प्रथम अंक मे यद्यपि वसन्तसेना 'तिष्ठतु प्रणय' उक्ति से व्यक्त होने वाली चारुदत्त की सभोग-प्रार्थना को स्वीकार नही करती तथापि उसके घर आने जाने का निमित्त बनाये रखने के लिए उसके घर अपने आभूषण छोड जाती है। चारुदत्त को प्रेम-पाश मे बांधने का यह प्रथम प्रयास है। द्वितीय अंक मे मदनिका के साथ वसन्तसेना की वातचीत से भी यही बात पुष्ट होती है। अत प्रथम अक मे वसन्तसेना की—'भोदु, एवं दाव भणिस्सं'[3] इत्यादि उक्ति से अंक के अन्त तक अलकारन्यास की घटना को इस प्रकरण की यत्नावस्था का आरम्भ कहना चाहिये। यह अवस्था पंचम अंक के अन्त तक चली जाती है। दूसरे अंक मे कथा किंचित् मात्र भी आगे नही बढती। तीसरे अक मे चारुदत्त के घर से अलंकारों की चोरी हो जाती है। चतुर्थ अंक मे वे अलकार वसन्तसेना को प्राप्त हो जाते हैं। इसी अक मे चारुदत्त के द्वारा अलंकारो के चोरी हो जाने के कारण उनके बदले मे भेजी हुई रत्नावली भी उसे प्राप्त हो जाती है। पंचम अंक मे वसन्तसेना अलंकार और रत्नावली लेकर चारुदत्त के घर पहुँचती है। वहाँ उसकी चेटी यह कहकर अलंकार देती है कि मेरी स्वामिनी आपके द्वारा भेजी हुई रत्नावली जुए मे हार गई है, अतः बदले में ये अलंकार स्वीकार कीजिए। चारुदत्त को प्रेम-वश करने का वसन्तसेना का यह दूसरा प्रयास माना जा सकता है। इस प्रकार प्रथम अंक की अलकारन्यास की घटना से लेकर पंचम अंक के अन्त तक मुख्य कथा का कार्य 'यत्न' नामक अवस्था के अन्तर्गत मानना चाहिए।

षष्ठ अक के आरम्भ से लेकर दशम अंक की वसन्तसेना की इस उक्ति—'अज्जा ! एसा अहं मन्दभाइणि जाए कारणादोएसो वावादी' आदि[4] तक प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है। इसमे फलप्राप्ति के प्रति आशा और निराशा बनी रहती है। षष्ठ अंक के आरम्भ मे चेटी के द्वारा वसन्तसेना को यह ज्ञात होने पर कि चारुदत्त पुष्पकरण्डक उद्यान गया है और उसे भी वहाँ भेजने के लिए कह गया है, उसे चारुदत्त के मिलने की आशा हो जाती है। तदनन्तर प्रवहण-विपर्यय के पश्चात् जब वह शकार के पास पहुँचती है, तो उसकी आशा निराशा में बदल जाती है। इसी प्रकार उद्यान मे चारुदत्त को भी यह आशा रहती है कि वसन्तसेना

१. मधुरो मधुरश्चायमुपन्यासः। मृ० क० प्र० अ० पृ० ८८

२. मृ० क० १/५६

३ भवतु एवं तावत् भणिष्यामि। मृ० क० पृ० ८८ (प्रथम अंक)

४. आर्या! एषाहं मन्दभागिनी यस्या कारणादेष व्यापाद्यते। मृ० क० दशम अंक, पृ० ५६८

गाड़ी में बैठकर उससे मिलने आयेगी। किंतु जब गाड़ी से वसन्तसेना के स्थान पर आर्यक गोपालदारक बाहर निकलता है और चारुदत्त को न्यायालय में प्राणदण्ड का आदेश हो जाता है, तो उसकी आशा निराशा में परिणत हो जाती है। अन्त में जब चाण्डाल के हाथ से खड्ग छूटकर गिर जाता है और वसन्तसेना भिक्षु के साथ वहाँ उपस्थित हो जाती है, तो पुनः दोनों में आशा का संचार होता है। यही कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

४. दशम अंक में चाण्डाल की—'का उण सुलिड एशा अंशपडन्तेण चिउलमालेण" उक्ति से शकार की—हीमादिके ! पच्चुज्जीविदम्हि (आश्चर्यं। प्रत्युज्जीवितोऽस्मि)[2]—उक्ति तक कार्य नियताप्ति की अवस्था में रहता है। चाण्डाल के कथन में वसन्तसेना के आगमन की सूचना मिलती है। वसन्तसेना के आते ही चारुदत्त की प्राणरक्षा तथा नायक-नायिका का मिलन निश्चितप्राय हो जाता है। तदनन्तर शर्विलक के मुख से आर्यक के द्वारा दुष्ट राजा पालक के मारे जाने का वृत्तान्त सुनकर नायक-नायिका के मन में कार्यसिद्धि की आशा और बलवती हो जाती है। वसन्तसेना के जीवित आ जाने तथा पालक के मारे जाने के कारण शकार भी चारुदत्त की शरण में आ जाता है। इस प्रकार एक एक करके सभी विघ्नों के दूर हो जाने पर कथा के उपर्युक्त अंक में मुख्य कार्य अधिकाधिक नियताप्ति की अवस्था में बढ़ता जाता है।

५. दशम अंक के अन्त में चारुदत्त समय पर पहुँचकर अपनी पत्नी धूता को अग्नि में कूदने से बचा लेता है। उसी समय शर्विलक नये राजा आर्यक द्वारा वसन्तसेना को चारुदत्त की वधू स्वीकार किये जाने की घोषणा करता है। यही फलागम की अवस्था है।

कथावस्तु की सन्धियाँ

अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के योग से नाटकीय कथावस्तु के पाँच भाग हो जाते हैं जिन्हें पाँच सन्धियाँ कहा जाता है।[3] ये सन्धियाँ पाँच हैं—१. मुख, २. प्रतिमुख, ३. गर्भ, ४. विमर्श और ५. निर्वहण।

मुखसन्धि—बीज (अर्थप्रकृति) और आरम्भ (कार्यावस्था) को मिला देने

---

१. का पुनस्त्वरितमेवासपतता चिकुरभारेण। मृ० क०, १०/३८ (पृ० ५६८
२. वही, दशम अंक, पृ० ५८६
३. (क) अर्थप्रकृतय. पञ्चपञ्चावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्चसन्धयः॥ दशरूपक १/२२
(ख) यथासंख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पञ्चभिः।
पञ्चधैवेतिवृत्तस्य भागाः स्युः पञ्च सन्धयः॥ साहित्यदर्पण ६/७४
अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।
मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः॥ वही ६/७५

से मुखसन्धि होती है[1]।

२. प्रतिमुखसन्धि—विन्दु और यत्न के सयोग से प्रतिमुखसंधि होती है।

३. गर्भसन्धि—यह पताका और प्राप्त्याशा के सयोग से होती है किन्तु इस सधि मे पताका का होना अनिवार्य नही है।

४. विमर्शसंधि—(अवमर्श संधि)—यह प्रकरी नामक अर्थप्रकृति और नियताप्ति कार्यावस्था के योग से होती है, किंतु प्रकरी का होना अनिवार्य नही है।

५. निर्वहणसंधि—कार्य (अर्थप्रकृति) और फलागम कार्यावस्था का योग ही निर्वहण सन्धि कहलाता है।

नाट्य सम्बन्धी ग्रन्थों—साहित्यदर्पण, दशरूपक आदि मे इन पाँच सधियो के अङ्गो, जिन्हे सन्ध्यङ्ग[2] कहते हैं, का भी विशद विवेचन मिलता है किंतु यहाँ उनका वर्णन अपेक्षित न होने के कारण छोड दिया गया है।

मुखसंधि—मृच्छकटिक मे प्रथम अंक मे वसन्तसेना की—चहुरो मधुरो अ अअं उवण्णासो[3]—इत्यादि स्वगत की उक्ति तक मुखसंधि है।

प्रतिमुखसंधि—मृच्छकटिक मे प्रथम अंक में वसन्तसेना की—अज्ज ! जइ एव्वं अहं अज्जस्स अणुगेज्झा[4] इत्यादि 'प्रकाशम्' की उक्ति से पंचम अंक के अन्त तक प्रतिमुखसधि है।

गर्भसधि—षष्ठ अंक के आरम्भ से दशम अंक मे चाण्डाल के हाथ से खड्ग के छूट जाने के पश्चात् वसन्तसेना की 'अज्जा ! एसा अहं मंदभाइणी, जाए कारणादो एसो वावादीअदि'[5] उक्ति तक गर्भसधि है।

विमर्शसंधि—दशम अक में चाण्डाल की—'का उण तुलिदं एशा खंघ-पडन्तेण चिउलभालेण'[6] उक्ति मे लेकर शकार की 'आश्चर्यं ! पुनरुज्जीवितोऽस्मि' उक्ति तक विमर्शसन्धि है।

निर्वहण संधि—दशम अंक मे 'नेपथ्ये कलकल'[7] से अंक की समाप्ति तक निर्वहण सधि है।

---

१. यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा। वही, ६/७६
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्त्तितम्। वही, ६/७७

२. द्रष्टव्य साहित्यदर्पण, ६/८१-८२

३. चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः। मृ० क०, प्र० अङ्क, पृ० ८८

४. आर्य ! यद्येवमहमार्यस्यानुग्राह्या। वही, प्र० अ० पृ० ८८

५. आर्या ! एषाहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापाद्यते॥
वही, दशम अंक, पृ० ५६८

६. का पुनस्त्वरितमेषामरतना चिकुरभारेण। वही, १०/३८

७. वही, दशम अंक, पृ० ५७७

मृच्छकटिक की कथा का मूलस्रोत

किसी भी कथानक के पीछे कोई न कोई प्रेरणा अवश्य कार्य करती है। अब हमें यह विचार करना है कि संस्कृत-साहित्य के किन ग्रन्थों में मृच्छकटिक के घटनाचक्र के समान घटनाचक्र पाया जाता है। ऐसे ग्रन्थों में भास के दरिद्रचारुदत्त, दण्डी के **दशकुमारचरित** और सोमदेव के **कथासरित्सागर** का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कालिदास-रचित अभिज्ञानशाकुन्तल और विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में भी कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो मृच्छकटिक की घटनाओं से मेल खाती हैं।

कथासरित्सागर, दशकुमारचरित और मृच्छकटिक

सोमदेव कृत "**कथासरित्सागर**' और दण्डीकृत '**दशकुमारचरित**' को भी मृच्छकटिक की कथावस्तु का स्रोत नहीं माना जा सकता। यद्यपि कथासरित्सागर में रूपणिका और एक निर्धन ब्राह्मण के प्रणय की कथा है और दशकुमारचरित में रागमञ्जरी की एक ब्राह्मण के साथ प्रेमलीला की कथा है, तथापि ये कथायें मृच्छकटिक की कथावस्तु से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त इन कथाओं को मृच्छकटिक की कथा का मूल कहना सर्वथा असंगत प्रतीत होता है क्योंकि सोमदेव का स्थितिकाल एकादश शतक (११ वीं श० ई०) है और दण्डी का सप्तम शतक है। मृच्छकटिक के कर्ता (५००-६०० श० ई०) सोमदेव और दण्डी दोनों से प्राचीन है। मृच्छकटिक कथासरित्सागर तथा दशकुमारचरित दोनों ग्रन्थों से प्राचीन सिद्ध होता है। फिर ये ग्रन्थ मृच्छकटिक के उपजीव्य ग्रन्थ क्योंकर कहे जा सकते हैं? यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' को मृच्छकटिक की कथा का मूलस्रोत कहा जा सकता है। मृच्छकटिक में राज्य-विप्लव वाले कथांश का मूल भी बृहत्कथा में ही माना जाता है।

अभिज्ञानशाकुन्तल और मृच्छकटिक—ये दोनों नाटक परस्पर बहुत मिलते हैं यथा—

(१) जिस प्रकार शकुन्तला दुर्वासा की कोपभाजन बनकर अनेक कष्ट भोगती है, उसी प्रकार वसन्तसेना भी शकार की कोपभाजन बनकर अनेक कष्ट भोगती है।

(२) जिस प्रकार **अभिज्ञानशाकुन्तल** में नायक-नायिका का मिलन दो बार होता है उसी प्रकार मृच्छकटिक में भी वसन्तसेना और चारुदत्त का मिलन दो बार होता है।

(३) *अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में राजा के दरबार का दृश्य मृच्छकटिक के न्यायालय के दृश्य के समान है।*

इस प्रकार दोनों नाटकों में मुख्य घटना की दृष्टि से साम्य होते हुए भी यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता कि 'मृच्छकटिक' शाकुन्तल के आधार पर रचा गया है अथवा ये दोनों परस्पर प्रभावित हैं। साधारणतः भिन्न-भिन्न ग्रन्थों एवं

नाटकों की घटनाओं में ऐसे साम्य तो हो ही जाया करते है। वस्तुत. साम्य के होते हुए भी नाटकों की कथावस्तु मे बहुत अन्तर है। सबसे बड़ा अन्तर तो स्पष्ट ही है कि अभिज्ञानशाकुन्तल मे परस्पर मिलने का सारा प्रयत्न पहले दुष्यन्त की ओर से होता है और तत्पश्चात् शकुन्तला की ओर से। किन्तु मृच्छकटिक मे आदि से अन्त तक मिलने का सारा यत्न नायिका वसन्तसेना ही करती है, चारुदत्त तो एक आदर्श पुरुष की भांति अपने को अभिव्यक्त करते हैं।

मुद्राराक्षस और मृच्छकटिक—विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस और मृच्छकटिक के दृश्यों मे भी साम्य दिखाई पडता है। यथा—

(१) मुद्राराक्षस के पंचम अंक के अन्त का वह दृश्य, जहां मलयकेतु राक्षस पर विश्वासघात का दोष लगाता है, मृच्छकटिक के न्यायालय के दृश्य के समान है।

(२) जिस प्रकार मुद्राराक्षस मे सप्तम अंक मे चाण्डाल चन्दनदास को शूली पर चढाने के लिए वध्यस्थान ले जाते हैं, उसी प्रकार मृच्छकटिक में भी चाण्डाल चारुदत्त को वध्यस्थान ले जाते हैं।

किन्तु कतिपय घटनाओं के साम्य के आधार पर यह सिद्ध नही किया जा सकता कि मृच्छकटिक पर मुद्राराक्षस का प्रभाव पडा है। अधिकाश विद्वान् मुद्राराक्षस को मृच्छकटिक की अपेक्षा अर्वाचीन स्वीकार करते हैं।

वस्तुत. भास (३०० ई०) रचित दरिद्रचारुदत्त ही शूद्रक (५००-६०० ई०) रचित मृच्छकटिक का मूलस्रोत स्वीकार किया गया है।

भास का चारुदत्त और मृच्छकटिक—भास के नाटकों के प्रकाश मे आ जाने से प्रायः सभी विद्वानो ने एकमत से चारुदत्त को मृच्छकटिक की कथा का मूल स्वीकार कर लिया है। चारुदत्त और मृच्छकटिक के कथाश मे शब्दतः और अर्थतः दोनों प्रकार की बहुत अधिक समानता है। चारुदत्त के चारो अंकों की कथा मृच्छकटिक के आरम्भ के चार अंकों की कथा से मिलती है। इसमे चारुदत्त, विदूषक, शकार, विट, संवाहक, चेट, और सज्जलक (मृच्छकटिक का शर्विलक) ये पुरुष-पात्र है तथा वसन्तसेना, ब्राह्मणी धूता, रदनिका (चारुदत्त की चेटी) और मदनिका (वसन्तसेना की सखी तथा चेटी) ये स्त्री पात्र है। चतुर्थ अंक के अन्त मे वसन्तसेना मदनिका को सज्जलक के साथ विदा करती है और फिर अपनी चेटी को बुलाकर कहती है—'हञ्जे। पश्य जाग्रत्या मया स्वप्नो दृष्ट एवम्'। इस पर चेटी कह उठती है—'प्रियं मे अनुताड्ं नाटकं संवृत्तम्।' तदनन्तर वसन्तसेना आभूषणों के साथ चारुदत्त के प्रति अभिसरण का प्रस्ताव करती है। चेटी तैयार हो जाती है और फिर कहती है—'अज्जुके! तथा! एतत् पुनर्रामसारिकासहायभूतं दुर्दिनमुत्थितम्।' तब वसन्तसेना हँसी मे डाँटकर उससे कहती है—'हताशे! मा खल्वुपर्धय।' इस पर चेटी कहती है—'एषेवज्जुका।' यही नाटक की समाप्ति है।

भास के चारुदत्त की हस्तलिखित प्रतियो मे से एक मे चतुर्थ अंक के अन्त मे 'अवसित चारुदत्तम्' लिखा है। इसके आधार पर कुछ विद्वान् नाटक की समाप्ति यही मानते हैं। किन्तु कुछ अन्य विद्वान् इस नाटक को अपूर्ण मानते हैं और कहते हैं कि इसमे कम से कम एक अक और रहा होगा।

मृच्छकटिक प्रकरण मे प्रत्येक पृष्ठ पर चारुदत्त के श्लोक, सवाद तथा उक्तियाँ ज्यो की त्यो दृष्टिगोचर होती हैं। अत यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक के प्रारम्भ के चार अक चारुदत्त नाटक का रूपान्तर मात्र है। मृच्छकटिक भास के चारुदत्त नाटक का परिष्कृत परिवर्द्धित एवं विस्तृत स्वरूप है। सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर निश्चित हो जाता है कि इसकी मुख्य कथा का मूल स्रोत चारुदत्त नाटक ही है। मृच्छकटिककार ने उसकी कथा मे अपनी कल्पना से रची हुई अथवा बृहत्कथा से ली गई राज्य-विप्लव की कथा को जोड दिया है। शूद्रक ने अपनी कृति को रोचक एवं ग्राह्य बनाने के लिए मूलकथा मे भी यत्र-तत्र परिवर्तन किये, भाषा को अलंकृत, परिष्कृत एवं परिमार्जित किया तथा चारुदत्त मे प्रयुक्त सादी शैली के स्थान पर परिष्कृत अभिव्यञ्जक शैली का प्रयोग किया। शूद्रक द्वारा चारुदत्त के (कथानक) की अपेक्षा मृच्छकटिक के कथानक को अधिक रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए नवीन कल्पनायें भी की गई हैं। यथा—

(१) चारुदत्त मे वसन्तसेना विदूषक के साथ घर लौटती है किन्तु मृच्छकटिक मे चारुदत्त भी वसन्तसेना के साथ जाता है।

(२) मृच्छकटिक के द्वितीय अक मे द्यूत का विस्तृत वर्णन किया गया है किन्तु चारुदत्त मे यह प्रसग उपलब्ध नही होता है। इससे शूद्रक की मौलिक प्रतिभा तथा बहुज्ञता के प्रकट होने के साथ-साथ द्यूतकरों के क्रिया-कलापो से प्रकरण की रोचकता मे वृद्धि हुई है।

(३) चारुदत्त मे विदूषक के रत्नावली अर्पित करने के पश्चात् सज्जलक वसन्तसेना के यहाँ जाता है किन्तु मृच्छकटिक मे पहले शर्विलक पहुँचता है, मदनिका की विदाई हो जाती है, तदनन्तर विदूषक रत्नावली लेकर पहुँचता है। इससे चारुदत्त की उदारता का वसन्तसेना के अन्त.करण पर बडा गहरा प्रभाव पडता है और वह तत्क्षण चारुदत्त के घर अभिसरण करने के लिए योजना बनाती है।

(४) चारुदत्त मे वसन्तसेना के भवन का वर्णन केवल चार पंक्तियो मे किया गया है किन्तु मृच्छकटिक में इसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया गया है।

(५) आर्यक और पालक की कथा शूद्रक की सर्वथा नवीन एवं मौलिक उद्भावना है। चारुदत्त मे इसका सकेत भी नहीं है।

शूद्रक ने नाटकीय रचना-विधान के साथ-साथ शैली मे भी परिवर्तन किया है। यथा चारुदत्त मे सूत्रधार केवल प्राकृतभाषा मे बोलता है किन्तु मृच्छकटिक

में वह संस्कृत में बोलना आरम्भ करता है और कार्यवशात् प्राकृत में बोलने लगता है।

उपर्युक्त परिवर्तनों से मूलकथा की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि हो गई है। चारुदत्त के वसन्तसेना के घर जाने की घटना से चारुदत्त के प्रेम की गहनता प्रकट होती है। द्यूत का विशद वर्णन तथा वसन्तसेना के भवन का वर्णन सहृदय में जिज्ञासा प्रकट करता है। वसन्तसेना जैसी गणिका के महल के चित्रण में धर्म, विलास, वैभव, संगीत साहित्य इत्यादि का ऐसा अपूर्व मिश्रण हो गया है कि सुसंस्कृत एवं शिष्ट सामाजिकगण भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। चारुदत्त में नायक की निर्धनता का चित्रण तो है किन्तु नायिका के वैभव का उस अनुपात में वर्णन वहाँ नहीं है। इससे दरिद्रता एवं ऐश्वर्य का वह चमत्कारी प्रभाव प्रेक्षकों के मानस-पटल पर अंकित नहीं हो पाता, जो मृच्छकटिक में सम्भव हो सका है। विदूषक की उक्ति ही इस प्रभाव का प्रतीक है।[1] शर्विलक के गमन के अनन्तर विदूषक के आगमन का वर्णन करने से वसन्तसेना का अनुराग भी पुष्ट होता है अन्यथा मदनिका की विदा की घटना का ही स्थाई प्रभाव सामाजिकों के हृदय पर बना रहता है।

यद्यपि शूद्रक ने मौलिक कथावस्तु का निर्माण नहीं किया तथापि उसने चारुदत्त के आधार पर एक अनूठी कथावस्तु का निर्माण करने में सफलता प्राप्त की है। शूद्रक का कार्य वस्तुतः अत्यन्त प्रशंसनीय है। मृच्छकटिक साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से चारुदत्त से कहीं बढ़कर है। प्रो० कीथ का कथन द्रष्टव्य है—

The value of the play must seem less to us than completed and elaborated in the *Mṛcchakatika*.[2]

चारुदत्त और मृच्छकटिक के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि भास के चारुदत्त का प्रभाव शूद्रक पर स्वाभाविक रूप से है किन्तु कथावस्तु और नाट्य-रचना-विधान की दृष्टि से भास ने जिन तथ्यों को सकोचपूर्वक प्रस्तुत किया, शूद्रक ने उन्हीं को अपनी नाट्य-प्रतिभा के आधार पर निःसंकोच विशद रूप में प्रस्तुत किया। भारतीय संस्कृत रूपकों में मृच्छकटिक का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

---

१. एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्ठपओट्ठं भवणं पेक्खिअ, जं सच्चं जाणामि, एक्कत्थविअ तिविट्ठअं दिट्ठं। पसंसिदुं णत्थि मे वाआविहवो। किं दाव गणिआ-घरो। अथवा कुबेरभवणपरिच्छेदोत्ति ?

संस्कृत छाया—एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तं अष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य यत् सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम्। प्रशंसितुं नास्ति मे वाचाविभवः। किं तावत् गणिकागृहम्। अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः ? इति।

—मृच्छकटिक, चतुर्थ अंक, पृ० २४६–२४७

2 *Sanskrit Drama*—A. B Keith

पाश्चात्य नाटककारों को महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल के पश्चात् एक मात्र मृच्छकटिक ही जंचा है। विदेशों में इस कृति का विशेष सम्मान हुआ है। न केवल संस्कृत साहित्य में वरन् विश्व के रूपकों में मृच्छकटिक का स्थान महत्वपूर्ण है। इसकी लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और यह कई स्थानों पर विदेशों में रंगमंच पर अभिनीत हो चुका है। यही एक ऐसा रूपक है जो हमारे यथार्थ जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

मृच्छकटिक और नाटकीय अन्वितियाँ (मृच्छकटिक का स्थान तथा समय)—

पाश्चात्य विद्वानों ने रूपक आदि नाट्यवस्तु के रंगमंचीय प्रदर्शन अथवा अभिनय की सफलता के लिए तीन प्रकार की अन्वितियाँ बतलाई हैं। इन्हें संकलन-त्रय भी कहा जाता है। अन्वितियाँ देश, काल तथा कार्य की सीमा को इस प्रकार संकुचित कर देती हैं कि दर्शक नाटक की कथावस्तु को सुगमता से हृदयंगम करने में समर्थ हो जाते हैं।

किसी भी रूपक की घटनाएँ स्थान, काल तथा कार्य की दृष्टि से व्यवस्थित (मर्यादित) हों, इस दृष्टि से निम्न अन्वितियों की व्यवस्था स्वीकार की गई है—

१. स्थान की अन्विति या स्थान-संकलन (Unity of place)

२. समय की अन्विति या समय-संकलन (Unity of time)

३. कार्य की अन्विति या कार्य-संकलन (Unity of action)

स्थान-अन्विति से तात्पर्य यह है कि नाटकीय दृश्य दूर-दूर पर घटित न हों और ऐसी स्थान-सीमा के हों कि सामाजिकों को सीमित रंगमंच पर हो रही घटनाओं को देखकर अस्वाभाविक न लगे।

समय-अन्विति से तात्पर्य है कि नाटकीय घटनाएँ काल की दृष्टि से अधिक व्यवधान-युक्त न हों जिससे कि लगातार दिखलाई जाती घटनाएँ अस्वाभाविक न लगें।

कार्य-अन्विति से यह अभिप्राय है कि नाट्यविषय का आरम्भ, मध्य और अन्त निश्चित हो और सभी पात्र और सभी दृश्य नाटकीय व्यापार की पूर्ति में सहायक हों।

मृच्छकटिक प्रकरण में उपर्युक्त अन्वितियों के प्रयोग का विवेचन प्रस्तुत है।

१. स्थान-अन्विति—मृच्छकटिक की कथा का स्थान उज्जयिनी नगरी है। पहले अंक की कथा का कार्य-स्थल राजमार्ग और चारुदत्त का घर है।

दूसरे अंक की कथा का स्थान वसन्तसेना का घर तथा राजमार्ग है। प्रारम्भिक दृश्य वसन्तसेना के अन्तरंग कक्ष से सम्बद्ध है। जुआरियों का खेल सड़क पर

तथा मंदिर में होता है।

तीसरे अंक की कथा का स्थल चारुदत्त का घर है। इसमें संधिच्छेद, शर्विलक द्वारा मैत्रेय से आभूषण की धरोहर-प्राप्ति और चारुदत्त के शयनकक्ष में शर्विलक का जाना दिखाया गया है।

चतुर्थ अंक की कथा का स्थान पुनः वसन्तसेना का घर है। शर्विलक तथा मदनिका का चुराये हुए स्वर्णाभूषणों के सम्बन्ध में वार्तालाप, मैत्रेय का वसन्तसेना के घर आना और उसके भवन के आठ प्रकोष्ठों का निरीक्षण करना इस अंक की मुख्य बातें हैं।

पंचम अंक की कथा का स्थान राजमार्ग तथा चारुदत्त का घर है। मैत्रेय का वसन्तसेना के घर से लौटना, वसन्तसेना का चारुदत्त से मिलन इस अंक की विशेषता है।

षष्ठ अंक का स्थल भी राजमार्ग तथा चारुदत्त का घर है। इसमें वसन्तसेना का चारुदत्त के घर रात्रि बिताने के बाद पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान के लिए प्रस्थान दिखाया गया है तथा प्रवहण-विपर्यय एवं राजपुरुष वीरक तथा चन्दनक के दृश्य भी जीर्णोद्यान वाली सड़क पर दिखाये गये हैं।

सप्तम अंक की कथा का स्थल पुष्पकरण्डक-जीर्णोद्यान है, जहाँ चारुदत्त वसन्तसेना की प्रतीक्षा कर रहा था। आर्यक तथा चारुदत्त की भेंट, आर्यक का शीघ्रता से चले जाना तथा चारुदत्त और विदूषक का भी उद्यान से प्रस्थान कर देना इस अंक की विशेषता है।

अष्टम अंक का कार्य-स्थल भी पुष्पकरण्डक-जीर्णोद्यान है जहाँ वसन्तसेना के कंठनिपीडन तथा प्राणरक्षा वाली घटना घटित होती है।

नवम अंक की कथा का स्थल न्यायालय है। इसमें अधिकरणिक चारुदत्त को प्राणदण्ड की आज्ञा देता है।

दशम अंक की कथा का स्थान राजमार्ग और वधस्थान है। इसी अंक के अन्त में धूता के अग्नि-प्रवेश के लिये तैयारी के दृश्य का स्थान राज-प्रासाद के दक्षिण का मैदान दिखाया गया है तथा चारुदत्त और वसन्तसेना का मिलन दिखाकर मृच्छकटिक प्रकरण की समाप्ति की गई है।

इस प्रकार मृच्छकटिक का सम्पूर्ण कथानक उज्जयिनी नगरी में होने के कारण अभिनेताओं की पहुँच के भीतर है, इस रूप से इस प्रकरण में स्थान-अन्विति का यथेष्ट पालन हुआ है।

२. समय की अन्विति—मृच्छकटिक प्रकरण में समय-अन्विति का प्रश्न विवादास्पद है। इस विषय में विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। यद्यपि मृच्छकटिक के रचयिता ने कोई स्पष्ट निर्देश नहीं किया है कि किस ऋतु एवं किस तिथि से नाटक के कार्य का आरम्भ हुआ, तथापि विद्वानों ने इसे भी प्रकरणगत तथ्यों के आधार पर जानने का प्रयास किया है।

एम० आर० काले का अनुमान है कि 'सिद्धीकृतदेवकार्यस्य' (पृ० २३) के स्थान पर 'षष्ठीव्रतकृतदेवकार्यस्य' का पाठ आरम्भ में रहा होगा, जिससे कार्यारम्भ की सही तिथि (माघकृष्ण) षष्ठी ही मानी जानी चाहिए। जूर्णवृद्ध चारुदत्त के लिए जो उत्तरीय लाया है, वह चमेली के फूलों की सुगंध से सुवासित है। चमेली वसन्त मे नहीं मिलती है।[1] इसी से कार्य का आरम्भ वसन्तऋतु के आरम्भ में मानना उचित होगा। वसन्तसेना ने चमेली की सुगंध से भीने (सुवासित) उत्तरीय पर प्रसन्नतापूर्वक आश्चर्य भी प्रकट किया था।[2] 'जातीकुसुम वासित प्रावारक' से इस बात का भी सकेत मिलता है कि शीतऋतु अभी बीती नहीं है, क्योंकि शिशु रोहसेन प्रात काल शीतार्त दिखाया गया है।[3] इस कारण भी नाटक का कार्यारम्भ माघ महीने के कृष्णपक्ष की षष्ठी को मानना उचित ठहरता है।[4] एम० आर० काले ने इस प्रकरण की घटनाओं का माघकृष्ण षष्ठी से आरम्भ मानकर नाट्य-व्यापार की अवधि को लगभग बीस दिन के अन्तर्गत दिखलाया है और फाल्गुन शुक्ल एकादशी को उसकी समाप्ति दिखाई है।[5]

आर० डी० करमरकर ने नाटक के आरम्भ के लिए एक भिन्न मास का निर्देश किया है। उनका कथन है कि कामदेवायतन में वसन्तोत्सव चैत्र शुक्ल चतुर्दशी अर्थात् मदन-चतुर्दशी को मनाया गया होगा और उसी दिन वसन्तसेना तथा चारुदत्त की प्रथम भेंट हुई होगी। इसलिए, प्रथम अंक का व्यापार उस दिन के बाद चैत्र कृष्ण षष्ठी को घटित हुआ होगा। 'सिद्धीकृतदेवकार्यस्य' के वैकल्पिक पाठ 'षष्ठीकृतदेवकार्यस्य' को स्वीकार कर षष्ठीव्रत के लिए पृथ्वीधर की इस टिप्पणी की सहायता ली गई है कि यहाँ "अरण्यषष्ठिका" व्रत से अभिप्राय लेना चाहिये, जो ग्रीष्मर्तु का त्योहार है। अतएव नाटकीय कार्य ग्रीष्मर्तु के आरम्भ में, अर्थात् चैत्र के मध्य से प्रारम्भ हुआ मानना चाहिए। पाँचवें अक में जिस असामयिक वर्षा आदि का कथन हुआ है, वह भी वैशाख मास की ओर संकेत करता है। इस प्रकार, करमरकर, भट्ट इत्यादि के अनुसार, नाटकीय व्यापार आधे चैत्र से लेकर आधे वैशाख तक घटित माना जाना चाहिए। करमरकर तथा भट्ट भी लगभग तीन सप्ताह का समय मानते हैं।[6]

श्री कान्तानाथतैलंग शास्त्री के अनुसार—प्रथम अक मे शकार कहता है—

---

१ न स्याज्जाती वसन्ते। साहित्यदर्पण, ७/२५

२. अहो जातीकुसुमवासितप्रावारक। मृ०, प्र० अंक, पृ० ८२

३ माघनाभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्तो रोहसेन। मृ०, प्रथम अंक, पृ० ८२

४. डा० रमाशंकरतिवारी महाकवि शूद्रक, पृ० २५३

५. एम० आर० काले मृच्छकटिक, भूमिका, पृ० ४३

६. (क) द्रष्टव्य. करमरकर — 'Mrcch'., Introduction, Pages xx-xxi

(ख) डा० जी० के० भट्ट:—Preface to Mrcchakatika, पृ० १३७-१३८

भावे ! भावे ! एशा गब्भदाशी कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि…' इत्यादि ।[1] यह कामदेव का उत्सव प्रथम अंक की कथा के पूर्व हुआ था। प्रथम अंक में इसका उल्लेख मात्र है। यह उत्सव अवश्य ही वसन्तर्तु में हुआ होगा। यहाँ प्रयुक्त 'प्रभृति' शब्द सूचित करता है कि कामदेव के उत्सव और प्रथम अंक की कथा में कुछ ही दिनों का अन्तर है। अतः यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक की कथा का आरम्भ वसन्त के अन्त और ग्रीष्म के आरम्भ में, सम्भवतः वैशाख मास में होता है। पूरे नाटक का घटना-चक्र घटने के लिए तीन सप्ताह से अधिक समय नहीं लगता। अतः यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक के सारे घटना-चक्र का काल वैशाख मास है।[2]

डा० श्रीनिवास शास्त्री के अनुसार—कामदेव के उत्सव के पश्चात् ही इस प्रकरण की घटनाओं का समय है। कामदेव का उत्सव वही होना चाहिए, जो वसन्तोत्सव या मदनोत्सव नाम से प्रसिद्ध है और रत्नावली नाटिका आदि में जिसका उल्लेख किया गया है। यह उत्सव वसन्त ऋतु के आगमन के समय माघ-शुक्ला पाँच (वसन्तपञ्चमी) को मनाया जाता है। इसके पश्चात् ही नाटक की घटनाओं का समय है। कितने समय पश्चात्, यह निर्धारित करने के लिए भी मृच्छकटिक के कुछ वर्णनों का सहारा लेना आवश्यक है। प्रथम अंक में 'सिद्धीकृत-देवकार्यस्य' (पृ० २३) के स्थान पर 'षष्ठीव्रतकृतदेवकार्यस्य' पाठ मिलता है। उससे विदित होता है कि जिस दिन वसन्तसेना प्रथम बार चारुदत्त के घर गई, वह षष्ठी रही होगी। किंतु वह माघशुक्ला षष्ठी नहीं हो सकती; क्योंकि अनुराग के परिपाक के लिए कुछ समय अपेक्षित है, अतः वसन्तपञ्चमी के अग्रिम दिन से ही वह नहीं हो सकता।

प्रथम अंक की कथा से प्रतीत होता है कि उस समय वसन्तसेना चारुदत्त में भलीभाँति अनुरक्त थी। दूसरे जब चारुदत्त वसन्तसेना को पहुँचाने के लिए जाता है, तब वह चन्द्रोदय का वर्णन करता है। वह कहता है—मैत्रेय ! भवतु ! कृतं प्रदीपिकाभिः। पश्य—

उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डुः……इत्यादि[3] उस समय राजमार्ग शून्य हो चुके थे, पर्याप्त रात्रि बीत चुकी थी,[4] लगभग ग्यारह बजे का यह समय होगा। वह शुक्लपक्ष की षष्ठी नहीं हो सकती। इससे सिद्ध होता है कि वह माघ के अग्रिम मास फाल्गुन में कृष्णपक्ष की षष्ठी रही होगी। यहाँ प्रश्न यह है कि वसन्तपञ्चमी से पन्द्रह दिन पश्चात् ही प्रकरण की घटनाओं का आरम्भ क्यों

१. संस्कृत छाया—भाव ! भाव ! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति…। मृच्छकटिक, प्र० अंक, पृ० ५२ (चौखम्बा संस्करण १९५४)

२. मृच्छकटिक-समीक्षा—श्री कान्तानाथ तैलंग शास्त्री सम्पादित, पृ० ३१

३. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ६१ (चौखम्बा संस्करण, १९५४)

४. राजमार्गो हि शून्योऽयं रक्षिणः सञ्चरन्ति च। मृच्छकटिक, १/५८, पृ० ६२

माना जाए, डेढ मास या ढाई मास पश्चात् क्यो नही ? उत्तर स्पष्ट है कि जब मृच्छकटिक की घटनाओं का आरम्भ हुआ, तब वसन्तऋतु थी, ग्रीष्मऋतु नहीं आई थी, क्योंकि—

१. 'मारुताभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्तो रोहसेनः'[1] इत्यादि मे शीतकाल दिखलाया गया है ।

२. जब लगभग पन्द्रह दिन पश्चात् विदूषक वसन्तसेना के घर जाता है, तब भी वह एषोऽशोकवृक्षो नवनिर्गतकुसुमपल्लवो भाति"[2] को देखता है और अशोक वृक्ष वसन्त मे ही कुसुमित होता है ।

३ वसन्तसेना जातीपुष्पों से सुवासित शाल को देखकर आश्चर्य करती है, कारण यह है कि वसन्त-ऋतु मे जातीपुष्पो का प्रायः अभाव ही होता है—न स्याज्जाती वसन्ते ।[3]

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि नाटक की घटना फाल्गुन कृष्णा षष्ठी को आरम्भ हुई ।

विभिन्न विद्वानों के मतानुसार किये गये विवेचन के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि प्रकरण का आरम्भकाल तथा अवसानकाल दोलायमान है—

१. श्री एम० आर० काले—माघ कृष्णा षष्ठी—फाल्गुन शुक्ल एकादशी (अवसान काल) तक ।
२. आर० डी० करमरकर तथा डा० जी० के० भट्ट - चैत्र कृष्णा षष्ठी—आधे वैशाख तक ।
३. डा० श्रीनिवास शास्त्री—फाल्गुन कृष्णा षष्ठी ।
४. श्री कान्तानाथ तैलंग शास्त्री—वैशाख कृष्णपक्ष की पञ्चमी या षष्ठी—वैशाख मास का अन्त ।

प्रथम अंक—'एतस्यां प्रदोषवेलायां इह राजमार्गे'[4] एवं 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि'[5] आदि से ऐसा अनुमान होता है कि प्रथम अक मे कार्यारम्भ नौ बजे प्रारम्भ होता है और लगभग दो घण्टे बाद ग्यारह बजे समाप्त होता है, क्योंकि वसन्तसेना के घर लौटते समय चन्द्रोदय हो जाता है और राजमार्ग निर्जन प्रतीत होता है ।[6]

सूत्रधार की अनेन चिरसङ्गीतोपासनेन"[7] उक्ति से प्रतीत होता है कि संगीत

---

१. मृ०, प्र० अक, पृ० ८२
२. वही, ४/३०, पृ० २४६
३. साहित्यदर्पण, ७/२५
४. मृ०, प्र० अंक, पृ० ३४
५. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ५४
६. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ६१,६२
७. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० १०

का कार्यक्रम बहुत देर चलता रहा। 'चिर' शब्द अपराह्न चार-पाँच बजे का सूचक हो सकता है। प्रस्तावना तथा प्रथम अंक का घटना-चक्र कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि को अपराह्न चार-पाँच बजे से लेकर रात्रि के ग्यारह बारह बजे तक घटता है।

द्वितीय अङ्क—दूसरे अंक की घटनाओं का समय सम्भवतः दूसरा दिन प्रातः काल लगभग आठ बजे है। प्रथम चेटी वसन्तसेना से कहती है—'अज्जए! अत्ता आदिसदि 'ण्हादा भविअ देवदाणं पूअं णिव्वत्तेहि त्ति।'[1] इसके अतिरिक्त सवाहक का आना, भिक्षु रूप धारण करना तथा कर्णपूरक द्वारा बौद्धभिक्षु के प्राणों की रक्षा किया जाना आदि कार्यों के लिए लगभग चार घण्टे का समय चाहिए। अतः द्वितीय अक की घटनाओं का समय प्रात.काल लगभग आठ बजे से मध्याह्न लगभग बारह बजे तक है।

तृतीय अङ्क—तृतीय अक और प्रथम अक की घटनाओं मे पन्द्रह दिन का अन्तर दिखाई देता है। क्योंकि प्रथम अंक मे चन्द्रोदय का वर्णन है (पृ० ६१) तो तृतीय अंक मे चन्द्रास्त का। जब चारुदत्त रात को रेभिल के घर से गाना सुनकर लौटता है तो उस समय अर्ध रात्रि बीत चुकी है[2] और चन्द्रमा भी अन्धकार को अवकाश देकर अस्ताचल की ओर जा रहा है।[3] चारुदत्त और विदूषक आदि के सो जाने पर शर्विलक प्रवेश करता है। इस समय वह चन्द्रास्त का वर्णन करता है।[4] अर्धरात्रि के पश्चात् लगभग एक बजे चन्द्रास्त मे प्रकट होता है कि यह तिथि शुक्लपक्ष की अष्टमी होगी। इस अंक की कथा प्रात.काल तक चलती है जब चारुदत्त वर्धमानक से सेंध को शीघ्र बन्द करने को कहता है।[5] इस प्रकार इस अंक की घटनाओं का समय रात्रि के एक बजे से प्रात.काल तक है।

चतुर्थ अङ्क—चतुर्थ अंक की घटनाएँ तृतीय अंक की कथा (चोरी की घटना) के दूसरे दिन अर्थात् शुक्लपक्ष की नवमी की ही प्रतीत होती हैं। संधिच्छेद के पश्चात् दूसरे दिन पूर्वाह्न मे (लगभग ८ बजे) शर्विलक मदनिका को गुलामी से मुक्त कराने के लिए आभूषण लेकर वसन्तसेना के घर जाता है। मदनिका की विदाई के पश्चात् विदूषक वहाँ पहुँचता है और वसन्तसेना के प्रासाद के आठ

१. संस्कृत छाया—आर्ये! माता आदिशति—'स्नाता भूत्वा देवताना पूजा निर्वर्तय इति। मृच्छकटिक, द्वितीय अंक, पृ० ६५

२. चेट—कावि वेला अज्जचारुदत्तश्श गन्धव्वं शुणिदुं गदश्श। अदिक्कमदि अद्धल-अणी, अज्ज वि ण आअच्छदि।

(संस्कृतछाया)—कापि वेला आर्यचारुदत्तस्य गान्धर्वं श्रोतुं गतस्य। अतिक्रामति अर्धरजनी अद्यापि नागच्छति। वही, तृतीय अंक, पृ० १४७

३. असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः। वही, ३/६ पृ० १५१

४. शर्विलकः—अये! कथमस्तमुपगच्छति स भगवान् मृगाङ्कः।

वही, तृ० अक, पृ० १५६

५. एताभिरिष्टिकाभिः सन्धिः क्रियता सुसंहतः शीघ्रम्। वही, ३/२०

प्रकोष्ठों का अवलोकन करके एवं वसंतसेना को रत्नावली देकर वापिस लौटता है। विदूषक के लौटते समय वसन्तसेना प्रदोष वेला में चारुदत्त के यहाँ आने की बात कहती है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि इस अंक की कथा का समय प्रातःकाल लगभग ८ बजे से प्रदोष काल से कुछ पहले तक माना जा सकता है।

पंचम अङ्क—पंचम अंक की घटनाएँ चतुर्थ अंक के दिन ही (शुक्ल पक्ष की नवमी को) प्रदोष बेला मे प्रारम्भ होती हैं। अकाल दुर्दिन मे वसन्तसेना चारुदत्त के घर गई है। प्रदोष समय के उपरान्त प्रायः अर्धरात्रि तक इस अंक की घटनाओं का समय माना जा सकता है। इसी दिन वसन्तसेना पहली बार चारुदत्त के घर निवास करती है।

षष्ठ अङ्क—षष्ठ अंक का कार्यारम्भ पञ्चम अंक की कथा के दूसरे दिन (शुक्ल पक्ष की दशमी को) प्रातःकाल होता है। अंक के आरम्भ मे चेटी वसन्तसेना को जगाती है। वह कहती है—उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ! पभादं संवुत्तम्।[2] प्रभात मे ही चारुदत्त के आदेशानुसार वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उद्यान मे जाने को उद्यत है। प्रवहण-विपर्यय, चन्दनक तथा वीरक का कलह तथा आर्यक के पलायन आदि समस्त घटना-चक्र के लिये दो-तीन घण्टे का समय चाहिए। अतः यह अंक दिन मे लगभग दस बजे समाप्त हो जाता है।

सप्तम अङ्क—सातवें अंक की घटनाएँ षष्ठ अंक की समाप्ति के अनन्तर ही आरम्भ हो जाती हैं। प्रवहण-विपर्यय के कारण चारुदत्त की गाड़ी वसन्तसेना के स्थान पर आर्यक को लेकर चारुदत्त के पास जीर्णोद्यान पहुँचती है। आर्यक की चारुदत्त से भेंट तथा चारुदत्त से अभयदान प्राप्त कर उसका सुरक्षित स्थान मे पहुँचना—इसके लिये अधिक से अधिक एक घण्टा पर्याप्त है। अतः लगभग दिन के ग्यारह बजे तक इसका समय होना चाहिए।

अष्टम अंक—षष्ठ अंक तथा सप्तम अंक की घटना के अनन्तर उसी दिन मध्याह्न से कुछ पूर्व ही अष्टम अंक का कार्यारम्भ होता है। चारुदत्त जीर्णोद्यान से चला जाता है और बौद्ध भिक्षु उद्यान मे प्रवेश करता है। वसन्तसेना का वहाँ पहुँचना, शकार द्वारा उसका कण्ठ-निपीडन, संवाहक भिक्षु के द्वारा उसकी प्राण-रक्षा—इन सभी कार्यों मे लगभग तीन-चार घण्टे का समय लगा होगा। अतः स्पष्ट है कि यह अंक मध्याह्न के लगभग आरम्भ होकर अपराह्न मे लगभग चार

---

१. अज्ज विण्णवेहि त जूदिअरं मम वअणे अज्जचारुदत्तं—अहं पि पदोसेअज्जं पेक्खिदुं आअच्छामि'त्ति।
(संस्कृत छाया) वसन्तसेना—आर्य! विज्ञापय तं द्यूतकरं ममवचनेन आर्य-चारुदत्तम्—'अहमपि प्रदोषे प्रेक्षितुमागच्छामि' इति।
- मृच्छकटिक, , चतुर्थ अंक पृ० २५३

२. (संस्कृत-छाया)—उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु आर्या। प्रभातं संवृत्तम्।
वही, षष्ठ अंक पृ० ३१४

बजे तक समाप्त होता है। इस प्रकार षष्ठ अंक से अष्टम अंक तक की घटनाएँ एक ही दिन (शुक्ल पक्ष की दशमी) की हैं।

नवम अंक—नवम अंक की घटनाएँ षष्ठ अंक से अष्टम अंक तक की घटनाओं के दूसरे दिन प्रातःकाल (शुक्लपक्ष की एकादशी) की हैं, क्योंकि वीरक कहता है कि उसने चन्दनक के पादाघात से अपमानित होकर सोच में ही रात्रि व्यतीत की है और अब प्रातःकाल हो गया है।[1] न्यायालय में पूर्वाह्न में लगभग ८ बजे व्यवहार-श्रवण का कार्य आरम्भ होता है। अभियोग पर विचार और निर्णय में दो-तीन घण्टे का समय लग सकता है। अधिकरणिक द्वारा चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया जाता है और उसको चाण्डालों की देखभाल में सौंप दिया जाता है और उन्हें आदेश दिया जाता है कि वे अपने कार्य को सम्पन्न करने के लिये तैयार हो जाएँ। इस प्रकार इस अंक की घटनाओं का समय दस-ग्यारह बजे तक होगा।

दशम अंक—निर्णय के बाद चाण्डालों के द्वारा चारुदत्त वधस्थान की ओर ले जाया जाता है। दशम अंक का आरम्भ नवम अंक की समाप्ति के कुछ समय बाद ही होता है। अतः दोनों अंकों की घटनाएँ एक ही दिन होती हैं। दशम अंक दिन के लगभग बारह बजे से आरम्भ होकर अपराह्न में चार-पाँच बजे तक समाप्त माना जा सकता है।

इस प्रकार लगभग तीन सप्ताह की अवधि में प्रकरण के कार्य की समाप्ति होती है। संस्कृत की नाट्यविधा के अनुसार एक अंक की घटनाओं के लिये एक दिन से अधिक का समय अपेक्षित नहीं है। सभी घटनाएँ जो समय की सीमा में समाविष्ट न हो सकती हों उन्हें प्रवेशक में दिखाया जाना चाहिये। प्रवेशक में समाहित होने वाली घटनाओं के लिये भी विधान है कि वे एक वर्ष की अवधि से अधिक न हों।[2] मृच्छकटिक के किसी भी अंक में ऐसी घटनाएँ समाविष्ट नहीं हैं, जिनकी अवधि एक दिन से अधिक हो, हाँ दूसरे तथा तीसरे अंकों के बीच लगभग पन्द्रह दिन का व्यवधान अवश्य है। तथापि इस प्रकरण में घटनाओं का सामञ्जस्य सुन्दर तथा भारतीय नाट्यविधा के अनुरूप है।

कार्य की अन्विति अथवा कार्य-संकलन (Unity of action)

मृच्छकटिक का प्रधान उद्देश्य चारुदत्त तथा वसन्तसेना का प्रणय-परिपाक है, जिसमें गणिका वसन्तसेना अपने प्रणय की सच्चाई के कारण निर्धन ब्राह्मण सार्थवाह की वंश-वधू बनी है। यह प्रकरण अपने उद्देश्य एवं योजना में सर्वथा

---

१. अणुसोअन्तस्स इअं कधं पि रत्ती पभादा मे। (अनुशोचत इयं कथमपि रात्रिः प्रभाता मे) मृच्छकटिक, ९/२३ (पृ० ४६१)

२. अङ्कच्छेदे कार्यं मासकृतं वर्षसञ्चितं वापि।
तत्सर्वं कर्तव्यं वर्षादूर्ध्वं न तु कदाचित्॥
—नाट्यशास्त्र (साहित्यदर्पण, ६, ५२ की वृत्ति में उद्धृत)

निराला है। इसमें वर्णित प्रणय-कथा अपनी परिपूर्ति में लोक-निरपेक्ष एकान्तता से युक्त नहीं है। शूद्रक ने आरम्भ से ही इसमें सघर्ष और संशय के सूत्र अनुस्यूत कर दिये हैं। एक ओर संस्थानक (शकार का नाम) वसन्तसेना का प्यार बलपूर्वक प्रलोभनों से जीतना चाहता है, दूसरी ओर चारुदत्त अत्यन्त संकोची है और निर्धन है, इस कारण वह वसन्तसेना को जीतने के लिये स्वयं कोई कदम नहीं उठाता, किन्तु वसन्तसेना चारुदत्त पर गुणों के कारण अनुरक्त है।[1] वसन्तसेना भी प्रणय-लीला में अकेली रत नहीं है, उसकी प्रिय चेटी मदनिका शर्विलक में अनुरक्त है, जो चौर-कर्म करने के साथ-साथ राजद्रोही भी है। पात्रों में एक संवाहक जुआरी है, जो चारुदत्त से सम्बन्धित है। *राज्य के परिवर्तन की योजना भी* मृच्छकटिककार के मन में है। यदि शकार के कारण यह आशंका होती है कि चारुदत्त और वसन्तसेना का मिलन विघ्न-रहित एवं सुगम नहीं है, तो शर्विलक के कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राजा पालक के लिये हिंसा का मार्ग अपनाया जा सकता है। कभी-कभी ऐसा भी प्रतिभासित होने लगता है कि सघर्ष छल-छद्म एवं हिंसा के प्रतिकूल वातावरण में प्रणय-पादप सूख जायेगा। एक ओर चारुदत्त अतिशय साधु एवं उदार है तो दूसरी ओर शकार अतिशय दुष्ट एवं नृशंस है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अनुरक्त है, शकार से उसे घृणा है। आशंका होती है कि क्या वार-वनिता वसन्तसेना शकार की धमकियों और प्रलोभनों के बीच अपने प्रणय-दीपक को निश्छल एवं निश्चल रूप से प्रदीप्त रख सकेगी? विषम परिस्थितियों में भी वह बलवती आशा के प्रश्रय से आगे बढ़ती ही जाती है। अन्ततः राज्य-विप्लव से उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है।

वस्तुतः शूद्रक ने मृच्छकटिक का कथानक इतना जटिल बना दिया है कि उससे आशंका होने लगती है कि नाटकीय व्यापार में अन्विति की रक्षा हो सकेगी अथवा नहीं। प्रस्तावना में प्रकरण के जटिल प्रयोजन का स्पष्ट संकेत—चारुदत्त तथा वसन्तसेना का आनन्द-विलास (सुरतोत्सव), नीति का प्रचार, दुष्ट-व्यवहार, दुर्जन-स्वभाव तथा भवितव्यता[2]—दर्शकों एवं पाठकों को सशंकित बना देता है कि रचयिता इस बहुमुखी प्रयोजन की सिद्धि के साथ कार्य-संकलन की रक्षा कैसे कर सकेगा।

किन्तु कुछ अनावश्यक प्रसंगों को छोड़कर मृच्छकटिक की कथावस्तु की संघटना में पर्याप्त सन्तुलन है और उसके विभिन्न दृश्य किसी विशिष्ट प्रयोजन

---

१. गुणा क्खु अणुराअस्स कालणं, ण उण बलक्कारो।
(संस्कृत छाया) गुणा खलु अनुरागस्य कारणं न पुनर्बलात्कारः। मृच्छ०, प्र० अङ्क, पृ० ४२

२. तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभावं भवितव्यता तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः॥ मृच्छकटिक, १/७

की पूर्ति करते हुए भी मुख्य कार्य-प्रवाह से अलग-थलग न होकर उसकी सिद्धि में ही संलग्न दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि राजनीतिक विप्लव वाला अन्त कथानक असम्बद्ध-सा प्रतीत होता है, किन्तु मृच्छकटिककार ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से उसे जिस ढंग से संजोया है, अनमेल प्रतीत होने वाले पात्रों और व्यापारों को जिस ढंग से एक साथ उलझा दिया है, उसमें सम्पूर्ण प्रकरण में कार्यान्विति की सुन्दर प्रतिष्ठापना हो गई है।

संवाहक जुआरी है किन्तु उसका नायक से पहले सम्बन्ध रह चुका है और बाद में वह विचित्र ढंग से नायिका के भी सम्पर्क में आ जाता है। इस प्रकार पहले चारुदत्त से उपकृत होकर फिर वसन्तसेना की रक्षा करके उपकारी के रूप में सामने आता है। शर्विलक एक ओर सन्धिच्छेद करता है और नायक का अपकार कर नायिका द्वारा मदनिका-मुक्ति रूप दान के रूप में पुरस्कृत होता है, दूसरी ओर राजद्रोह का नायक बनकर प्रधान कथानक के नायक चारुदत्त को कुशावती राज्य के दान से पुरस्कृत करने के लिए उत्सुक दिखाई देता है। प्रकरण की समाप्ति पर राज्यविप्लव वाला कार्य निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-कथा की सुखद परिणति में विलीन हो गया है। प्रकरण-गत घटनाओं की तीव्रगति के साथ-साथ हमारा ध्यान मुख्य कथा और मुख्य पात्रों की ओर सिमटता जाता है। यद्यपि पञ्चमअङ्क के पश्चात् कथानक की प्रगति में अवरोध सा प्रतिभासित होता है, तथापि इससे कार्य-अन्विति में कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ती। यद्यपि प्रकरण का आरम्भ विषम परिस्थितयों में हुआ है, तथापि उनका अन्त सुखद रूप में दिखाई देता है।

प्रकरण में कार्यान्विति का पालन एक अन्य ढंग से भी हुआ है। नायक चारुदत्त अतिशय सक्रिय न होते हुए भी समस्त महत्त्वपूर्ण प्रसंगों में अपने अदृश्य प्रभाव को बनाये हुए दिखाई पड़ता है। सप्तम अंक में राज्य-विप्लव का मुख्य व्यक्तित्व आर्यक है, किन्तु वह चारुदत्त से उपकृत होकर उसके सामने नतमस्तक हो जाता है और उदारतापूर्वक मैत्री का हाथ बढ़ाता है। अन्त में आर्यक ने मैत्री का प्रतिपादन किया है। किन्तु रंगमंच पर आर्यक के अनुपस्थित रहने के कारण चारुदत्त का ही महत्त्व बढ़ा हुआ दिखाई पड़ता है। यद्यपि प्रकरण के दस अंकों में से चारुदत्त केवल छः अंकों (प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम तथा दशम) में ही प्रत्यक्ष रंगमंच पर उपस्थित होता है, तथापि उसका व्यक्तित्व आद्योपान्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। जहाँ चारुदत्त उपस्थित नहीं है, वहाँ वसन्तसेना उपस्थित रहती है और नाट्य-कार्य को गति प्रदान करती है और कार्यान्विति के पालन में सहायक होती है। संस्थानक (शकार) को छोड़कर सभी पात्र चारुदत्त के प्रशंसक एवं सुहृद् हैं। नायक को आर्य चारुदत्त के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है।

षष्ठ अंक में जब चन्दनक यह सोच-विचार करता है कि चारुदत्त की गाड़ी में पलायन करने वाले चारुदत्त के शरणागत आर्यक का रहस्योद्घाटन वह करे या

नहीं, तब उसका यह निर्णय कि आर्यक को भाग जाने दिया जाये,[1] इस भावना से ही निश्चित होता है कि आर्य चारुदत्त इस मामले में न फँसने पाये। अष्टम अंक में जब संस्थानक के द्वारा हत्या की धमकी दिये जाने पर वसन्तसेना चारुदत्त को पुकारती है, तब वह संस्थानक चारुदत्त का नाम लेने के कारण वसन्तसेना का गला घोट देता है। इस प्रकार प्रकरण का सम्पूर्ण कार्य-कलाप चारुदत्त के प्रभावशाली एवं आकर्षक व्यक्तित्व से ओत-प्रोत है।

अन्ततः यह कहना अनुचित न होगा कि सम्पूर्ण प्रकरण के कथानक, उप-कथानक एवं पात्रों के कार्य-कलाप नाटकीय अन्वितियों के सहायक एवं पोषक है।

मृच्छकटिक की कथावस्तु एवं अंक-परिचय —

शूद्रक-विरचित मृच्छकटिक नामक प्रकरण चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-कथा के आधार पर लिखा गया है। चारुदत्त उज्जयिनी नगरी का एक प्रतिष्ठित किन्तु दरिद्र ब्राह्मण है। वसन्तसेना उज्जयिनी की एक वार-वनिता है, जो समृद्ध, रूपवती एवं गुणवती है, जो धन की अभिलाषा नहीं रखती है तथा निर्धन चारुदत्त से प्रेम करती है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है—

नान्दी पाठ के बाद प्रस्तावना आरम्भ होती है। सूत्रधार अपने गृह में सुस्वादु भोज्य पदार्थों की असाधारण तैयारी देखकर आश्चर्यचकित होकर नटी से उसका कारण पूछता है। नटी से उसे ज्ञात होता है कि यह सब आयोजन अभि-रूपपति नामक उपवास-हेतु किया गया है। नटी उसे किसी ब्राह्मण को आमंत्रित करने के लिए कहती है। वह ब्राह्मण की खोज में घर से बाहर निकलता है। सहसा ही उसे मैत्रेय (विदूषक) दिखाई देता है। वह उसे निमंत्रित करता है किन्तु मैत्रेय उस निमंत्रण को स्वीकार नहीं करता है। सूत्रधार के द्वारा उत्तम भोजन एवं दक्षिणा आदि का प्रलोभन दिये जाने पर भी मैत्रेय निमंत्रण स्वीकार नहीं करता है। अतः सूत्रधार दूसरा ब्राह्मण खोजने के लिये चला जाता है। यहीं प्रस्तावना समाप्त हो जाती है।

प्रथम अंक—

प्रथम अंक के प्रथम दृश्य के आरम्भ में मैत्रेय (विदूषक) रंगमंच पर आता है। वह चारुदत्त के मित्र जूर्णवृद्ध का दिया हुआ जातीकुसुम-सुवासित प्रावारक (उत्तरीय) लेकर चारुदत्त के घर आता है। चारुदत्त उसका स्वागत करता है और वह (विदूषक) उसे वह प्रावारक देता है। चारुदत्त विदूषक को मातृदेवियों को

---

1. एसो अणवरोधो सरणाअदो अज्जचारुदत्तस्स पवहणं आरुढो पाणप्पदस्स मे अज्जसव्विलअस्स मित्तं; अण्णदो राअ-णिओओ ? ता किं दाणि एत्थ जुत्तं अणुचिट्ठिदुं ? अधवा, जं भोदु, तं भोदु, पढमं ज्जेव अभअं दिण्णं।

(संस्कृत-छाया)—एषोऽनपराधः शरणागतः आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमारूढः प्राणप्रदस्य मे आर्यशर्विलकस्य मित्रम्, अन्यतो राजनियोग। तत् किमिदानीमत्र युक्तमनुष्ठातुम् ? अथवा, यद्भवतु तद्भवतु प्रथममेवाभयं दत्तम्।

मृच्छ०, (चौखम्बा) षष्ठ अङ्क पृ० ३४५

बलि अर्पण करने के लिये चौराहे पर जाने को कहता है। किन्तु विदूषक प्रदोष-काल में राजमार्ग पर अकेले जाने में भय प्रकट करता है। चारुदत्त उसे रुकने के लिये आदेश देकर स्वयं समाधि सम्पन्न करने चला जाता है।

दूसरे दृश्य में शकार, विट और चेट वसन्तसेना का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। राजा का श्यालक शकार वसन्तसेना को अपने प्रेम-पाश में फाँसना चाहता है। वसन्तसेना का अनुगमन करते हुये शकार के कथन से ही वसन्तसेना को ज्ञान होता है कि निकट ही बाईं ओर आर्य चारुदत्त का घर है। वह अन्धकार में टटोलती है, एकाएक उसका हाथ चारुदत्त के मकान के द्वार पर पड़ता है, किन्तु वह उसे बन्द पाती है।

प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में चारुदत्त और विदूषक उपस्थित होते हैं। चारुदत्त समाधि सम्पन्न करने के बाद पुन विदूषक से चौराहे पर मातृदेवियों को बलि-अर्पण करने के लिए कहता है और वह कुछ हिचकिचाहट के बाद रदनिका के साथ जाने के लिये तत्पर हो जाता है। विदूषक द्वार खोलता है, बाहर स्थित वसन्तसेना आंचल की हवा से रदनिका के हाथ में स्थित दीपक को बुझा देती है। विदूषक रदनिका से बाहर चलने के लिए कहकर स्वयं पुन दीपक जलाने के लिये घर के अन्दर जाता है। इसी बीच वसन्तसेना भी अंधेरे में भीतर घुस जाती है। बाहर स्थित शकार रदनिका को वसन्तसेना समझकर पकड़ लेता है। वह प्रतिवाद करती है। इतने में विदूषक दीपक लेकर वहाँ पहुँच जाता है और यथास्थिति जानकर क्रुद्ध होकर शकार को मारने दौड़ता है, किन्तु विट उसके पैरों पर गिरकर क्षमायाचना करके विदूषक को शान्त करता है। विट शकार को वहाँ से चलने के लिये आग्रह करता है किन्तु शकार वसन्तसेना को लिये बिना जाने से मना कर देता है। विट चला जाता है। शकार भी विदूषक से कुछ देर तक वाद-विवाद करने के बाद वसन्तसेना को समर्पित न करने पर मरणपर्यन्त शत्रुता की धमकी देकर चेट के साथ चला जाता है।

प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर शीतार्त बालक रोहसेन को अन्दर ले जाने के लिये कहता है। वह उसे ओढ़ाने के लिये अपना जातीकुसुमवासित प्रावारक उस पर फेंकता है। वसन्तसेना चुपचाप खड़ी रहती है और चारुदत्त दरिद्रताजन्य दोषों का स्मरण करने लगता है। इतने में विदूषक और रदनिका अन्दर आते हैं। विदूषक चारुदत्त की वसन्तसेना के सम्बन्ध में जानकारी के अभाव में उत्पन्न दूसरी स्त्री की शंका का समाधान करता है और कहता है कि वसन्तसेना कामदेवायतन-उद्यान से ही आप पर अनुरक्त है। विदूषक शकार-कृत अपमान की घटना को छोड़कर शेष सारा वृतान्त चारुदत्त को सुना देता है। चारुदत्त से सम्भाषण के बाद घर जाने से पूर्व वसन्तसेना अपने आभूषण धरोहर के रूप में चारुदत्त के घर रख देती है। चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना को उसके घर पहुँचा देते हैं। चारुदत्त आभूषणों की रक्षा का भार दिन में वर्द्धमानक को तथा रात्रि में विदूषक को सौंपता है। वसन्तसेना

के द्वारा अपने स्वर्णाभूषणों को चारुदत्त के घर में धरोहर रूप में रखे जाने की घटना के आधार पर ही प्रथम अंक का नामकरण 'अलंकारन्यास' किया गया है।

द्वितीय अंक—'द्यूतकरसंवाहक'

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और मदनिका रंगमञ्च पर प्रवेश करती हैं। एक चेटी आकर वसन्तसेना से माँ के आदेशानुसार स्नान और पूजन आदि कार्य से निवृत्त होने को कहती है। परन्तु वसन्तसेना नित्यकर्म करने जाने के प्रति उदासीनता व्यक्त करती है। चेटी चली जाती है। मदनिका वसन्तसेना से उसकी उदासी एवं उद्विग्नता का कारण पूछती है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अपना प्रेम अभिव्यक्त करती है। मदनिका उसका ध्यान चारुदत्त की निर्धनता की ओर दिलाती है, किन्तु उससे उसके प्रेम में किसी प्रकार की कमी नहीं आती।

द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में पहले चारुदत्त की सेवा में तत्पर रहने वाला किन्तु अब पक्का जुआरी संवाहक जुए में हार जाने के कारण भागकर किसी शून्य देवालय में शरण लेता है। माथुर और द्यूतकर उसे खोजते हुए वहाँ पहुँचते हैं। वे उस स्थान को निर्जन देखकर वहीं जुआ खेलने लगते हैं। संवाहक उन्हें खेलते देखकर अपनी प्रवृत्ति को रोक पाने में असमर्थ हो जुआ खेलने के लिए उनसे जा मिलता है। माथुर और द्यूतकर उसे देखते ही पकड़कर देवालय से बाहर ले जाते हैं और उससे अपना रुपया माँगते हैं और न देने पर उसकी पिटाई करते हैं। इसी समय दर्दुरक वहाँ आता है। वह संवाहक को छुड़ाता है। दर्दुरक और माथुर में कलह होती है। अवसर पाकर दर्दुरक माथुर की आँखों में धूल झोंक देता है। माथुर आँखें मलने लगता है। इसी बीच मौका पाकर दर्दुरक और संवाहक भाग जाते हैं।

द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में माथुर और द्यूतकर के भय से भागा हुआ संवाहक वसन्तसेना के घर पहुँचता है। माथुर और द्यूतकर भी उसका पीछा करते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं। वसन्तसेना संवाहक को चारुदत्त का पुराना सेवक जानकर बड़ी प्रसन्न होती है और उससे उसके भय का कारण पूछती है। जब उसे ज्ञात होता है कि वह जुए में हारकर भागा है और उसके जुआरी साथी उससे रुपया लेने के लिए उसका पीछा कर रहे हैं तो वसन्तसेना अपना हस्ताभरण जुआरियों को देकर उसे जुए के ऋण से मुक्त कर देती है। माथुर और द्यूतकर सन्तुष्ट होकर चले जाते हैं। संवाहक भी विरक्त होकर बौद्धभिक्षु बन जाता है।

द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में कर्णपूरक प्रवेश करता है। वह वसन्तसेना को उसके खुण्टमोडक नामक उन्मत्त हाथी के उत्पात से किसी भिक्षु को बचाने में किये अपने पराक्रम का वृत्तान्त सुनाता है और इस पराक्रमपूर्ण कृत्य के लिये चारुदत्त द्वारा पारितोषिक रूप में प्राप्त प्रावारक को वसन्तसेना को देता है।

बसन्तसेना उसे पाकर प्रसन्नता से फूली नहीं समाती और उसे ओढ़कर अपनी चेटी के साथ चारुदत्त को देखने के लिये अपने महल की सबसे ऊँची छत पर पहुँच जाती है। यहीं अंक की समाप्ति है।

द्वितीय अंक की सब घटनाएँ द्यूतकर संवाहक से सम्बन्धित हैं, अतः इस अंक का नाम 'द्यूतकर-संवाहक' रखा गया है।

तृतीय अंक—'संधिच्छेद'

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में चारुदत्त का चेट मंच पर आता है। आधी रात हो जाने पर भी चारुदत्त के घर न लौटने पर वह चिन्ता व्यक्त करता है।

तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य में चारुदत्त और विदूषक मंच पर आते हैं। वे रेभिल के घर से संगीत सुनकर लौटते हैं। घर पहुँचने पर चेट दरवाजा खोलता है। चारुदत्त और विदूषक घर में प्रवेश करते हैं और दोनों सोने की तैयारी करते हैं। रात्रि में स्वर्णभाण्ड की रक्षा का भार विदूषक पर होने के कारण चेट विदूषक को स्वर्ण-भाण्ड सौंपता है। विदूषक स्वर्ण-भाण्ड को हाथ में लिये हुए सो जाता है।

तृतीय अंक के तृतीय दृश्य में शर्विलक प्रवेश करता है। वह सेंध लगाकर चारुदत्त के घर में घुसता है। विदूषक नींद में बड़बड़ाता हुआ स्वर्णभाण्ड के चोरी चले जाने के भय से उसे स्वप्न में ही चारुदत्त को दे देता है। शर्विलक आगे बढ़कर उसके हाथ से उसे ले लेता है। शर्विलक यह चोरी बसन्तसेना की दासी मदनिका के प्रेम-पाश में फँसकर उसे दास्य-भाव से मुक्ति दिलाने के लिये ही करता है।

तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में सेंध देखकर रदनिका शोर मचाती है। शोर सुनकर चारुदत्त और विदूषक जागते हैं। चारुदत्त सेंध की प्रशंसा करता है। विदूषक चारुदत्त से कहता है अच्छा हुआ, मैंने पहले ही स्वर्णभाण्ड आपको दे दिया था। यह सुनकर चारुदत्त आश्चर्यचकित होकर भी किसी प्रकार का प्रतिवाद नहीं करता। एक ओर तो चारुदत्त यह सोचकर प्रसन्नता का अनुभव करता है कि चोर उसके घर से खाली नहीं गया, किन्तु दूसरी ओर वह बदनामी के भय से भी चिन्तित होता है। इसी बीच चारुदत्त की पत्नी धूता को यह वृतान्त ज्ञात होता है। वह अपने पति को अपयश से बचाने के लिये अपनी रत्नमाला विदूषक के हाथ पति के पास इसलिये भेजती है कि वह उसे बसन्तसेना के स्वर्ण-भाण्ड के बदले उसके घर भेज दें। चारुदत्त विदूषक के हाथ रत्नमाला को बसन्तसेना के घर भिजवा देता है और वर्धमानक को सेंध बन्द करने का आदेश देकर स्वयं चारुदत्त सन्ध्योपासना के लिए चला जाता है। यहीं अंक की समाप्ति है।

संधिच्छेद की घटना के प्राधान्य के कारण तृतीय अंक का नामकरण 'संधिच्छेद' किया गया है।

चतुर्थ अंक—'मदनिका-शर्विलक'

चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और मदनिका चारुदत्त का चित्र देखती हुई मंच पर प्रवेश करती हैं। उसी समय एक चेटी आकर वसन्तसेना की माता का आदेश सुनाती हुई कहती है कि राजश्याल संस्थानक की गाड़ी आई है, माता का आदेश है कि तुम जाओ। यह सुनकर वसन्तसेना क्रुद्ध होकर जाने से इंकार करती है।

चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना मदनिका को चारुदत्त का चित्र पर्यंङ्क पर रखकर तालवृन्त लाने का आदेश देती है। इसी बीच शर्विलक वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है। मदनिका से भेंट होने पर उसे अलंकार देता है और चारुदत्त के घर की गई चोरी की बात भी सुना देता है। मदनिका अलङ्कारों को पहचान लेती है और वह उसको स्वयं वसन्तसेना के पास जाकर उन अलंकारों को अर्पित करने की राय देती है। शर्विलक कुछ आनाकानी करने के बाद वैसा ही करने के लिए तैयार हो जाता है। वसन्तसेना यह सारा वृत्तान्त सुन लेती है। शर्विलक अपने को चारुदत्त का आत्मीय बताकर वसन्तसेना के पास जाकर उसे अलंकार सौंपता है। वसन्तसेना बदले में मदनिका को उसकी वधू बनाकर अपनी गाड़ी में शर्विलक के साथ उसको बिठा कर विदा करती है।

चतुर्थ अंक के तृतीय दृश्य में शर्विलक राजा पालक के द्वारा आर्यक (गोपालदारक) के कैद किये जाने की घोषणा सुनाता है। वह चेट के साथ मदनिका को सार्थवाह रेभिल के घर भेज देता है और स्वयं अपने मित्र आर्यक को बन्धन से मुक्त करने के लिए प्रस्थान कर देता है।

चतुर्थ अंक के चतुर्थ दृश्य में एक चेटी वसन्तसेना को चारुदत्त के घर से एक ब्राह्मण के आगमन की सूचना देती है। वसन्तसेना के द्वारा उस ब्राह्मण को शीघ्र अन्दर लाने की आज्ञा पाकर चेटी उसे (विदूषक को) अन्दर ले जाती है। विदूषक वसन्तसेना से कहता है कि चारुदत्त तुम्हारा स्वर्ण-भाण्ड जुए में हार गया है, बदले में उसने यह रत्नमाला भेजी है। यह कहकर विदूषक चारुदत्त द्वारा भेजी हुई रत्नमाला वसन्तसेना को सौंप देता है। वसन्तसेना रत्नमाला ग्रहणकर विदूषक को विदा करती है और विदूषक के द्वारा चारुदत्त के लिए यह सदेश प्रेषित करती है कि वह सायंकाल उनसे मिलने आयेगी। इसके बाद वह अपनी चेटी के साथ चारुदत्त से मिलने जाती है। यही अंक समाप्त हो जाता है।

इस अंक में शर्विलक मदनिका को दासभाव से मुक्ति दिलवाकर उसे वधू रूप में प्राप्त करता है। इस घटना के आधार पर यह अंक 'मदनिका-शर्विलक' शीर्षक से नियोजित है।

पञ्चम अंक—'दुर्दिन'

पंचम अंक के प्रथम दृश्य में विदूषक चारुदत्त के पास आकर उसे वसन्तसेना द्वारा स्वर्णभाण्ड के बदले दी गई रत्नावली को स्वीकार कर लेने तथा प्रदोष

काल में वसन्तसेना के स्वयं चारुदत्त से मिलने आने का समाचार देता है।

पंचम अंक के दूसरे दृश्य में वसन्तसेना का चेट आकर चारुदत्त को वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है।

पंचम अंक के तृतीय दृश्य में विट और वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाते हुए दिखाई देते हैं। मार्ग में ही घनघोर वर्षा होने लगती है। विट और वसन्तसेना वर्षाऋतु का वर्णन करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। जब वे चारुदत्त की वाटिका के निकट पहुँचते हैं, तो आवाज सुनकर वसन्तसेना की प्रतीक्षा में रत चारुदत्त विदूषक को पता लगाने के लिये बाहर भेजता है। बाहर आने पर विदूषक की वसन्तसेना से भेंट होती है। वाटिका के भीतर प्रवेश करने से पूर्व वसन्तसेना विट को विसर्जित कर देती है।

पंचम अंक के चतुर्थ दृश्य में विदूषक और वसन्तसेना वाटिका में प्रवेश करते हैं। चारुदत्त वसन्तसेना को देखते ही उसका स्वागत करता है। विदूषक वसन्तसेना से उसके आगमन का कारण पूछता है। वसन्तसेना की चेटी कहती है कि हमारी स्वामिनी यह पूछने के लिए आई हैं कि आपकी रत्नावली का मूल्य क्या है? वह उसे अपनी समझकर जुए में हार गई हैं, अतः उसके बदले में यह स्वर्णभाण्ड स्वीकार कीजिये। यह कहकर वह स्वर्णभाण्ड देती है। चारुदत्त और विदूषक दोनों उस स्वर्णभाण्ड को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। तत्पश्चात् चेटी स्वर्ण-भाण्ड की प्राप्ति का सारा वृत्तान्त विदूषक के कान में कह देती है। विदूषक चारुदत्त को सब कुछ बता देता है। सब आनन्दमग्न हो उठते हैं। अन्त में चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों साथ-साथ घर चले जाते हैं। वसन्तसेना रात्रि को चारुदत्त के घर ही विश्राम करती है।

पंचम अंक का नाम 'दुर्दिन' रखा गया है क्योंकि इसमें घनान्धकार, मेघ-गर्जना, वर्षा की झड़ी तथा विद्युत्-गर्जना आदि से युक्त वर्षा का विस्तृत वर्णन है।

षष्ठ अंक : प्रवहण-विपर्यय

षष्ठ अंक के प्रथम दृश्य में चेटी वसन्तसेना को जगाती है तथा उसे बताती है कि चारुदत्त पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान गये हैं और जाते समय कह गये हैं कि गाड़ी को तैयार करके वसन्तसेना को भी उद्यान में ले आना। यह सुनकर वसन्तसेना हर्षित होती है और चेटी का आलिंगन करके कहती है कि 'रात्रि में मैंने उन्हें (चारुदत्त को) ठीक से नहीं देखा, अतः आज दिन में उन्हें अच्छी तरह से देखूंगी। अरी! क्या मैं यहाँ अन्तःपुर में प्रविष्ट हूँ।' वह चेटी के हाथ रत्नावली धूता के पास भेजती है। धूता उसे स्वीकार नहीं करती। वह उसे वसन्तसेना को लौटा देती है।

षष्ठ अंक के द्वितीय दृश्य में रदनिका चारुदत्त के पुत्र को गोद में लिये हुए आती है। वह उसको खेलने के लिये मिट्टी की गाड़ी देती है, किन्तु वह उसे नहीं

लेता और सोने की गाडी के लिए मचलता है। गाडी न मिलने पर रोता है। वसन्तसेना बच्चे को सोने की गाड़ी बनवाने के लिये आभूषण देती है।

षष्ठ अंक के तृतीय दृश्य मे चारुदत्त का चेट वर्धमानक वसन्तसेना को ले जाने के लिये गाडी लेकर आता है। रदनिका वसन्तसेना को सूचित करती है और वह जाने की तैयारी करती है। किन्तु इसी बीच वर्धमानक गाडी लेकर उसमे बिछाने के लिए बिछावन लेने घर को वापिस लौट पडता है। इतने मे ही शकार का चेट स्थावरक शकार की गाडी लेकर पुष्पकरण्डक उद्यान जाते हुए मार्ग मे गाडियो की भीड के कारण चारुदत्त की वाटिका के पक्ष-द्वार पर अपनी गाडी रोक देता है और गाडी से उतरकर दूसरी गाडी के फँसे पहिये को निकालने मे सहायता करने चला जाता है। वसन्तसेना जाने के लिये द्वार पर आती है और वहाँ द्वार पर खडी गाडी को चारुदत्त की गाडी समझकर उसमे बैठ जाती है। स्थावरक आकर अपनी गाडी लेकर आगे बढ जाता है। उसी समय कारागार से भागा हुआ आर्यक घूमता हुआ वहाँ आता है। वह राजपुरुषो की दृष्टि से बचने के लिए चारुदत्त की वाटिका के पक्षद्वार मे प्रविष्ट होकर छिप जाता है। उधर से वर्धमानक आकर वसन्तसेना के लिए द्वार पर गाडी रोक देता है। आर्यक पीछे से गाडी मे बैठ जाता है। वर्धमानक आर्यक के हाथ की बेडी की झनझनाहट को वसन्तसेना के आभूषणों की ध्वनि समझकर गाडी पुष्पकरण्डक उद्यान की ओर हाँक देता है।

षष्ठ अंक के चतुर्थ दृश्य मे वीरक और चन्दनक नामक दो पुलिस के सिपाही (राजपुरुष) गाडी को मार्ग मे रोकते हैं। चन्दनक गाडी पर चढकर देखता है। आर्यक उसमें अभयदान की याचना करता है और चन्दनक उसे रक्षा करने का वचन दे देता है। वह गाडी से उतरकर वीरक को बतलाता है कि वसन्तसेना जा रही है। वीरक उस पर विश्वास नही करता और स्वयं गाडी का निरीक्षण करना चाहता है। इसी बात पर दोनों मे झगडा हो जाता है। चन्दनक वीरक को पटक कर मारता है। चन्दनक के संकेत को पाकर वर्धमानक गाडी बढा देता है। चन्दनक आर्यक को तलवार भी देता है और वह उसका आभार प्रकट करता हुआ राजा बनने पर उसको (चन्दनक को) स्मरण रखने का वचन देता है।

प्रवहण-विपर्यय घटना के आधार पर षष्ठ अंक का नामकरण 'प्रवहण-विपर्यय" किया गया है।

सप्तम अंक—आर्यकापहरण

सप्तम अंक मे चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना को लेकर आने वाली गाडी की प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं। इतने मे गाडी आती है। विदूषक जैसे ही पर्दा हटाकर भीतर देखता है, वैसे ही एक पुरुष को देखकर चिल्ला पडता है। चारुदत्त आश्चर्य मे पड जाता है और स्वयं आकर गाडी देखता है। उसमे बैठा हुआ

आर्यक उससे शरण मांगता है। चारुदत्त उसे केवल अभयदान ही नहीं देता अपितु उसके बन्धन कटवाकर उसे विदा करता है। चारुदत्त और विदूषक दोनों राजा के भय से शीघ्र पुष्पकरण्डक उद्यान से चले जाते हैं। यही अंक समाप्त हो जाता है।

सप्तम अंक का नामकरण 'आर्यकापहरण' किया गया है जो सर्वथा उचित है।

अष्टम अंक : 'वसन्तसेना-मोटन'

अष्टम अंक के प्रथम दृश्य में आर्द्र चीवर हाथ में लिये एक भिक्षु प्रवेश करता है। शकार और विट भी वहाँ आते हैं। शकार उद्यान की पुष्करिणी में चीवर धोने का अपराधी मानकर भिक्षु को मारता है। विट उस भिक्षु को मारने से रोकता है। भिक्षु शकार की स्तुति करता हुआ अपने प्राण बचाकर वहाँ से भाग जाता है। शकार और विट स्थावरक चेट की प्रतीक्षा करते हुए वहीं स्थिर रहते हैं।

अष्टम अंक के द्वितीय दृश्य में स्थावरक चेट गाडी लेकर आता है। तदनन्तर शकार गाड़ी को देखता है, और वहाँ वसन्तसेना को देखकर भय से बाहर आ जाता है। वह विट से कहता है कि गाडी में कोई स्त्री बैठी है। विट गाडी के भीतर घुसकर देखता है और वसन्तसेना को देखकर आश्चर्य में पड जाता है। वसन्तसेना उससे रक्षा की याचना करती है, विट उसे धैर्य बंधाता है और स्वयं गाडी से बाहर निकलकर शकार से कहता है कि वास्तव में गाड़ी में राक्षसी है। वह शकार को पैदल नगर-प्रस्थान का परामर्श देता है किन्तु शकार तैयार नहीं होता। अन्ततः विट उसे बतला देता है कि गाड़ी में वसन्तसेना है। शकार विट से वसन्तसेना को मारने को कहता है किन्तु विट वैसा करने से इंकार कर देता है। फिर वह चेट से वैसा करने के लिये कहता है किन्तु वह भी इंकार कर देता है। इस पर रोष में आकर शकार चेट को मारता है। चेट वहाँ से चला जाता है। शकार विट को भी वहाँ से भगाने का बहाना खोजता है। वह उससे कहता है कि वसन्तसेना तुम्हारे सामने मुझे स्वीकार नहीं करेगी, अतः तुम भी यहाँ से जाओ और चेट की खोज करो, जिससे वह कहीं भाग न जाये। इस पर विट भी प्रस्थान कर देता है। शकार वसन्तसेना से प्रणय-प्रार्थना करता है, किंतु वह उसकी प्रार्थना को ठुकरा देती है। क्रुद्ध होकर शकार वसन्तसेना का गला घोट देता है और वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ती है।

अष्टम अंक के तृतीय दृश्य में चेट को साथ लेकर विट प्रवेश करता है। विट शकार से वसन्तसेना के सम्बन्ध में पूछता है कि वह कहाँ गई। इस पर शकार कहता है कि मैंने उसे मार डाला है। वह मूर्च्छितावस्था में धरती पर पडी वसन्तसेना को दिखलाता है। विट इस घटना से अत्यन्त दुःखी होता है, और शकार का साथ छोडकर शर्विलक आदि से मिलने चला जाता है। उधर शकार

वसन्तसेना के शरीर को शुष्क पर्णों से ढककर छोड़ देता है और शीघ्र ही चारुदत्त के विरुद्ध वसन्तसेना की हत्या का मुकदमा चलाने न्यायालय पहुँच जाता है।

अष्टम अंक के चतुर्थ दृश्य मे संवाहक, जो बौद्ध भिक्षु बन गया है, प्रवेश करता है। वह अपना चीवर फैलाने के लिए स्थान खोजता है। इतने मे होश मे आने पर वसन्तसेना हाथ हिलाती है, भिक्षु पत्ते हटाकर वसन्तसेना को पहचानता है। वसन्तसेना लता का सहारा लेकर उठ खड़ी होती है। भिक्षु वसन्तसेना को विश्राम कराने के लिए समीपस्थ विहार मे ले जाता है और समुचित उपचार से उसे फिर स्वस्थ कर देता है। यहीं अंक समाप्त हो जाता है।

इस अंक का नामकरण 'वसन्तसेना-मोटन' है क्योंकि इसमें प्रवहण-विपर्यय के कारण शकार के पास पहुँच जाने वाली वसन्तसेना का उसके द्वारा गला घोटे जाने की महत्वपूर्ण घटना है।

नवम अङ्क : 'व्यवहार'

नवम अंक मे शकार न्यायालय (अधिकरणमण्डप) मे जाता है। वहाँ वह सूचना देता है कि पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान मे किसी धन-लोलुप ने वसन्तसेना को बाहुपाश-बलात्कार से मार डाला है। अधिकरणिक (न्यायाधीश) वसन्तसेना की माँ को जानकारी हेतु बुलवाते हैं। वह बतलाती है कि वसन्तसेना चारुदत्त के घर गयी थी। इस पर अधिकरणिक चारुदत्त को बुलवाते हैं। चारुदत्त कुछ संकोच के साथ वसन्तसेना के साथ अपनी मित्रता की बात स्वीकार करता है। वह कहता है कि वसन्तसेना अपने घर गई है किन्तु यह बतलाने मे असमर्थता प्रकट करता है कि वह गाड़ी से गई या पैदल। इतने मे क्रोधाभिभूत वीरक वहाँ आकर चन्दनक के साथ हुए अपने कलह की सूचना देता है और साथ ही यह भी बतलाता है कि चारुदत्त की गाड़ी मे बैठकर वसन्तसेना पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान जा रही थी। अधिकरणिक वीरक को उद्यान मे जाकर यह देखकर आने के लिए भेजते है कि वहाँ कोई स्त्री मरी हुई पड़ी है या नहीं। वीरक वहाँ जाकर और लौटकर उद्यान मे एक स्त्री के मृत शरीर के पड़े रहने की बात का समर्थन करता है। इसी बीच विदूषक वसन्तसेना के आभूषण लिए वहाँ आ पहुँचता है। उसका शकार के साथ कुछ झगड़ा हो जाता है। मारपीट मे विदूषक की बगल मे वसन्तसेना के आभूषण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। शकार उन्हे उठाकर सबको दिखाता है और कहता है कि इन्ही आभूषणो के लिए चारुदत्त ने वसन्तसेना को मारा है। अधिकरणिक के द्वारा आभूषणो के विषय मे पूछे जाने पर चारुदत्त यह तो स्वीकार करता है कि ये वसन्तसेना के हैं और वे उसके घर मे ही लाये गये हैं किन्तु यह बतलाने मे असमर्थता प्रकट करता है कि वे वसन्तसेना से अलग कैसे हुए। अधिकरणिक अभियोग को सत्य मानकर अपने निर्णय मे चारुदत्त को प्राणदण्ड का आदेश देते हैं। वे अपना निर्णय राजा पालक के पास लिखकर भेज देते हैं।

राजा पालक चारुदत्त को प्राणदण्ड की आज्ञा देता है। अधिकरणिक चाण्डालों को आदेश देने के लिए कहकर चले जाते हैं। अंक यहीं पर समाप्त हो जाता है।

नवम अंक का नामकरण 'व्यवहार' किया गया है, क्योंकि इस अंक में वसन्तसेना की हत्या के आरोप में न्यायालय में चारुदत्त पर संस्थानक (शकार) द्वारा अभियोग लगाये जाने का वर्णन हुआ है।

दशम अंक : 'संहार'

दशम अंक के प्रथम दृश्य में चारुदत्त को वध-स्थान ले जाते हुए चाण्डाल दिखाई देते हैं। विदूषक चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को वहाँ लेकर आता है। विदूषक और रोहसेन चाण्डालों से चारुदत्त को छोड़ देने की प्रार्थना करते हैं और कहते हैं कि चारुदत्त के स्थान पर हमारा वध करो। इधर शकार के महल में बाँधकर डाला गया स्थावरक चिल्ला-चिल्ला कर कहता है कि वसन्तसेना को चारुदत्त ने नहीं, अपितु शकार ने मारा है। किन्तु उसकी आवाज किसी के कान तक नहीं पहुँचती। अन्ततः वह एक गवाक्ष से छलांग लगाकर चाण्डालों के पास आता है और पुन: वही बात दोहराता है। इसी समय शकार वहाँ पहुँच जाता है और चाण्डालों से कहता है कि स्थावरक ने मेरा सोना चुराया था और मैंने इसे मार-कर बाँध दिया था। इसी का बदला लेने के लिए यह मुझ पर झूठा आरोप लगा रहा है। चाण्डाल शकार की बात को सत्य मानकर विश्वास कर लेते हैं। शकार स्थावरक को मारकर वहाँ से भगा देता है और चाण्डालों से चारुदत्त को शीघ्र मार डालने के लिए पुनः-पुनः कहता है।

दशम अंक के द्वितीय दृश्य में भिक्षु और वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाते दिखाई देते हैं। मार्ग में भीड़ देखकर वसन्तसेना भिक्षु को कारण जानने के लिए निवेदन करती है। इसी बीच चाण्डाल पुनः चारुदत्त के अपराध और उसके लिए मिले प्राणदण्ड की घोषणा करते हैं। भिक्षु घबराया हुआ लौटता है और वसन्त-सेना को सारा वृत्तान्त सुना देता है। वे दोनों तेज गति से वधस्थान की ओर प्रस्थान कर देते हैं। उनके पहुँचने के पूर्व ही एक चाण्डाल चारुदत्त पर तलवार चलाता है परन्तु तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर जाती है। फिर जैसे ही चाण्डाल चारुदत्त को सूली पर चढ़ाना चाहते हैं, वैसे ही भिक्षु और वसन्तसेना वहाँ पहुँच जाते हैं। वसन्तसेना को जीवित देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। चाण्डाल भी चारुदत्त को छोड़कर वसन्तसेना के जीवित होने की सूचना राजा को देने चले जाते हैं। वसन्तसेना को देखकर शकार भी वहाँ से भाग जाता है। चारुदत्त वसन्तसेना और भिक्षु को देखकर आनन्दमग्न हो जाता है।

दशम अंक के तृतीय दृश्य में शर्विलक प्रवेश करता है। वह चारुदत्त को आर्यक के द्वारा राजा पालक के मारे जाने से राज्य-परिवर्तन का समाचार देता है। राजा पालक के स्थान पर आर्यक राजा हो जाता है। वह चारुदत्त की मुक्ति तथा शकार को प्राणदण्ड का आदेश देता है। इसी समय कुछ लोग शकार को

पकडकर वहाँ ले आते हैं। शकार चारुदत्त की शरण जाता है। चारुदत्त अपने दयालु स्वभाव के कारण शकार को क्षमाकर अभयदान देता है।

दशम अंक के चतुर्थ दृश्य में चन्दनक आकर सूचना देता है कि चारुदत्त के वध के समाचार से दुःखी होकर उसकी पत्नी धूता सती हो रही है। यह समाचार सुनकर सब लोग तुरन्त वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ धूता चिता तैयार कर मरने का प्रयत्न कर रही थी। चारुदत्त आगे बढ़कर उसे मना करता है। धूता चारुदत्त का स्वर पहचानकर प्रसन्न हो उठती है। इस प्रकार चारुदत्त धूता को सती होने से बचा लेता है। प्रसन्न होकर धूता और वसन्तसेना एक दूसरे का आलिंगन करती है। शर्विलक वसन्तसेना से कहता है कि राजा आर्यक तुम्हें 'वधू' शब्द से अनुगृहीत करते हैं। वसन्तसेना इस अनुग्रह से अपने को कृतकृत्य समझती है। भिक्षु पृथ्वी पर सब विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। स्थावरक को शकार की दासता से मुक्त कर दिया जाता है। दोनों चाण्डाल सब चाण्डालों के अधिपति बना दिये जाते हैं। चन्दनक को पृथ्वीदण्डपालक का पद दिया जाता है और वधयोग्य शकार को भी क्षमाकर उसका अधिकार स्थायी रूप से पूर्ववत् बना रहने दिया जाता है। इसी आनन्दमय वातावरण में भरतवाक्य के साथ प्रस्तुत प्रकरण-ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

अन्तिम दशम अंक का नामकरण 'संहार' किया गया है क्योंकि इसमें वक्तव्य वस्तु का उपसंहार हुआ है।

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र की दृष्टि से मृच्छकटिक की कथावस्तु की अन्य विशेषतायें—

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र (नाट्यकला) के अनुसार नाटक की कथा के विकास के पाँच सोपान (खण्ड) होते हैं—१. आरम्भ, २. आरोह, ३. केन्द्र, ४. अवरोह और ५. परिणाम।

आरम्भ—जहाँ द्वन्द्व की उत्पत्ति होती है, उस भाग को आरम्भ कहते हैं।

आरोह—कथा का वह भाग है जहाँ उलझनें बढ़ती ही जाती हैं।

केन्द्र—उस बिन्दु को कहते हैं जहाँ उलझनें अपनी चरम सीमा को पारकर जाती है। इसके बाद कथा का उतार आरम्भ हो जाता है।

अवरोह—कथा के उस भाग को कहते हैं जहाँ उलझनें एक-एक करके सुलझने लगती है और कथा तेजी से परिणाम की ओर अग्रसर होती दिखाई देती हैं।

परिणाम—फलोदय को परिणाम कहते हैं। यह फल इष्ट या अनिष्ट दो रूपों में हो सकता है, क्योंकि पाश्चात्य रूपकों में कथावस्तु सुखान्त या दुःखान्त दो रूपों में देखी जाती है। किन्तु भारतीय रूपकों में कथावस्तु सुखान्त होती है, इसी कारण यहाँ के रूपकों में सर्वदा इष्टप्राप्ति ही परिणाम होता है।

मृच्छकटिक का अध्ययन करने पर हमें उपर्युक्त पाँचों बातें समुचित रूप से देखने को मिलती हैं।

मृच्छकटिक के प्रथम अंक के आरम्भ से लेकर चारुदत्त की 'भवतु, तिष्ठतु-प्रणयः'[1] उक्ति तक कथा का आरम्भ कहा जा सकता है।

वसन्तसेना की (स्वगतम्) 'चदुरो मधुरो अ अअं उवण्णासो।'[2] इत्यादि उक्ति से लेकर दशम अंक में चाण्डाल की—'अज्ज चालुदत्त। लाअणिओओ क्खु अवलज्झदि, ण क्खु अम्हे चाण्डाला। ता शुमलेहि जं शुमलिदव्वं तथा 'अज्जचालुदत्त। शामिणिओओ अवलज्झदि। ता शुमलेहि जं शुमलिदव्वं'[3] के बाद चारुदत्त की ' किं बहुना' 'इत्यादि उक्ति तक कथा का आरोह कहा जा सकता है।

दशम अंक में चाण्डाल की '(खड्गमाकृष्य) अज्जचालुदत्त ! उत्ताणे भविअ समं चिट्ठ'[5] इत्यादि उक्ति से 'प्रथम —भोदु, एव्वं कलेम्ह (इत्युभौ चारुदत्तं शूले समारोपयितुमिच्छतः') ।[6] चारुदत्त.—'प्रभवति' इत्यादि पुनः पठति'[7] तक कथा का केन्द्र माना जा सकता है।

दशम अंक में भिक्षु और वसन्तसेना की—'अज्जा ! मा दाव मा दाव'[8] उक्ति से लेकर शकार की 'हीमादिके ! पच्चुज्जीविदम्हि'[9] उक्ति तक कथा का अवरोह स्वीकार किया जा सकता है। इसके पश्चात् 'नेपथ्य कलकल.'[10] से दशम अंक की समाप्ति तक कथा का परिणाम माना जा सकता है।

१- मृच्छकटिक, प्रथम अंक पृ० ८८

२- संस्कृत छाया—(स्वगतम्) चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः।

वही, प्रथम अंक, पृ० ८८

३- (क) संस्कृत छाया—आर्यचारुदत्त ! राजनियोगः खलु अपराध्यति, न खलु वयं चाण्डालाः। तत् स्मर यत् स्मर्तव्यम्। वही, दशम अंक पृ० ५५६
(ख) आर्य चारुदत्त ! स्वामिनियोगोऽपराध्यति। तत्स्मर यत्स्मर्तव्यम्।

वही, दशम अंक, पृ० ५६६

४- वही, दशम अंक, पृ० ५६६

५- संस्कृत छाया—आर्यचारुदत्त ! उत्तानो भूत्वा सम तिष्ठ।

वही, दशम अंक, पृ० ५६६

६- संस्कृत छाया—प्रथम.—भवतु एवं कुर्वः। वही, दशम अंक पृ० ५६८

७- वही, १०/३४

८- संस्कृत छाया—भिक्षुर्वसन्तसेना च—(दृष्ट्वा) आर्याः ! मा तावन्मा तावत्।

मृच्छकटिक, दशम अंक, पृ० ५६८

९- संस्कृत छाया—शकारः—हन्त ! प्रत्युज्जीवितोऽस्मि। वही, दशमांक, पृ० ५८९

१०- वही, दशम अंक, पृ० ५८६

अध्याय ५

मृच्छकटिक के पात्र तथा चरित्रचित्रण

भारतीय नाट्य-साहित्य मे नेता (नायक) रूपक का अन्यतम तत्त्व माना गया है। उसके चार भेदों—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त[1]—के वर्णन के साथ-साथ उसके सहायकों और प्रतिनायक का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार नायिका तथा प्रतिनायिका का भी विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। आधुनिक नाट्य-समीक्षा मे रूपक के इस तत्त्व का विवेचन पात्र तथा चरित्र-चित्रण के रूप मे किया जाता है। मृच्छकटिक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण तथा अनूठे ढंग का प्रकरण है। इसकी कथावस्तु मध्यमवर्ग के जीवन के आधार पर कल्पित की गई है। इसमे समाज के समस्त वर्गों के पात्र उपलब्ध होते हैं। एक ओर सभ्य किन्तु निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त, राजा पालक और अधिकरणिक (न्यायाधीश) जैसे सम्मानित पात्र हैं, तो दूसरी ओर चोर, जुआरी, विट, चेट और चाण्डाल जैसे पात्र है। इसी प्रकार एक ओर धूता जैसी पतिव्रता स्त्री का चित्रण है, तो दूसरी ओर धन-लिप्सा-रहित गुणानुरक्त वार-वनिता वसन्तसेना का चित्रण है। इस प्रकरण का वातावरण राजश्यालक, राजपुरुष (पुलिस-कर्मचारी), वेश्या, विट, चेट, चोर, जुआरी आदि से निर्मित हुआ है। इस प्रकरण मे अतिमानवीय अर्थात् दिव्य पात्रों की कल्पना नही की गई है और न ही आदर्शवादी दृष्टिकोण से पात्रों का चित्रण किया गया है, अपितु पात्रो का चित्रण यथार्थोन्मुख है। इसके पात्र यथार्थता की जीती-जागती मूर्ति हैं, वे इसी लोक की सजीवता की मूर्ति हैं। मृच्छकटिक के पात्र किसी वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि नहीं हैं, वे अपनी-अपनी विशेषतायें लिए हुए है। यथा चारुदत्त को साधारण ब्राह्मण-श्रेष्ठी नही कहा जा सकता। इसी प्रकार शर्विलक, शकार, संवाहक तथा विट आदि मे भी अपनी निजी विशेषतायें हैं। सभी पात्रो के कार्य-व्यापार और व्यवहार अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुरूप दिखलाये गये हैं। उनकी भाषाओं और विचारों से उनके व्यक्तित्व की झलक प्राप्त होती है। मृच्छकटिक के पात्र एव चरित्र-चित्रण की प्रणाली सर्वथा स्तुत्य है। अब मुख्य पात्रो का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत है।

चारुदत्त—रूपक मे नायक का विशेष स्थान होता है। कथावस्तु का सारा चमत्कार नायक पर ही निर्भर होता है। यद्यपि अन्य सभी पात्रों का उसे सहयोग प्राप्त होता है, फिर भी उसका अपना वैशिष्ट्य होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी रूपक का नायक विनयी, प्रिय-दर्शन, त्यागी, दक्ष, लोक-प्रिय, मधुर-भाषी, पवित्र, वाक्-कुशल, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला

१. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च ।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्त प्रथमश्चतुर्भेद ॥ साहित्यदर्पण ३/३१

और स्वाभिमान से युक्त, शूरवीर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रानुकूल कार्य करने वाला और धार्मिक होना चाहिए।[1] नायक चार प्रकार के होते हैं—१. धीरोदात्त २. धीरललित ३. धीरप्रशान्त और ४. धीरोद्धत।

मृच्छकटिक प्रकरण का नायक चारुदत्त है। वह नायकोचित सभी गुणों से युक्त है। विद्वानों ने इसको धीरप्रशान्त नायक माना है। दशरूपक के अनुसार धीर-प्रशान्त का निम्नलिखित लक्षण है—

'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरप्रशान्तो द्विजादिकः।'[2]

चारुदत्त में सामान्य नायक के प्रायः समस्तगुण विद्यमान हैं. वह जन्मजात ब्राह्मण-युवक है। प्रस्तावना में सूत्रधार ने कहा है—प्रवत्तिपुर्या द्विजसार्थवाहः।'[3] दशम अंक में चारुदत्त ने भी स्वयं को ब्राह्मण बताया है। अपने पुत्र को दाय के रूप में अपना यज्ञोपवीत देते हुए वह कहता है—

'अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।'[4]

किन्तु कर्मणा वह वैश्य है। वह सार्थवाह (व्यापारियों के काफिले का नेता) है। उसके पूर्वज प्रसिद्ध व्यापारी थे। उसने अपने पूर्वजों से अपार धन-सम्पत्ति प्राप्त की। अपनी अतिशय उदारता और दानशीलता के कारण वह अपनी सारी सम्पत्ति निर्धनों को दे देता है और दरिद्र हो जाता है। निर्धन दशा में भी वह अपने दान, दया, परोपकार और उदारता आदि गुणों के कारण नगरवासियों का श्रद्धापात्र बना हुआ है। प्रथम अंक में कहा भी गया है—'दीनानां कल्पवृक्षः।'[5]

वह एक सुन्दर युवक है। द्वितीय अंक में संवाहक वसन्तसेना को चारुदत्त का परिचय देते हुए उसे प्रियदर्शन बताता है—'जे तालिशे पिअदंशणे।'[6] सप्तम अंक में आर्यक भी उसके बाह्य व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए कहता है—

'न केवलं श्रुतिरमणीय. दृष्टिरमणीयोऽपि।'[7]

---

१. (क) नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः। दशरूपक २/१-२

(ख) साहित्यदर्पण ३/३०

२. (क) दशरूपक २/४

(ख) सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्तः स्यात्॥ साहित्यदर्पण ३/३४

३ मृच्छकटिक (चौखम्बा संस्करण), पृ० ७

४. वही, १०/१८, पृ० ५३५

५. वही, १/४८

६. यस्तादृशः प्रियदर्शनः। वही, द्वितीय अंक, पृ० १२८

७. वही, सप्तम अंक, पृ० ३६४

वह अत्यन्त लोकप्रिय तथा सुप्रतिष्ठ है। न्यायाधीश से लेकर चाण्डाल पर्यन्त तथा विट-चेट आदि सभी उसके प्रति सम्मान की भावना तथा अगाध स्नेह रखते हैं। वह स्वयं भी छोटों से स्नेह रखता है और अग्रजों के प्रति सम्मान दिखाता है। वसन्तसेना से बातचीत करते हुए संवाहक कहता है—

अज्जे ! के दाणिं तस्स भदल-मिअंकस्स णामं ण जाणादि।[1]

सप्तम अंक में चन्दनक भी कहता है—

अरे ! अज्जचारुदत्तं ण जाणासि।[2]

चारुदत्त स्वभाव से अत्यन्त उदार और दयालु है। जब कोई उत्तम एवं प्रशंसनीय कार्य करता है अथवा उसे शुभ समाचार सुनाता है, तो वह उसे कुछ न कुछ पुरस्कार अवश्य देना चाहता है। द्वितीय अंक में संवाहक उसकी उदारता आदि गुणों की अति प्रशंसा करता है।[3] कर्णपूरक को अपना दुशाला पुरस्कार में दे देता है। अपनी अत्यधिक उदारता के कारण ही वह शर्विलक के द्वारा स्वर्ण-भाण्ड के चुरा लिये जाने पर भी यह सोचकर प्रसन्नता का अनुभव करता है कि चोर मेरे घर से खाली हाथ नहीं गया।[4] पंचम अंक में विदूषक चारुदत्त को कहता है कि वसन्तसेना रत्नावली पाकर भी असन्तुष्ट है, वह कुछ और मांगने सायंकाल आयेगी। इस पर चारुदत्त प्रसन्नतापूर्वक कहता है—वयस्य ! आगच्छतु, परितुष्टा यास्यति।[5] वसन्तसेना के आने पर वह प्रसन्नता व्यक्त करता है और उसका स्वागत करता है। अतिशय उदारता के कारण वसन्तसेना उससे प्रेम करती है। चारुदत्त सेवकों के प्रति दयालु है, इसी से वह सोई हुई रदनिका को जगाना नहीं चाहता—(सानुकम्पम्) अलं सुप्तजनं प्रबोधयितुम्।[6] पशु-पक्षियों के प्रति वह करुणा दिखाता है। अपनी उदारता के कारण वह दरिद्रता को मृत्यु से

---

१. संस्कृतछाया—आर्ये क इदानीं तस्य भूतलमृगाङ्कस्य नाम न जानाति।
वही, द्वितीय अंक, पृ० १२६

२ संस्कृतछाया—अरे, आर्यं चारुदत्तं न जानासि। वही, षष्ठ अंक, पृ० २४०

३. दइअ ण कित्तेदि, अवकिदं विसुमलेदि। किं बहुणा उत्तेण, दक्खिणदाए परकेलअं विअ अत्ताणअं अवगच्छदि। शलणागदवच्छले अ।

संस्कृतछाया—दत्त्वा न कीर्तयति, अपकृतं विस्मरति। किं बहुना उक्तेन, दक्षिणतया परकीयमिव आत्मानमवगच्छति, शरणागतवत्सलश्च।
वही, द्वितीय अंक, पृ० १२८

४. वही, तृतीय अङ्क, पृ० १७६-१७६

५. वही, पञ्चम अङ्क, पृ० २६६

६. वही, तृतीय अङ्क, पृ० १५७

भी अधिक कष्टदायक समझता है।[1]

चारुदत्त अपराधी के प्रति भी क्रोध नहीं करता है, वह शरणागत की रक्षा करता है। विदूषक सुवर्ण-भाण्ड की चोरी हो जाने का उत्तरदायित्व चारुदत्त पर मढ़ता है[2] नवम अंक में न्यायालय में विदूषक की गलती से ही आभूषण प्रकाश में आते हैं और चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग पुष्ट हो जाता है।[3] किंतु चारुदत्त उस पर नाराज नहीं होता। दशम अंक में जब शकार उसकी शरण में आता है, तो वह उसको क्षमा कर अभयदान देता है। उसमें बदला लेने की प्रवृत्ति नहीं है। शरण में आये हुए आर्यक को भी अभयदान देता है—

---

१ (क) एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्॥ मृच्छकटिक १/१२

(ख) सत्यं न मे विभवनाशकृताऽस्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य
यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति॥ वही, १/१३

२- (क) भो वअस्स! तुमं सव्वकालं भणासि मुक्खो मित्तेअो, अपण्डिदो मित्तेअोत्ति। सुट्ठु मए किदं तं सुवण्णभण्डअं भवदो हत्थे समप्पअन्तेण। अण्णधा दासीए पुत्तेण अवहिदं भवे।

संस्कृत छाया—भो वयस्य! त्वं सर्वकालं भणसि मूर्खो मैत्रेय इति। सुष्ठु मया कृतं तत् सुवर्णभाण्डं भवतो हस्ते समर्पयता। अन्यथा दास्याः पुत्रेण अपहृतं भवेत्। वही, तृतीय अंक, पृ० १७८

(ग) चारुदत्त—कस्यां वेलायाम्।

विदूषक—भो जदा तुमं मए भणिदोऽसि—सीदलो दे अग्गहत्थो।

संस्कृत छाया—भो! यदा त्वं मया भणितोऽसि—शीतलस्ते अग्रहस्तः।

वही, तृतीय अंक, पृ० १७९

३-(विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति) पेक्खन्तु पेक्खन्तु अज्जा। एदे क्खु ताए तवस्सिणीए केरका अलङ्कारा। (चारुदत्तमुद्दिश्य) इमस्स अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो एशा मालिदा वावादिदा अ।

संस्कृत छाया—प्रेक्षन्तां प्रेक्षन्तामार्याः। एते खलु तस्यास्तपस्विन्या अलङ्काराः। अस्य अर्थकल्पवर्तस्य कारणादेषा मारिता व्यापादिता च।

वही, नवम अंक, पृ० ४०५

'यदि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् ।'[1]

चारुदत्त निर्भीक है। जब विदूषक उसे बतलाता है कि शकार मरणान्तिक शत्रुता की धमकी दे गया है, तो वह अवज्ञा से इतना मात्र ही कहता है—'मूर्खोऽसौ'[2]। मृत्युदण्ड का आदेश हो जाने पर भी वह भयभीत नहीं होता, उसे केवल दुःख है तो अपनी प्रतिष्ठा के भंग होने का ही—

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः ।[3]

चारुदत्त को अपनी प्रतिष्ठा और चरित्र की उज्ज्वलता का पूर्ण ध्यान रहता है। इसीलिए वह वसन्तसेना के धरोहर रूप में रखे हुए स्वर्ण-भाण्ड के चोरी चले जाने पर मूर्च्छित हो जाता है और नाना प्रकार की आशंकायें प्रकट करता है।[4] यद्यपि उसे चरित्र को कलंकित करने वाले असत्य भाषण से घृणा है, तथापि कभी कभी अपनी कीर्ति एवं प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, दूसरों की भलाई करने के लिए तथा अपने को दूसरों की दया का पात्र बनने से बचाने के लिए वह झूठ भी बोल देता है। वह विदूषक के द्वारा वसन्तसेना से कहलवाता है कि मैं तुम्हारे *आभूषण अपने समझकर जुए में हार गया हूँ। उनके बदले यह रत्नावली ले लो।* कहने को यह झूठ है किन्तु दूसरों को हानि पहुँचाने वाला झूठ नहीं है। यह तो वसन्तसेना को व्यर्थ की हानि से बचाने और अपनी कीर्ति की रक्षार्थ बोला गया झूठ है।

वारवनिता वसन्तसेना से प्रेम करते हुए भी चारुदत्त में चरित्र सम्बन्धी दृढ़ता है। वह अपनी पत्नी धूता से प्रेम करता है और उसे पवित्र मानता हुआ उसका आदर करता है। वसन्तसेना के आभूषणों को वह अन्तःपुर में प्रवेश के योग्य नहीं समझता है।[5] विलासी स्वभाव वाला होने के कारण रूपयौवनवती वसन्तसेना पर मुग्ध होने पर भी वह अपने गार्हस्थ्य धर्म का सम्यक् रूप से पालन

१- (क) (चारुदत्त प्रति) भो अशलणशलणे। पलित्ताआहि।
संस्कृत छाया—भो अशरणशरण। परित्रायस्व।
चारुदत्त—(सानुकम्पम्) अहह्। अभयमभयं शरणागतस्य।
वही, दशम अंक, पृ० ५८६

(ख) वही, सप्तम अंक, ७/६

२- वही, प्रथम अंक, पृ० ८६

३- वही, १०/२७

४- (क) कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ॥ मृच्छकटिक, ३/२४

(ख) भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम्।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ॥ वही, ३/२७

५- अलं चतुःशालमिमं प्रवेश्य, प्रकाशनारीधृत एष यस्मात्।
तस्मात् स्वयं धारय विप्र! तावत्, यावन्न तस्याः खलु भो समर्प्यते॥ वही, ३/७

करता है। वह अपनी विवाहिता पतिव्रता भार्या धूता पर गर्व करता है। अपनी पत्नी और पुत्र से प्रेम करता है। विदूषक के हाथ पत्नी धूता द्वारा भेजी हुई रत्नावली को पाकर वह गर्व से कह उठता है—'नाहं दरिद्रः। यस्य मम—'विभवानुगता भार्या......' इत्यादि।[1] दशम अंक में जब चाण्डाल मृत्युदण्ड के लिए ले जाते हैं, तो वह पुत्रदर्शन की अन्तिम अभिलाषा व्यक्त करता है। रोहसेन के आने पर वह उसे दाय के रूप में अपना यज्ञोपवीत देता है।[2]

वह विलासी प्रकृति का होते हुए भी नैतिक नियमों का सदा पालन करता है। वह परस्त्री पर दृष्टि भी नहीं डालना चाहता। वह विदूषक से कहता है—'न युक्त परकलत्रदर्शनम्'।[3] *प्रथम अंक में जब चारुदत्त को यह ज्ञात होता है कि जिस* स्त्री को वह रदनिका समझकर व्यवहार कर रहा था, वस्तुतः वह रदनिका नहीं है, तो वह खिन्न होकर कहता है—

इयं सा रदनिका। इयमपरा का। अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा।[4] न्यायालय में जब अधिकरणिक उससे वसन्तसेना से प्रेम के सम्बन्ध में पूछते हैं, तो वह लज्जित हो जाता है।

चारुदत्त एक चतुर नागरिक है। वह यह जानता है कि अपनी प्रिया का अनुनय-विनय कैसे करना चाहिए। यह ज्ञात होने पर कि जिसे वह रदनिका समझकर व्यवहार कर रहा था, वास्तव में वह वसन्तसेना है, तो वह उससे कहता है—

'भवति! वसन्तसेने! अनेनाविज्ञानादपरिज्ञानपरिजनोपचारेण अपराद्धोऽस्मि। शिरसा भवतीमनुनयामि।'[5] उसकी प्रणय-प्रार्थना भी गूढ़ व्यंग्य के रूप में उस समय प्रकट होती है जब वह कहता है—'तिष्ठतु प्रणयः।'[6] वसन्तसेना *उसके गूढ़ आशय को समझ जाती है। प्रथम अंक के अन्त में वह स्वयं रात्रि* के अन्धकार में वसन्तसेना को उसके घर पहुँचाने जाता है। पञ्चम अंक में वसन्तसेना के घर आने पर वह उसका खड़ा होकर स्वागत करता है। उसे वर्षा से भीगा हुआ देखकर बदलने के लिए दूसरे वस्त्र देता है।[7] मेघों की गर्जना को

१- वही, ३/२८

२- अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।
देवतानां पितृणाञ्च भागो येन प्रदीयते॥
(इति यज्ञोपवीतं ददाति) वही, दशम अंक, पृ० ५३५

३- वही, प्रथम अंक, पृ० ८४

४- वही, प्रथम अंक, पृ० ८४

५- वही, प्रथम अंक, पृ० ८७

६- वही, प्रथम अंक, पृ० ८८

७- वही, पंचम अंक, पृ० २९८

भी अपने ऊपर प्रसाद मानता है और अपने को कृतार्थ समझता है।[१]

चारुदत्त कला-प्रिय व्यक्ति है। वह रेभिल के संगीत की ताल, लय तथा मूर्च्छना इत्यादि का विश्लेषण करते हुए प्रशंसा करता है। शर्विलक के द्वारा लगाई गई सेंध को देखकर भी उसकी कलात्मकता की भूरि-भूरि सराहना करता है।[२]

चारुदत्त धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वह सन्ध्यावन्दन आदि नित्य कर्मों का नियमपूर्वक अनुष्ठान करता है और समाधि लगाता है। जब विदूषक देवपूजा मे अनास्था व्यक्त करता है तो चारुदत्त उसे देवपूजा का महत्त्व समझाते हुए कहता है—वयस्य। मा एवम्। गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः।[३] वह भाग्यवादी भी है।[४] आर्यक से भी उसने कहा है—स्वैर्भाग्यैः परिरक्षितोऽसि।[५] तथा—'विधिनैवोपनीतस्त्वं चक्षुर्विषयमागतः।'[६] प्रकरण की समाप्ति पर वह विधि-विधान की दुहाई देते कहता है—यह भाग्य कूपयन्त्र (रहट) की घटिकाओं की भाँति है जो कभी मानव-जीवन को रिक्त और कभी पूर्ण करता है। इसके अतिरिक्त कभी किसी को उन्नति प्रदान करता है और कभी अधःपतित कर देता है।[७]

वह किसी पर उपकार करके उस बात को अपने मुख से दोहराता नही है। दशम अंक मे शर्विलक आर्यक का परिचय देते हुए चारुदत्त से कहता है—*जो आर्यक आपकी शरण मे आया था, उस आर्यक के द्वारा आज पालक मारा गया।* इस पर चारुदत्त तुरन्त बात का प्रवाह बदलकर आर्यक की मुक्ति का श्रेय शर्विलक को देता है, स्वय नही लेता।[८]

१- वही, ५/४७, ४८, ४९।

२- वही, ३/२२

३- वही, प्रथम अंक, पृ० ३३। निम्नलिखित भी द्रष्टव्य है—
तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभि.।
तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किं विचारितैं॥ वही, १/१६

४- भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। वही, १/१३

५- वही, सप्तम अंक, पृ० ३६६

६- वही, सप्तम अंक, पृ० ३६५

७- कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुन कांश्चिन्नयत्याकुलाम्।
अन्योन्यप्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय—
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधि॥ वही, १०/५९

८- शर्विलक—त्वद्यानं यः समारुह्य गतस्त्वां शरणं पुरा।
पशुवद्वितते यज्ञे हतस्तेनाद्य पालकः॥ १०/५२
चारुदत्त—शर्विलक! योऽसौ पालकेन घोषादानीय निष्कारणं कूटागारे बद्ध आर्यकनामा त्वया मोचितः। वही, दशम अंक, पृ० ५८३

वह शकुन आदि पर भी पूर्ण विश्वास करता है। अधिकरणिक द्वारा बुलाये जाने पर वह कहता है कि कौआ रूखे स्वर से बोल रहा है, मन्त्रियों के सेवक बार-बार बुला रहे हैं, मेरी बाईं आँख बलपूर्वक फड़क रही है। ये अपशकुन मुझे खिन्न कर रहे हैं। भूमि गीली न होने पर भी पैर फिसल रहा है, बाईं आँख फड़क रही है तथा बाईं भुजा बार-बार काँप रही है। फिर यह दूसरा पक्षी भी अनेक बार बोल रहा है। ये सब भयंकर मृत्यु की सूचना दे रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।[1]

चारुदत्त विनोदप्रिय भी है। वसन्तसेना के सुवर्णभाण्ड के चुराये जाने पर वह चोर (शर्विलक) के विषय में कहता है—वयस्य। दिष्ट्या ते प्रियं निवेदयामि यदसौ कृतार्थो गतः।[2]

चारुदत्त का ज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय में भी अत्यन्त गहन प्रतीत होता है। निद्रा के सम्बन्ध में उसके आलंकारिक विचार दर्शनीय हैं—आँखों का सहारा लेने वाली यह निद्रा ललाटदेश से मेरी ओर आ रही है। यह अदृश्य रूप वाली वृद्धावस्था के समान मनुष्य के बल का अपहरण करके वृद्धि को प्राप्त हो रही है।[3]

शकार की धूर्तता के कारण मिथ्याभियोग से प्राणदण्ड पाकर भी शरणागत शकार को मृत्यु से मुक्ति दिलाने के लिए प्रकट विचार सर्वथा स्तुत्य है कि शरणागत अपराधी को शस्त्र से न मारकर उपकार के द्वारा मारना चाहिए।[4]

संक्षेप में चारुदत्त प्रियदर्शन, लोकप्रिय, उदार, दानी, दयालु, दृढ़ चरित्र-युक्त, कलाप्रिय और धार्मिक प्रवृत्ति का नायक है। इस प्रकार चारुदत्त में एक प्रकरण के नायक के लिए आवश्यक सभी गुण विद्यमान हैं। वस्तुतः उसका चरित्र अद्वितीय आदर्श है।

वसन्तसेना

मृच्छकटिक एक ऐसा प्रकरण है जिसमें कुलस्त्री और गणिका दो नायिकाएँ हैं।[5] कुलस्त्री धूता है और गणिका वसन्तसेना है। इनमें वसन्तसेना का चरित्र मुख्य रूप से चित्रित किया गया है। नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं—१-स्वकीया २-परकीया और ३-साधारण स्त्री।[6] साधारण स्त्री को गणिका कहते हैं,

१- द्रष्टव्य—मृच्छकटिक, ६/१०, ११, १२, १३
२- वही, तृतीय अं, पृ० १३८
३- इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।
अदृश्यरूपा चपला जरेव मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्द्धते॥ वही, ३/८
४- शत्रुः कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः।
शस्त्रेण न हन्तव्यः उपकारहतस्तु कर्त्तव्यः॥ वही, १०/५५ पृ० ५८८-८६
५- नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्। सा० दर्पण, ६/२३६
६- स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।
मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्॥ दशरूपक, २/१५

वह कला, प्रगल्भता तथा धूर्तता से युक्त होती है।[1] प्रकरण इत्यादि रूपकों में गणिका को अनुरक्त दिखाया जाता है।[2] प्रस्तुत प्रकरण में वसन्तसेना को चारुदत्त के प्रति अनुरक्त दिखाया गया है।

वसन्तसेना उज्जयिनी की समृद्धि एवं वैभव-सम्पन्न गणिका है। चतुर्थ अंक में उसका वैभव देखकर विदूषक उसकी चेटी से कहता है—"बहुत प्रकार के मानव, पशु-पक्षी युक्त वसन्तसेना के आठ प्रकोष्ठ वाले भवन को देखकर मुझे सच में विश्वास हो गया है कि मैंने एक ही स्थान पर स्थित स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल-लोक युक्त त्रिभुवन देख लिया है। मेरी वाणी में इसकी प्रशंसा करने की क्षमता नहीं है। क्या यह गणिका का घर है अथवा कुबेर के भवन का एक खण्ड है।"[3] इस प्रकार वसन्तसेना के पास जीवन का समस्त वैभव है। चतुर्थ अंक में मृच्छकटिककार ने उसके वैभव का विस्तृत वर्णन किया है।[4]

वसन्तसेना एक सुन्दर युवती है और उज्जयिनी नगरी का विभूषण है। शकार के वसन्तसेना को मारने के लिये विट से कहने पर वह कानों पर हाथ रखकर उसके सम्बन्ध में कहता है—"यदि मैं बाल स्त्री, उज्जयिनी का विभूषण एवं वेश्याओं के विरुद्ध कुलकामिनी के समान प्रेम-परायण, निरपराध इस वेश्या वसन्तसेना को मारता हूँ तो परलोक रूपी नदी को किस नाव से पार करूँगा ?"[5]

चारुदत्त ने भी उसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा है—"यह तो शरद्कालीन मेघ से आच्छन्न चन्द्रकला की भाँति दृष्टिगोचर होती है।"[6]

शकार के यह कहने पर कि मैंने वसन्तसेना को मारा है, विट करुणायुक्त होकर विलाप करते हुए कहता है—उदारता का स्रोत, सौंदर्य में रति, सुमुखी,

---

१- साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। वही, २/२१

२- रक्तैव त्वप्रहसने नैषा दिव्यनृपाश्रये ।। वही, २/२३

३- विदूषक—एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्ठपओट्ठं भवणं पेक्खिअ, जं सच्चं जाणामि, एकत्थं विअ तिविट्ठअ दिट्ठं। पसंसिदुं णत्थि मे वाआविहवो। किं दाव गणिआघरो ? अधवा कुबेरभवणपरिच्छेदो त्ति ?
संस्कृतछाया—एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तम् अष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य, यत् सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम्। प्रशंसितुं नास्ति मे वाचाविभवः। किं तावत् गणिकागृहम् ? अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः ? इति।
चतुर्थ अंक, पृ० २४६–२४७

४- मृच्छकटिक, पृ० २२६–२४६

५- बाला स्त्रियञ्च नगरस्य विभूषणञ्च
वेश्यामवेश-सदृश-प्रणयोपचाराम्।
एनामनागसमहं यदि मारयामि
केनोडुपेन परलोकनदीं तरिष्ये ।। वही, ८/२३

६- छादिता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव दृश्यते। वही, १/५४

अलंकारों को भी अलंकृत करने वाली और सौजन्य की नदी नष्ट हो गई ।[1]

वसन्तसेना एक उदारहृदया नारी है । द्वितीय अंक में जब संवाहक उसकी शरण में आता है तो वह अपरिचित होने पर भी उसे शरण देकर अभयदान देती है । संवाहक की आपत्ति का कारण जानकर वह उसे ऋणमुक्त कराने के लिए अपना स्वर्ण-कंकण सभिक के पास भेज देती है और कहलाती है कि इसे संवाहक ने ही भेजा है । वसन्तसेना पर लक्ष्मी की अपार कृपा है । वह किसी भी आपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति की धन से निराकृत होने वाली आपत्तियों को टालने के लिए सदैव उद्यत रहती है । वेश्या होने पर भी वह धार्मिक प्रवृत्ति के कारण प्रतिदिन देव-पूजन करती है ।[2]

चतुर्थ अंक में जब वसन्तसेना को यह ज्ञात होता है कि शर्विलक मदनिका से प्रेम करता है, तो वह अपनी उदारता के ही कारण मदनिका को दासता से मुक्त कर शर्विलक को सौंप देती है ।

मदनिका वसन्तसेना के उदारतापूर्ण विचारों का वर्णन करती हुई शर्विलक से कहती है कि आर्या कहती हैं कि यदि मेरा वश हो तो धन के बिना सब सेवकों को स्वतन्त्र कर दूँ ।[3] चारुदत्त के घर में सुवर्णभाण्ड धरोहर रखकर कई दिन तक वह उसके घर इसलिये नहीं जाती कि कहीं चारुदत्त उसे कृपण तथा अविश्वास-युक्त न समझ ले । जब सुवर्ण-भाण्ड के चोरी चले जाने पर चारुदत्त उसके बदले में रत्नावली विदूषक के हाथ प्रेषित करता है, तब वह उससे मिलने जाती है

१- दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रतिः
हा हालङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि ।।
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा मादृशामाश्रये !
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः ।। वही। ६/३८

२- चेटी—(उपसृत्य) अज्जए ! अत्ता आदिसदि ण्हादा भविअ देवदाण पूअं णिव्वत्तेहि त्ति ।
संस्कृत छाया—आर्ये ! माता आदिशति स्नाता भूत्वा देवतानां पूजां निर्वर्त्तयेति ।
वसन्तसेना—हञ्जे ! विण्णवेहि अत्तं, अज्ज ण ण्हाइस्सं, ता बम्हणोज्जेव पूअं णिव्वत्तेदु त्ति ।
संस्कृत छाया—हञ्जे ! विज्ञापय मातरम् । अद्य न स्नास्यामि । तद् ब्राह्मण एव पूजां निर्वर्तयतु इति । वही, द्वितीय अंक, पृ० ६५

३- मदनिका—सव्विलअ ! भणिदा मए अज्जआ, तदो भणादि, जइ मम सच्छन्दो, तदा विणा अत्थं सव्वं परिजणं अभुजिस्सं करइस्सं ।
संस्कृतछाया—शर्विलक, भणिता मया आर्या । ततो भणति—'यदि मम स्वच्छन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजनमभुजिष्यं करिष्यामि । वही, चतुर्थ अंक, पृ० २००

और रत्नावली भेजने के लिए चारुदत्त को उलाहना देती है।¹ वह चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को सोने की गाड़ी के लिए रोता-मचलता देखकर सुवर्ण-शकट बनवाने के लिए अपने आभूषण देने में जरा भी नहीं हिचकती। वह उसकी माता बनने के लिए सब कुछ करने को तैयार है। उसकी वात्सल्य-भावना वस्तुतः प्रशंसनीय है। वह चारुदत्त की पत्नी धूता के प्रति ईर्ष्या नहीं करती, अपितु बहुत स्नेह रखती है और उसके साथ बहिन का नाता जोड़ती है। वह चेटी को रत्नावली सौंपते हुए कहती है—"अरी, इस रत्नावली को लो और जाकर मेरी बहन आर्या धूता को समर्पित कर दो और कहना कि यह दासी वसन्तसेना आर्य चारुदत्त के गुणों के वशीभूत है, इसलिए यह रत्नावली आर्या धूता के ही कण्ठ में सुशोभित हो।"²

वसन्तसेना विदुषी, बुद्धिमती तथा कलाकुशल नारी है। यद्यपि वह बोलचाल में प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करती है, तथापि वह संस्कृत का भी ज्ञान रखती है। चतुर्थ अंक में वह विदूषक के साथ संस्कृत में वार्तालाप करती है।³ वह प्रसाधन-कला में कुशल है। वह केश-प्रसाधन कला में कुशल होने के कारण अपने केशों को सुगन्धित फूलों से प्रसाधित रखती है। वह व्यवहार-कला में भी कुशल है। प्रथम अंक में जब चारुदत्त रदनिका के भ्रम से उसके साथ परिजन का सा व्यवहार करने के कारण हुए अपने अपराध की क्षमा-याचना करता है, तब वह भी अपने अपराध की क्षमा-याचना करती हुई कहती है कि पक्ष-द्वार में प्रवेश आदि अनुचित कार्य करने के कारण अपराधिनी मैं सिर से प्रणाम करके (विनम्र

१- वसन्तसेना—अज्जचारुदत्त। जुत्तं णेदं इमाए रअणावलीए इमं जणं तुलइदुं।
संस्कृतच्छाया—आर्यचारुदत्त। युक्तं नेदं अनया रत्नावल्या इमं जनं तूलयितुम्।
वही, पंचम अंक, पृ० ३०६

२- वसन्तसेना—(सानुनयम्) हञ्जे! गेण्ह एदं रअणावलिं, मम बहिणिआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि। भणिदव्वं अ—अहं सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तदा तुम्हाण पि, ता एसो तुह ज्जेव कण्ठाहरणं होदु रअणावली।
संस्कृतच्छाया—हञ्जे! गृहाण एतां रत्नावलीम्। मम भगिन्यै आर्यधूतायै गत्वा समर्पय, वक्तव्यञ्च—इयं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि, तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली।
वही, षष्ठ अंक, पृ० ३१६–३१७

३- (क) वसन्तसेना—अये मैत्रेय! (उत्थाय) स्वागतम्। इदमासनम्, अत्रोपविश्यताम्। अपि कुशलं सार्थवाहपुत्रस्य? वही, चतुर्थ अंक, पृ० २४६
(ख) आर्य मैत्रेय! अपीदानीम्—
गुणप्रवालं विनयप्रशाखं विस्रम्भमूलं महनीयपुष्पम्।
तं साधुवृक्षं स्वगुणैः फलाढ्यं सुहृद्विहङ्गाः सुखमाश्रयन्ति॥ वही, ४/३१

होकर) आर्य को प्रसन्न करती हूँ।[1]

वसन्तसेना चारुदत्त की गूढ व्यंग्य भरी प्रणय-प्रार्थना का आशय तुरन्त समझ जाती है।[2] जब चारुदत्त वसन्तसेना से कहता है कि यह घर धरोहर रखने योग्य नहीं है,[3] तब वसन्तसेना बड़ा सुन्दर उत्तर देती है—"आर्य! यह असत्य है। योग्य पुरुष के यहाँ धरोहर रखी जाती है, न कि योग्य घर में।"[4]

वसन्तसेना चित्र-कला में निपुण है। चतुर्थ अंक में वह अपना बनाया हुआ चारुदत्त का चित्र मदनिका को दिखाती है।[5] पंचम अंक में उसके द्वारा किया गया वर्षा-वर्णन बड़ा स्वाभाविक एवं मनोज्ञ है। उसकी तर्कशक्ति प्रबल एवं उच्चकोटि की है। कर्णपूरक को हँसता हुआ देखकर वह समझ जाती है कि कोई नई बात है।[6] चतुर्थ अंक में शर्विलक के आभूषण अर्पित करते समय वह सब ताड़ लेती है और मदनिका को उसे सौंप देती है।[7] शर्विलक को पश्चाताप करता देखकर वह

१- एदिना अणुचिदभूमिआरोहणेण अवरज्झा अज्जं सीसेण पणमिअ पसादेमि।
संस्कृतच्छाया—एतेनानुचितभूमिकारोहणेन अपराद्धा आर्यं शीर्षेण प्रणम्य प्रसादयामि। वही, प्रथम अंक, पृ० ८७

२- (क) भवतु, तिष्ठतु प्रणयः। वही, प्रथम अंक, पृ० ८८

(ख) वसन्तसेना—(स्वगतम्) चदुरो मधुरो अ अअं उवण्णासो।
संस्कृतछाया—चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः। वही, प्रथम अंक, पृ० ८८

३- चारुदत्त—अयोग्यमिदं न्यासस्य गृहम्। वही, प्रथम अंक, पृ० ८८

४- वसन्तसेना—अज्ज। अलीअं। पुरुसेसु णासा णिक्खिविअन्ति, ण उण गेहेसु।
संस्कृतछाया—आर्य! अलीकम्। पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु।
वही, प्रथम अंक, पृ० ८८

५- वसन्तसेना—हञ्जे मदणिए! अवि सुसदिसी इअं चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्स।
संस्कृतछाया—हञ्जे मदनिके। अपि सुसदृशी इयं चित्राकृतिः आर्यचारुदत्तस्य।
वही, चतुर्थ अंक, पृ० १६०

६- वसन्तसेना—कण्णऊरअ! परितुट्ठमुहो लक्खीअदि, ता किं एदं?
संस्कृतछाया—कर्णपूरक! परितुष्टमुखो लक्ष्यसे, तत् किं न्विदम्।
वही, द्वितीय अंक, पृ० १३८

७- वसन्तसेना—अहं अज्जचारुदत्तेण भणिदा—जो इमं अलंकारअं समप्पइस्सदि, तस्स तुवए मदणिआ दादव्वा। ता सो ज्जेव एदं दे देदित्ति एव्वं अज्जेण अवगच्छिदव्वं।
संस्कृतछाया—अहमार्यचारुदत्तेन भणिता—य इममलङ्कारकं समर्पयिष्यति, तस्य त्वया मदनिका दातव्या। तत् स एव एनां ते ददातीति एवमार्येण अवगन्तव्यम्। वही, चतुर्थ अंक, पृ० २२१

समझ जाती है कि उसने चारुदत्त के घर में चोरी सब बातें न जानने के कारण प्रमादवश की है।[1] चतुर्थ अंक में विदूषक भी वसन्तसेना की तर्कशक्ति की सराहना करता है।[2]

वसन्तसेना चारुदत्त पर सच्चे हृदय से आसक्त है। यह बात प्रथम अंक में शकार की उक्ति से ही स्पष्ट हो जाती है।[3] जब विदूषक वसन्तसेना की उपस्थिति में ही चारुदत्त को बतलाता है कि वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यान के दिन से उस पर आसक्त है तो वह इस बात का प्रतिवाद नहीं करता।[4] कर्णपूरक से चारुदत्त का प्रावारक पाकर वह प्रिय-मिलन का सा आनन्द अनुभव करती है। संवाहक के चारुदत्त का नाम लेने पर वह उसका विशेष आदर करती है और उदारतावश उसे ऋणमुक्त करती है[5]। चतुर्थ अंक में वह विदूषक को आया देखकर सहर्ष खड़ी होकर उसका स्वागत करती है।[6] चारुदत्त से सम्बन्धित व्यक्तियों—कर्णपूरक, संवाहक और विदूषक के प्रति सत्कार-भावना से भी उसका चारुदत्त के प्रति सच्चा प्रेम व्यक्त होता है। वह जानती है कि चारुदत्त दरिद्र है, फिर भी वह उससे प्रेम करती है। क्योंकि उसका प्रेम अन्य वेश्याओं की तरह धनागम के

१- वसन्तसेना—कधं एसोवि सन्तप्पदि ज्जेव। ता अजाणन्तेण एदिणा एव्वं अणुचिट्ठिदं।
संस्कृतछाया—कथमेषोऽपि सन्तप्यते एव। तदजानता एतेन एवमनुष्ठितम्।
वही, चतुर्थ अंक, पृ० २१४

२- विदूषक—(स्वगतम्) सुट्ठु उवलक्खिदं दुट्ठविलासिणीए।
संस्कृतछाया—सुष्ठु उपलक्षितं दुष्टविलासिन्या। वही, चतुर्थ अंक, पृ० २५०

३- शकार—भावे! भावे! एशा गब्भदाशी कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि ताह दलिद्दचालुदत्ताह अणुलत्ता, ण मं कामेदि।
संस्कृतछाया—भाव! भाव! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता न मां कामयते। वही, प्रथम अंक, पृ० ५२

४- शकार—.........वशन्तशेणा णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि तुमं अणुलत्ता, अम्हेहिं बलक्कालाणुणीअमाणा, तुह गेहं पविट्ठा।
संस्कृतछाया—वसन्तसेना नाम्नी गणिकादारिका कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति त्वां अनुरक्ताऽस्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गेहं प्रविष्टा।
वही, प्रथम अंक, पृ० ७८

५- वसन्तसेना—(सहर्षमासनादवतीर्य्य) अज्जस्स अत्तणकेरकं एदं गेहं। हञ्जे! देहि से आसणं, तालवेण्टअं गेण्ह, परिस्समो अज्जस्स वाधेदि।
संस्कृतछाया—आर्यस्य आत्मीयमेतद्गेहम्। हञ्जे! देहि अस्य आसनम्, तालवृन्तकं गृहाण, परिश्रम आर्यस्य बाधते। वही, द्वितीय अंक, पृ० १३०

६- अये मैत्रेयः। (उत्थाय) स्वागतम्। इदमासनम्। अत्रोपविश्यताम्।
वही, चतुर्थ अंक, पृ० २४९
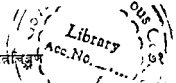
लिये बनावटी प्रेम नहीं है अपितु प्रशंसनीय प्रेम है। वह चारुदत्त के गुण और यौवन पर मुग्ध है। उसका स्पष्ट मत है कि 'निर्धन व्यक्ति में प्रेम करने वाली वेश्या निस्संदेह संसार में निन्दनीय नहीं होती।' दरिद्र व्यक्ति के प्रति निश्छल और निष्काम अनुराग उसके हृदय की पवित्रता को प्रकट करता है। वेश्या होने के कारण समाज में उसका स्थान बहुत नीचा है, इस बात को वह अच्छी तरह जानती है। इसीलिए चारुदत्त के कहने पर भी वह रोहसेन को लेकर महल के अन्दर प्रविष्ट नहीं होती।' तथापि वह दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त से स्थायी सम्बन्ध जोडना चाहती है। चारुदत्त से वह कुछ नहीं चाहती, अपितु उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग करने को उद्यत है। चारुदत्त के प्रति अपने सच्चे प्रेम के कारण ही वह शकार के प्रणय-प्रस्ताव को किसी भी प्रकार से मानने के लिये तैयार नहीं है —न लोभ से, न आतंक से और न ही मृत्यु के भय से। वह दशसहस्र सुवर्णालंकारों के साथ आये हुए शकार के आमन्त्रण को अस्वीकार कर देती है।' पुष्पकरण्डक उद्यान में जब शकार उसका गला घोटकर मारने के लिए उद्यत हो जाता है, तब भी वह चारुदत्त का नाम लेती हुई मरने को उद्यत हो जाती है, किन्तु शकार को स्वीकार नहीं करती।'

१- वसन्तसेना—दलिद्दपुरिससङ्कन्तमणा क्खु गणिआ लोए अवअणीआ भोदि।
संस्कृतछाया—दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोके अवचनीया भवति। वही, द्वितीय अंक, पृ० ६६

२- वसन्तसेना—(स्वगतम्) अभाइणी क्खु अहं तुम्हे अवभन्तरस्स।
संस्कृतछाया—अभागिनी खल्वहं तव अभ्यन्तरस्य। वही, प्रथम अंक, पृ० ८३

३- (क) चेटी—अज्जए! जेण पवहणेण सह सुवण्ण-दससाहस्सिओ अलङ्कारओ अणुप्पेसिदो।
संस्कृतछाया—आर्ये। येन प्रवहणेन सह सुवर्णदशसाहस्रिकोऽलङ्कारः अनुप्रेषित। वही, चतुर्थ अंक, पृ० १६३

(ग) एव्वं विण्णाविदव्वा—जइ मं जीअन्ती इच्छसि ता एव्वं ण पुणो अहं अज्जाए आण्णाविदव्वा।
संस्कृतछाया—एवं विज्ञापयितव्या—यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदा एवं न पुनरहं मात्रा आज्ञापयितव्या। वही, चतुर्थ अंक, पृ० १६४

४- हा वत्ते! कहिं सि? हा अज्जचारुदत्त। एसो जणो असम्पुण्ण-मणोरधो ज्जेव विवज्जदि। ता उद्धं अक्कन्दइस्सं अधवा वसन्तसेणा उद्धं अक्कन्ददि त्ति लज्जणी अ क्खु एदं। णम अज्जचारुदत्तस्स।
संस्कृतछाया—हा मातः! कुत्रासि? (कस्मिन्नसि) हा आर्यचारुदत्त। एष जनः असम्पूर्णमनोरथ एव विपद्यते। तदूर्ध्वमाक्रन्दयिष्यामि। अथवा वसन्तसेनोर्ध्वमाक्रन्दतीति लज्जनीयं खल्वेतत्। नम आर्यचारुदत्ताय। वही, अष्टम अंक, पृ० ४२८-४२९

वसन्तसेना दृढ़संकल्पा नारी है। वह चारुदत्त की प्राप्ति के लिये हर प्रकार की विपत्ति का सामना करने को उद्यत दिखाई देती है। वह कभी साहस नहीं छोड़ती। वह विपत्तियों में भी घबराने वाली नहीं थी। वह चारुदत्त को पाने के लिए आभूषण-न्यास, दुर्दिन में अभिसरण, पुष्पकरण्डक-गमन आदि सभी कार्य करती हुई मरणासन्न हो जाती है किन्तु फिर सचेत होकर चारुदत्त को जीवन-दान देने के लिए वध्यस्थल पर त्वरित गति से पहुँच जाती है और प्रेम के आवेश में उसके हृदय पर गिर जाती है। दशम अंक में उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है और वह सम्मानपूर्वक कुलवधू के पद को प्राप्त कर लेती है।[1] यही उसके जीवन का अभीप्सित था। लक्ष्य की पूर्ति से वह सभी असह्य कष्टों को भूल जाती है और *असीम आनन्द का अनुभव करती है। कालिदास की उक्ति इस बात को पुष्ट* करती है—'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते'।[2]

वसन्तसेना में उज्ज्वल चरित्रता, उदार-हृदयता, अनन्त त्याग और निष्काम-*निश्छल प्रेम कूट-कूट कर भरा है। उसके इन्हीं गुणों ने उसके गणिका होने की* कालिमा को धो दिया और वह कुलवधू के पद पर अधिष्ठित हुई। गणिका को कुलांगना बनाना मृच्छकटिककार को भी अभीष्ट था।

शकार

शकार मृच्छकटिक प्रकरण का प्रतिनायक है। प्रतिनायक लोभी, धीरोद्धत, जड़ प्रकृति वाला, पापी और व्यसनी माना गया है।[3] यह मूर्खता, क्रूरता, प्रवञ्चना और कायरता आदि दुर्गुणों से पूर्ण होता है।

मृच्छकटिक का प्रतिनायक शकार भी मूर्खता, पाप, क्रूरता आदि दुर्गुणों से पूर्ण है। यह किसी व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र है। प्रथम अंक में विट ने इसे 'काणेलीमातः'[4] कहकर सम्बोधित किया है। 'काणेली' शब्द का अर्थ टीकाकारों के द्वारा अविवाहिता अथवा व्यभिचारिणी किया गया है। यह राजा पालक का साला है क्योंकि यह राजा की अविवाहिता स्त्री (रखैल) का भाई है। इस सम्बन्ध में इसे राजश्यालक कहा गया है। यह शकारी प्राकृत बोलता है, जिसमें सकार

१- (क) वसन्तसेना—अज्जचारुदत्त। किं ण्णेदं ?
संस्कृतछाया—आर्यचारुदत्त ! किं न्विदम् ? (इत्युरसि पतति)।
वही, दशम अंक, पृ० ५६६
(ख) शर्विलक—आर्ये वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति।
वही, दशम अंक, पृ० ५६८

२- कुमारसम्भव, ५/८६

३- (क) धीरोद्धतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः। सा० दर्पण ३/१३१
(ख) लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपुः। दशरूपक, २/९

४- मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ५३

के स्थान पर शकार होता है। सम्भवत: इसी हेतु इसका नाम शकार है।[1]

शकार बड़ा अभिमानी है। इसे राजा का साला होने का बड़ा घमण्ड है। इसी से वह मनमानी भी करता है। नवम अंक में जब न्यायाधीश इसका मुकदमा सुनने से इंकार करते हैं तो यह उनको यह कहकर धमकी देता है कि अपने बहनोई राजा से कहकर तुम्हें पदभ्रष्ट कराकर दूसरे न्यायाधीश की नियुक्ति करा दूंगा। अशिक्षित होने के कारण यह शिष्टाचार-विहीन है। शकार को अपने पद के अतिरिक्त धन का भी बड़ा अभिमान है अत: वह अपने आप को देवपुरुष मनुष्य वासुदेव कहता है।[2] यह जड़-प्रकृति का है तथा अत्यन्त मूर्ख है। इसकी मूर्खता तो इसी से सिद्ध होती है कि उसने पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं के उल्टे सीधे उद्धरण दिये हैं यथा 'धम्मपुत्ते जडाउ', 'द्रोवदी विम्र पलाअसि साममीदा' 'ण मना लज्ज '![3]', यह कथन भी अनर्थक प्रलाप मात्र है। इस प्रकार उसके अधिकांश कथन हास्यास्पद हैं। तथापि उसे अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान है।

शकार अस्थिर स्वभाव वाला, दुराग्रही दम्भी कायर है। उसका निश्चय क्षण-क्षण में बदलता रहता है। उसके साथी विट और चेट भी उसकी ओर से प्रत्येक क्षण सशंकित रहते हैं कि न जाने वह क्या कह बैठे अथवा कर बैठे। अष्टम अंक में पहले तो वह विट को गाड़ी में बैठने को कहता है, फिर तत्क्षण उसका अपमान करने लगता है।[5] इसी प्रकार स्थावरक (चेट) को चहारदीवारी पर से गाड़ी लाने का आदेश देता है।[6] इस प्रकार की उक्तियाँ निश्चय ही उसके दुरा-

---

१- (क) मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्त ।
मोऽयमनूढोभ्राता, राज्ञः श्याल शकार इत्युक्त ॥ सा० दर्पण, ३/४४

(ख) उज्ज्वलवस्त्राभरण क्रुद्धयनिमित्तम प्रसीदति च।
अधमो मागधभाषी भवति शकारो बहुविकारः॥ नाट्यशास्त्र, ३४/५६

२- शकारः—हगे देवपुलिशे मणुश्शे वासुदेवके कामइदव्वे ।
संस्कृतछाया—अहं देवपुरुषो मनुष्यो वासुदेव कामयितव्यः॥
मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ४८

३- (क) धर्मपुत्रो जटायुः। वही, १/४७
(ख) द्रौपदीवपलायसे रामभीता। वही, प्रथम अक, पृ० ४१

४- न मृताः रज्जव.। वही, अष्टम अंक, पृ० ३६५

५- अधवा चिट्ठ तुमं। तुह वप्पकेलके पवहणे। जेण तुमं अग्गदो अहिलुअसि।
हगे पवहणशामी अग्गदो पवहणं अहिलुहामि।
संस्कृत छाया—अथवा तिष्ठ त्वम्! तव वप्रीयं प्रवहणम्। येन त्वमग्रत अधिरोहसि। अहं प्रवहणस्वामी अग्रतः प्रवहणमधिरोहामि। —वही, अष्टम अंक पृ० ३६५

६- शकारः—ता पवेशेहि पवहणं।.......एदेण ज्जेव पाआलखण्डेण।
संस्कृत छाया—तद् प्रवेशय प्रवहणम्।.......एतेनैव प्राकारखण्डेन।
वही, अष्टम अंक, पृ० ३६३

ग्रही स्वभाव को और उसकी अहंमन्यता को व्यक्त करती हैं। उसका अभिमान इस बात से स्पष्ट ज्ञात होता है जब वह कहता है कि मैं सैकड़ों स्त्रियों के मारने में शूर हूँ।[1]

शकार वसन्तसेना को अपनी प्रेयसी बनाना चाहता है किन्तु वसन्तसेना उसे लेशमात्र भी नहीं चाहती। वह उसे धन और बल से वशीभूत करना चाहता है किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिलती। प्रथम अंक में वह विट से कहता है कि मैं वसन्तसेना को लिये बिना नहीं जाऊँगा, किन्तु विट के चले जाने पर स्वयं भी वहाँ से चल देता है।[2] वह भीरु है। अष्टम अंक में वसन्तसेना को अपनी गाड़ी में देखकर वह डर जाता है।[3] अन्त में मृत्यु के भय से चारुदत्त की शरण में आकर रक्षा की याचना करता है कि भट्टारक चारुदत्त शरणागत हूँ, रक्षा करो।[4] इसी से उसकी कायरता व्यक्त होती है। इसे अपने प्राण बहुत प्यारे हैं।[5]

शकार भिक्षुओं का कट्टर शत्रु है। अष्टम अङ्क में वह भिक्षुक से कहता है कि 'ठहर, दुष्टश्रमणक, ठहर, मदिरालय में गये हुए मद्यपी के समान मैं तुम्हारे

---

१. इत्थिआणं शदं मालेमि शूले हगे।
संस्कृत छाया—स्त्रीणां शतं मारयामि, शूरोऽहम्। वही, प्रथम अङ्क, पृ० ४५

२. (क) शकारः—अगेण्हिअ वशन्तशेणिअं ण गमिश्शं।
संस्कृत छाया—अगृहीत्वा वसन्तसेनिकां न गमिष्यामि।
वही, प्रथम अङ्क, पृ० ७५

(ख) ·········शलणं पलामि
संस्कृत छाया—शरणं पलाये।—वही, १५२

३. शकार (अधिरुह्यावलोक्य च शङ्कां नाटयित्वा त्वरितमवतीर्य विटं कण्ठे—अवलम्ब्य) भावे! भावे! मलेशि मलेशि पवहणाधिलूढा लक्खशी चोले वा पडिवशदि। जइ लक्खशी तदा उभे वि मुशे, अध चोले तदा उभे वि खज्जे।
संस्कृत छाया—भाव! भाव! म्रियसे म्रियसे। प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवसति। यदि राक्षसी, तदा उभावपि मुषितौ; अथ चौरः तदा उभावपि खादितौ। वही, अष्टम अङ्क पृ० ३६६-३६७

४. शकारः—भट्टालआ! चालुदत्त! शलणागदेम्हि ता पलित्ता आहि पलित्ता आहि। जं तुए शलिश न कलेहि। पुणो ण ईदिशं कलिश्शं।
संस्कृत छाया—भट्टारक! चारुदत्त! शरणागतोऽस्मि, तद् परित्रायस्व परित्रायस्व। यत्तव सदृशम्, तद् कुरु, पुनर्न ईदृशं करिष्यामि। वही, दशम अङ्क, पृ० ५८७

५. शकार—हीमादिके! पलभुज्जीविदम्हि। (इति पुरुषैः सह निष्क्रान्तः)
संस्कृत छाया—हन्त! प्रत्युज्जीवितोऽस्मि। वही, दशम अङ्क, पृ० ५८६

मस्तक को भग्न करता हूँ।[1] शकार क्रूर, निर्दयी तथा पापी है। वह अपने मित्रों से भी प्रेम नहीं करता और न उनमे विश्वास रखता है। इसके सेवक भी इससे प्रसन्न नही दिखाई देते।[2] वह हृदय का बडा कपटी है। पापपूर्ण योजना बनाने में बड़ा निपुण दिखाई देता है। विट और चेट को कपटपूर्वक हटाकर वसन्तसेना का गला घोट देता है। जब विट इस कुकृत्य की भर्त्सना करता है तो वह उस पर ही वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगाने लगता है। चेट को वह बाँधकर डाल देता है और चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग चलाता है। चारुदत्त को वसन्तसेना की प्राप्ति मे बाधक समझकर वह उसके प्रति शत्रुता रखता है। अभियोग के मध्य जब चेट उसके पाप-कृत्य का रहस्योद्घाटन करता है तो वह उस पर चोरी का आरोप लगा देता है। वह चाण्डालों से कहता है कि चारुदत्त को पुत्र सहित मार डालो।[3] वह चारुदत्त को फाँसी पर चढ़ा देखना चाहता है।[4]

शकार का चरित्र प्राय सभी दुर्गुणों का पुञ्ज है। वह केवल स्त्री-लम्पट, मूर्ख और धूर्त ही नही है, अपितु वह मनुष्य रूप मे निःसन्देह दानव ही कहा जा सकता है। प्रतिनायक के रूप मे उसका सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

विदूषकः—

मृच्छकटिक के विदूषक का नाम मैत्रेय है। नायक का वह सहायक, जो अपने आकार-प्रकार तथा कथन आदि से हँसी उत्पन्न करता है, विदूषक कहा जाता है।[5] मृच्छकटिक के विदूषक मे भी ये गुण है तथापि उसकी *अन्य व्यक्तिगत* विशेषतायें भी हैं, जो बाद के नाटकों के विदूषकों मे नही मिलती।

मैत्रेय चारुदत्त का सच्चा एवं घनिष्ठ मित्र है। उसका प्रधान सहायक भी है। वह *जाति का ब्राह्मण है। चारुदत्त के निर्धन हो जाने पर भी वह उसका साथ*

---

१. चिट्ठ, ले दुश्शमणका ! आवाणअ-मज्झ-पविट्ठश्श विअ लत्तमूलअश्श शीशं दे मोडइश्शं। (इति ताडयति)
संस्कृत छाया—तिष्ठ, रे दुष्टश्रमणक ! तिष्ठ। आपानक-मध्य-प्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते भङ्क्ष्यामि। वही, अष्टम अङ्क, पृ० ३७६

२. चेटः—विभज्ज ले पवहणं। शमं शामिणा विभज्ज, अण्णे पवहणे भोदु।
संस्कृत छाया—विभङ्ग्धि रे प्रवहण ! मम स्वामिना विभङ्ग्धि, अन्यत्, प्रवहणं भवतु। —वही, अष्टम अङ्क, पृ० ३६४

३. अले ! ण भणामि शपुत्ताकं चालुदत्ताकं वावादेध त्ति।
संस्कृत छाया—अरे ! ननु भणामि सपुत्रकं चारुदत्तकं व्यापादयतमिति।
वही, दशम अङ्क, पृ० ५५५

४. ण दाव गमिश्शं चालुदत्ताकं वावादअन्तं दाव पेक्खामि।
संस्कृत छाया—न तावद् गमिष्यामि, चारुदत्तं व्यापाद्यमानं तावत् प्रेक्षे।
वही, दशम अङ्क, पृ० ५६२

५. ······हास्यकृच्च विदूषकः। दशरूपक २/९

नहीं छोड़ना। जब चारुदत्त धनी था, तो उसके घर खूब खाता-पीता है, किन्तु अब उसकी निर्धनता के कारण इधर-उधर भोजन करके उदर पूर्ति करता है और केवल निवास के लिए उसके घर जाता है। चारुदत्त भी उससे अगाध स्नेह करता है। इसीलिये चारुदत्त प्रथम अंक में उसके प्रति कहता है कि सब समय के मित्र मैत्रेय आ गए। सखे ! स्वागत है, बैठिए।[1] वह चारुदत्त को सदा आश्वासन देता रहता है कि हे मित्र ! धन का स्मरण करके सन्ताप मत करो।[2]

विदूषक हमेशा चारुदत्त की ऋद्धि की कामना करता है।[3] वह चारुदत्त को किसी भी प्रकार दुःखी नहीं करना चाहता। इसी कारण वह रदनिका से निवेदन करता है कि *शकार-कृत अपने अपमान की बात चारुदत्त से नहीं कहना, अन्यथा* उन्हें मानसिक-कष्ट होगा।[4] वह चारुदत्त की बदनामी नहीं चाहता। प्रथम अंक में घर में दीपक जलाने के लिये तेल के अभाव की बात वह चारुदत्त के कान में कहता है। वह नहीं चाहता कि वसन्तसेना को चारुदत्त की दरिद्रता की जानकारी हो।[5]

विदूषक चारुदत्त को गणिका-प्रसंग से हटाना चाहता है। वह जानता है कि वेश्याओं का हृदय कुटिल होता है और वे लालची होती हैं। इसीलिये वह वसन्तसेना को भी उसी श्रेणी की गणिका समझकर घृणा की दृष्टि से देखता है। उसके विचार में वह दुष्टविलासिनी है।[6] वह चारुदत्त से कहता है कि आप बहुत

---

१. आर्ये ! सर्वकालमित्रं मैत्रेयः प्राप्तः। सखे ! स्वागतम्, आस्यताम्।
मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० २५

२. भो वअस्स ! तं ज्जेव अत्थकल्लवत्तं सुमरिअ अलं सन्तप्पिदेण।
संस्कृत छाया—भो वयस्य ! तमेव अर्थकल्यवर्तं स्मृत्वा अलं सन्तापितेन।
वही, प्रथम अंक, पृ० ३१

३. पुणो ऋद्धीए अज्जचारुदत्तस्स।
संस्कृत छाया—पुनरपि ऋद्धया आर्यचारुदत्तस्य। वही, प्रथम अंक, पृ० ७७

४. भोदि रदणिए ! ण क्खु दे अअं अवमाणो तत्तभवदो चारुदत्तस्स णिवेदइदव्वो। दोग्गच्चपीडिअस्स मण्णे दिउणदरा पीडा हुविस्सदि।
संस्कृत छाया—भवति रदनिके ! न खलु ते अयमपमानस्तत्रभवतश्चारुदत्तस्य निवेदयितव्यः। दौर्गत्यपीडितस्य मन्ये द्विगुणतरा पीडा भविष्यति।
वही, प्रथम अंक, पृ० ८१

५. (जनान्तिकम्) भो ! ताओ क्खु अम्हाणं पदीविआओ अवमाणिद-णिद्धण-कामुआ विअ गणिआ णिस्सिणेहाओ दाणिं संवुत्ता।
संस्कृत छाया—भो ! ताः खल्वस्माकं प्रदीपिकाः अपमानित-निर्धन-कामुका इव गणिका, निःस्नेहा इदानीं संवृत्ताः। —वही, प्रथम अंक, पृ० ६१

६. (स्वागतम्) सुट्टु उवलक्खिदं दुट्ठविलासिणीए।
संस्कृत छाया—सुष्ठु उपलक्षितं दुष्टविलासिन्या। वही, चतुर्थ अंक, पृ० २५०

ठिनों वाले वेश्या के प्रसंग से पृथक् हो जाइये; वेश्या तो जूते के अन्दर प्रविष्ट हुई कंकड़ के समान दुःख से निकाली जाती है।[1] वह वसन्तसेना को अविश्राम की दृष्टि से देखता है। जब वसन्तसेना विदूषक से रत्नावली ले लेने के बाद प्रदोष काल में चारुदत्त के घर आने की बात कहती है, तो वह समझता है कि वह रत्नावली से असन्तुष्ट है, चारुदत्त से कुछ और लेना चाहती है।[2]

चारुदत्त के प्रति उसे प्रगाढ प्रेम है। जब उसे ज्ञात होता है कि शकार ने चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लगाया है, तो वह न्यायालय में जाकर शकार से झगड़ा कर बैठता है।[3] जब चारुदत्त के लिये मृत्युदण्ड की घोषणा की जाती है, तो वह उसके बिना स्वयं भी जीवित नहीं रहना चाहता।[4]

विदूषक भीरु प्रकृति का है। वह अन्धकार में चतुष्पथ पर अकेले जाने से डरता है, इसीलिये जाने से इन्कार कर लेता है।[5] प्रथम अंक के अन्त में जब चारु-

---

१. ······ता अहं बम्हणो भविअ दाणि भवन्तं सीसेण पडिअ विण्णवेमि। णिवत्तीअदु अप्पा इमादो बहु-पच्चवाआदो गणिआपसङ्गादो। गणिआ णाम, पादुअन्तर-प्पविट्ठा विअ लेट्टुआ दुक्खेण उण णिराकरीअदि।

संस्कृत छाया—तदहं ब्राह्मणो भूत्वा इदानीं भवन्तं शीर्षेण पतित्वा विज्ञापयामि निवर्त्यतामात्मा अस्मात् बहुप्रत्यवायात् गणिकाप्रसङ्गात्। गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टा इव लेष्टुका, दुःखेन पुनर्निराक्रियते।

वही, पञ्चम अंक, पृ० २६३

२. (स्वगतम्) किं अण्णं। तहिं गदुअ गेण्हिस्सदि। (प्रकाशम्) भोदि! भणामि। (स्वगतम्) णिवत्तीअदु गणिआपसङ्गादो त्ति।

संस्कृत छाया—किमन्यत्। तस्मिन् गत्वा ग्रहीष्यति। भवति। भणामि। निवर्त्तामस्माद् गणिकाप्रसङ्गात्। वही, चतुर्थ अंक, पृ० २५३

३. चिट्ठ रे कुट्टणिपुत्ता! चिट्ठ, जाव एदिणा तव हिअअकुडिलेण दण्डकट्ठेण मत्थअं दे सदखण्डं करेमि।

संस्कृत छाया—तिष्ठ रे कुट्टनीपुत्र। तिष्ठ यावदेतेन तव हृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन मस्तकं ते शतखण्डं करोमि। वही, नवम अंक, पृ० ५०४

४. ······ण सक्कुणोमि पिअवअस्सविरहिदो पाणाइं धारेदुं त्ति। ता बम्हणीए दारअं समप्पिअ पाणपरिच्चाएण अत्तणो पिअवअस्सं अणुगमिस्सं।

संस्कृत छाया—······न शक्नोमि प्रियवयस्यविरहितः प्राणान् धारयितुमिति। तद् ब्राह्मण्या दारकं समर्प्य प्राणपरित्यागेनात्मनः प्रियवयस्यमनुगमिष्यामि।

वही, दशम अंक, पृ० ५५५

५. (सवैलक्ष्यम्) भो वअस्स! जई मए गन्तव्वं, ता एसा वि मे सहाइणी रदणिआ भोदु।

संस्कृत छाया—भो वयस्य! यदि मया गन्तव्यम्, तदेषापि मम सहायिनी रदनिका भवतु। वही, प्रथम अंक, पृ० ६१

दत्त रात्रि मे वसन्तसेना को पहुँचाने के लिए जाने को कहता है, तो उस समय भी बड़ी चतुराई से जाने से इन्कार कर देता है।[1] चारुदत्त के साथ जाने के लिए वह तैयार हो जाता है।

विदूषक क्रोधी भी है। परन्तु उसे जितनी जल्दी क्रोध आता है, उतनी ही जल्दी शान्त भी हो जाता है। प्रथम अक मे रदनिका के शकार-कृत अपमान से क्रुद्ध होकर वह शकार और विट को मारने दौडता है किन्तु विट के चरणो पर गिरकर गिडगिडाने से उसका क्रोध एकदम शान्त हो जाता है।[2] नवम अंक मे न्यायालय मे वह शकार पर क्रुद्ध हो जाता है, दोनो मे मारपीट हो जाती है। यहाँ उसके क्रोध का परिणाम बुरा होता है क्योकि मारपीट मे उसकी कॉख (बगल) से वसन्तसेना के आभूषण गिर पडते हैं और इनके आधार पर चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग सिद्ध हो जाता है।

विदूषक कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति का नही है। उसका देवी-देवताओ की पूजा मे विश्वास नही है। उसकी धारणा है कि वे पूजा करने पर भी फल नही देते। वह चारुदत्त से कहता है कि जब पूजा करने पर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, तो देवपूजा से क्या लाभ ?[3] चारुदत्त की अत्यधिक उदारता उसे पसन्द नही है। वह झूठ बोलने मे भी नही सकुचाता। आभूषणो के बदले रत्नावली का दिया जाना उसे अच्छा नही लगता। इसलिये वह यह कहने के लिये तैयार हो जाता है कि वसन्तसेना ने हमारे घर आभूषण नही रखे थे, यदि रखे थे तो कौन साक्षी है ?[4]

---

१. तुम ज्जेव एदं कलहंसगामिणी अणुगच्छन्तो राअहंसो विअ सोहसि। अहं उण बह्मणो जहिं तहिं जणेहिं चउप्पहोवणीदो उवहारो कुक्कुरेहिं विअ खज्जमाणो।
संस्कृत छाया—त्वमेव एतां कलहंसगामिनीम् अनुगच्छन् राजहंस इव शोभसे। अहं पुनर्ब्राह्मणः यस्मिन् तस्मिन् जनैः चतुष्पथोपनीतः उपहारः कुक्कुटैरिव खाद्यमानो विपत्स्ये। वही, प्रथम अक, पृ० ६०

२. (क) विट—महा ब्राह्मण ! मर्षय मर्षय। अन्यजनशङ्कया खल्विदमनुष्ठितम्, न दर्पात्। ······ 'सर्वथा इदमनुनयसर्वस्वं गृह्यताम्। (इति खड्गमुत्सृज्य कृताञ्जलिः पादयोः पतति) । वही, प्र० अक, पृ० ६६

(ख) विदूषक—सप्पुरिस। उट्ठेहि उट्ठेहि। अजाणन्तेण मए तुमं उवालद्धे, सम्पद उण जाणन्तो अणुणेमि।

संस्कृत छाया—सत्पुरुष। उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ। अजानता मया त्वमुपालब्ध, साम्प्रतं पुनर्जानन् अनुनयामि। वही, प्रथम अक, पृ० ७०

३. जदो एव्व पूइज्जन्ता वि देवदा ण दे पसीदन्ति। ता को गुणो देवेसु अच्चिदेसु।
संस्कृत छाया—यत एवं पूज्यमाना अपि देवता न ते प्रसीदन्ति। तत् को गुणो देवेषु अर्चितेषु। वही, प्रथम अक, पृ० ३३

४. अहं क्खु अवलविस्सं केण दिण्णं ? केण गहिदं ? को वा सक्खि ? त्ति।
संस्कृत छाया—अहं खलु अपलपिष्यामि, केन दत्तम् ? केन गृहीतम् ? को वा साक्षी ? इति। वही, तृतीय अक, पृ० १८१

कभी-कभी वह मूर्ख एवं बुद्धू-सा प्रतीत होता है। जब वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अभिसरण करने आती है, तो वह चेटी से पूछता है कि तुम यहाँ इस अन्धेरी रात में जब वृष्टि हो रही है, किस लिये आई हो?[1] वसन्तसेना की समृद्धि को देखकर वह चेटी से प्रश्न करता है कि क्या आपके यान (व्यापार के लिए पोत आदि) चलते हैं।[2] विदूषक के इस प्रकार के कथन व्यङ्ग्यपूर्ण से प्रतीत होते हैं किन्तु हास्य की उद्भावना भी करते हैं। पंचम अङ्क में वह चेट के सामान्य प्रश्नों के उत्तर भी नहीं दे पाता।[3]

विदूषक विनोदी एवं हास्यप्रिय है। कभी-कभी ऐसी बातें करता है कि हँसी आ जाती है। प्रथम अङ्क में जब चारुदत्त और वसन्तसेना अपने-अपने अपराधों के लिए एक दूसरे से क्षमा-याचना करते हैं, तो उस समय विदूषक कहता है कि आप दोनों के सुखपूर्वक प्रणाम करते समय विनम्र होने से कलम-केदार के समान परस्पर दोनों के सिर मिल गये। मैं भी ऊँट के बच्चे के घुटने जैसे इस सिर से आप दोनों को ही प्रसन्न करता हूँ।[4]

विदूषक भोजनप्रिय तथा पेटू भी है। वसन्तसेना के भवन में नाना प्रकार के भोजनों को बनते देखकर विदूषक मन ही मन सोचता है कि विविध व्यञ्जनादि से समृद्ध भोजन की प्रार्थना के साथ पादोदक मिलेगा।[5] जब वह आभूषणों के बदले रत्नावली देने के लिए वसन्तसेना के घर जाता है, और वसन्तसेना उसे कोरा मौखिक सत्कार करके बिना खिलाये-पिलाये विदा कर देती है, तो वह खीज कर

---

१. अध किं णिमित्तं उण ईदिसे पणट्ठचन्दालोए दुद्दिण अन्धआरे आअदा भोदी ?
संस्कृत छाया—अथ किं निमित्तं पुनरीदृशे प्रनष्टचन्द्रालोके दुर्दिनान्धकारे आगता भवती। वही, पञ्चम अंक, पृ० २६६

२. भोदि ! किं तुम्हाणं जाणवत्ता वहन्ति ?
संस्कृत छाया—भवति ! किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति।

३. वही, पञ्चम अंक, पृ० २७०-२७२

४. भो दुवेवि तुम्हे सुखं पणमिअ कलमकेदारो अण्णोण्णं सीसेण सीसं समाअदा। अहं पि इमिणा करहजाणुसरिसेण सीसेण दुवेवि तुम्हे पसादेमि।
संस्कृत छाया—भोः, द्वावपि युवां सुखं प्रणम्य कलमकेदारौ अन्योन्यं शीर्षेण शीर्षं समागतौ। अहमपि अमुना करभजानुसदृशेन शीर्षेण द्वावपि युवां प्रसादयामि। वही, प्रथम अंक, पृ० ८७

५. अविदाणि इह वड्ढिअं भुञ्जसु त्ति पादोदअं लहिस्सं ?
संस्कृत छाया—अपीदानीमिह वर्द्धितं भुङ्क्ष्व इति पादोदकं लप्स्ये।
वही, चतुर्थ अंक, पृ० २३७

कहता है कि इसने तो पानी को भी नही पूछा।[1]

इस प्रकार विदूषक मे उच्चकोटि की बुद्धि नही है। उसमे मनुष्य को परखने की शक्ति कम है। वह उदात्त गुणो से विभूषित न होने पर भी एक व्यावहारिक जन है। वह एक सच्चा मित्र है। अपने संभाषण से यथावसर मनोरंजन करता है।

शर्विलक—

शर्विलक ब्राह्मण जाति का है। वह चतुर्वेदी, प्रतिग्रह न करने वाले किसी ब्राह्मण का पुत्र है।[2] वह चौर्य-कला मे अत्यत कुशल है किन्तु चोरी को वह अच्छा नही समझता है। निन्दनीय होते हुए भी चौर्य-कर्म को वह स्वतन्त्र व्यवसाय मानकर ही करता है।[3] उसने योगाचार्य नाम के किसी आचार्य से चोरी की कला सीखी है। वह चोरी करने के लिए आवश्यक सभी उपकरणो से युक्त होकर चोरी करने जाता है।

वह मदनिका के प्रेम मे फँसा है। मदनिका वसन्तसेना की दासी है। उसे दास्य-भाव से मुक्त कराने के लिए धन की आवश्यकता है। वह स्वयं दरिद्र है। अत वह मदनिका को छुडाने के लिए आवश्यक धन की प्राप्ति के लिए चोरी करता है।[4] वह चोरी मे भी कार्याकार्य का विचार करता है।[5] वह स्वतन्त्रताप्रेमी

---

१. एत्तिआए रुद्धीए ण तव अहं भणिदो, 'अज्ज मित्तेअ। वीसमीअदु मल्लकेण पाणीअं पि पिविअ गच्छदीअदु त्ति।
संस्कृत छाया—एतावत्या ऋद्धया न तया अहं भणित आर्य मैत्रेय। विश्रम्यताम्। मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यताम्। वही, पञ्चम अंक,
पृ० २६० और २६१

२. अहं हि चतुर्वेदविदो अप्रतिग्राहकस्य पुत्र. शर्विलको नाम ब्राह्मणो।
मृच्छकटिक, तृ० अ०, पृ० १६६

३. कामं नीचमिद वदन्तु पुरुषा स्वप्ने च यद् वर्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः।
मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना॥ वही, ३।११

४. (क) अहं......शर्विलको नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिकार्थमकार्यमनुतिष्ठामि। इदानी करोमि ब्राह्मणस्य प्रणयम्। वही, तृतीय अंक, पृ० १६६
(ख) कष्टम्, एव मदनिकागणिकार्थे ब्राह्मणकुलं तमसि पातितम्। अथवा आत्मा पातित। वही, तृ० अंक, पृ० १७०

५. नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवती फुल्लामिवाहं लता
विप्रस्वं न हरामि काञ्चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम्।
धात्र्युत्सङ्गगत हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्
कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता॥ वही ४।६

है, इसीलिए निन्दनीय भी स्वाधीन कर्म को वह सेवा कार्य से श्रेष्ठ मानता हुआ कहता है—

"स्वाधीना वचनीयताऽपि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः। "मृच्छकटिक ३।११

शर्विलक प्रत्युत्पन्नमति है। मानसूत्र के अभाव में वह तुरन्त यज्ञोपवीत से ही मानसूत्र का काम ले लेता है। वह शूर और साहसी है। वह स्त्रियों पर प्रहार नहीं करता है।[1] वह बुद्धिमान् है। मदनिका द्वारा समझाये जाने पर चोरी करके लाये हुए आभूषणों को लौटा देने की बात स्वीकार कर लेता है।[2] वह गुणग्राहक है। वसन्तसेना के घर में चारुदत्त का गुणगान करते हुए वह कहता है कि मनुष्यों को सदा गुणों के अर्जन में प्रयत्न करना चाहिए। गुणवान् दरिद्र भी गुणहीन धनियों के समान नहीं है, अर्थात् उनसे बढ़कर है।[3] चोरी के कलंक से बचने के लिये मदनिका द्वारा बताये गये उपाय को सुनकर वह मदनिका से कहता है कि आपका अनुसरण करते हुए मैंने विशद बुद्धि प्राप्त कर ली है।[4]

वह अपने मित्र को बहुत प्रेम करता है। वह आपत्ति-काल में भी अपने मित्र का साथ देता है। कठिनता से प्राप्त हुई प्रेमिका रदनिका के साथ वसन्तसेना के घर से बाहर निकलते ही उसे राजा पालक के द्वारा मित्र आर्यक के कैद कर लिये जाने का समाचार मिलता है। वह तुरन्त गाड़ी से उतर जाता है। मदनिका को चेट के साथ सार्थवाह रेभिल के घर भेज कर स्वयं अपने मित्र आर्यक को मुक्त कराने के लिये चला जाता है।[5] वह जनता को उत्तेजित करके विद्रोह को प्रज्वलित करने में कुशल है।[6] दशम अंक में वह राजा आर्यक के प्रतिनिधि के

---

१. (रदनिका हन्तुमिच्छति। निरूप्य) कथं स्त्री। भवतु गच्छामि।
वही, तृ० अंक, पृ० १७४

२. चतुर्थ अंक, पृ० २१७

३. गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः॥ वही, ४।२२

४. मयाप्ता महती बुद्धिर्भवतीमनुगच्छता।
निशाया नष्टचन्द्रायां दुर्लभा मार्गदर्शक.॥ वही, ४।२१

५. द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च।
सम्प्रति तु सुन्दरीणां शतादपि सुहृद्विशिष्टतम.॥ वही, ४।२५

६. ज्ञातीन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्।
राजापमानकुपिताश्च नरेन्द्रभृत्यान्।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञ.॥ वही, ४।२६

रूप में सामने आता है।[1]

शर्विलक कामी होते हुए भी आत्मसम्मान की रक्षा में पूर्ण सतर्क दिखाई देता है।[2] सम्मान तथा विश्वास की महती आकांक्षा ही उसे नितान्त विलासी एवं निष्क्रिय नहीं होने देती। वह राज्यक्रांति का सफल नेतृत्व करता है। वस्तुत वह प्रकरण का अनु-नायक है। राज्यविप्लव के नायक के रूप में शर्विलक का अदम्य साहस एव त्याग प्रशंसनीय है। शर्विलक परिस्थितियों के वशीभूत होकर चौर्य-कर्म में प्रवृत्त अवश्य हुआ किन्तु उसने अपने चारित्रिक गौरव को नहीं भुलाया। वह सच्चा मित्र है, सच्चा प्रणयी है, उपकार के प्रति कृतज्ञ है, प्रत्युपकार करने के लिये भी लालायित है। सेंध का स्मरण कर वह चारुदत्त के सामने करबद्ध होकर अपना परिचय देता है और पालक-वध की सूचना देकर नये राजा आर्यक की ओर से उसे कुशावती का राज्य भी समर्पित करता है। वसन्तसेना के प्रति कृतज्ञ है क्योंकि उसी की उदारता के कारण ही मदनिका वधू पद प्राप्त कर उसकी पत्नी बनी थी।[3] वह वसन्तसेना को भी 'वधू' का गौरव-पद प्रदान करता है।[4] इसी प्रकार शर्विलक कौटुम्बिक मर्यादा के प्रति अपनी सजगता का ज्वलंत प्रमाण देता है।

संवाहक भिक्षु:—

संवाहक शाक्य-श्रमण भी शर्विलक के समान अनु-नायक कहा जा सकता है, क्योंकि इसने भी नायक चारुदत्त की प्राण-रक्षा मे महत्त्वपूर्ण सहायता पहुँचाई है। बौद्ध-भिक्षु होने से पूर्व वह हारे हुए जुआरी के रूप में हमारे सामने आता है। वह पाटलिपुत्र का रहने वाला है तथा एक गृहस्थ का पुत्र है। वह अपूर्व देश-दर्शन के कौतूहल से उज्जयिनी नगरी मे आया है। यहाँ वह संमर्दन की कला सीख कर आर्य चारुदत्त के घर संवाहक के रूप मे नौकरी करने लगा।[5] किन्तु चारुदत्त

१. (क) हत्वा तं कुनृपमहं हि पालकं भो—
स्तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम्।
तस्याज्ञां शिरसि निधाय शेषभूतां
मोक्ष्येऽहं व्यसनगतं च चारुदत्तम्। वही, १०।४७
(ख) द्रष्टव्य १०।४८, ५१, ५२ तथा पृ० ५८३—८४

२. स्त्रीस्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूत।
रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं मित्रञ्च मां व्यपदिशत्यपरञ्च यासि॥
वही, ४।६

३. सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यतां जनः।
यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुण्ठनम्॥ वही, ४।२४

४. आर्ये वसन्तसेने! परितुष्टो राजा भवती वधूशब्देनानुगृह्णाति॥
वही, दशम अंक, पृ० ५९८

५. द्रष्टव्य, द्वितीय अंक, पृ० १२७-१२८

के निर्धन हो जाने के बाद उसे नौकरी छोड़नी पड़ी और वह जुए से जीविको-पार्जन करने लगा। एक दिन यह जुए में दश सुवर्ण हार जाने के कारण सभिक माथुर का ऋणी बन गया। विजयी द्यूतकर माथुर की मार के भय से भागकर वह वसन्तसेना के घर में प्राणरक्षा के लिये शरण लेता है। यह जानकर कि वह चारुदत्त का सेवक रह चुका है, वसन्तसेना उसका विशेष आदर-सम्मान करती है और सहानुभूतिवश वसन्तसेना अपना सुवर्ण-कंकण द्यूतकर माथुर को देकर उसे ऋणमुक्त करवा देती है। निर्विण्ण संवाहक को द्यूत-जीवन की विडम्बना से बड़ी विरक्ति होती है और वह तत्काल प्रव्रज्या ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार वह बौद्ध भिक्षु बन जाता है।

यह भिक्षु संवाहक-अवस्था में भी एक सच्चे और निष्कपट पुरुष के रूप में हमारे सामने आता है। यह अपने शरीर को बेच कर भी जुए में हारे रुपयों से उऋण होना चाहता है।[1] यह वसन्तसेना से भी सहजभाव से जुए में दश सुवर्ण हारने की बात बतला देता है।[2]

संवाहक गुणों का आदर करने वाला, कृतज्ञ तथा दृढ़निश्चयी है। वह आर्य चारुदत्त की सज्जनता तथा उदारता से अत्यन्त प्रभावित है। वह वसन्तसेना के सामने चारुदत्त को भूतलमृगाङ्क तथा श्लाघनीय बताता है।[3] वसन्तसेना से जो

---

१. अज्जा ! विक्किणिध मं इमश्श शहिअश्श हत्थादो दशेहिं शुवण्णकेहिं··· ··· गेहे दे कम्मकले हुविश्शं।
संस्कृत छाया—आर्या ! क्रीणीध्व माम् अस्य सभिकस्य हस्तात् दशभिः सुवर्ण ·········गेहे ते कर्मकरो भविष्यामि। वही, द्वितीय अंक, पृ० ११२

२. तदो, तेण अज्जेण भविति पालिचाटाके किदोम्हि। चालित्तावशेशे अत्तस्मि जूदो-वजीविम्हि संवुत्ते। तदो भाअधेअविशमदाए दशशुवण्णअं जूदे हालिदं।
संस्कृत छाया—ततः तेन आर्येण संवृत्ति परिचारकः कृतोऽस्मि। चारित्र्यावशेषे च तस्मिन् द्यूतोपजीवी अस्मि संवृत्तः। ततो भागधेयविषमतया दशसुवर्णं द्यूते हारितम्। द्वितीय अंक, पृ० १३१–१३२

३. (क) अज्जे ! के दाणिं तश्श भूदल-मिअंकस्स णामं ण जाणादि। शो क्खु शेट्ठि-चत्तले पडिवशदि, शलाहणिज्जणामधेए अज्जचालुदत्ते णाम।
संस्कृत छाया—आर्ये क इदानीं तस्य भूतलमृगाङ्कस्य नाम न जानाति। स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति श्लाघनीयनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम।

द्वितीय अंक पृ० १२६

(ख) ······एक्के अज्जे शुदशुशिदे, जे नाशिते पिअदशणे पिअवादी, दइअ ण किलेदि, अवकिदं विशुमलेदि। किं बहुणा उत्तेण, दक्खिणदाए पलकेलअं विअ अत्ताणअं अवगच्छदि, शलणागदवच्छले अ।
संस्कृत छाया—······एक आर्यः शुभ्रशिन, यस्तादृशः प्रियदर्शनः प्रियवादी,

अपना धर्म समझता है। उसे अपने इन्द्रिय-संयम पर गर्व है।[1]

वसन्तसेना को चारुदत्त के घर पहुँचाने के लिये ले जाता हुआ वह राजमार्ग में चारुदत्त को शूली पर लटकाने की घोषणा सुनकर अचानक वसन्तसेना के साथ श्मशान-स्थल पर पहुँच जाता है और चारुदत्त के चरणों मे गिर पड़ता है। चारुदत्त उसे न पहचानने के कारण अकारणबन्धु कहता है।[2] तब वह आद्योपान्त सारी कहानी सुनाता है। इस प्रकार वह चारुदत्त-कृत उपकार का भी बदला चुका कर अनुगृहीत हो जाता है।[3] फलागम के आनन्दपूर्ण अवसर पर उसकी इच्छा पूछे जाने पर वह सच्चे श्रमण की भाँति उत्तर देता है कि इस प्रकार की नश्वरता मे प्रव्रज्या मे भी मेरी आदर-बुद्धि दुगुनी हो गई है।[4] तथापि उसे पृथ्वी के सम्पूर्ण विहारों का कुलपति बना दिया जाता है और उस महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन किये जाने के उपलक्ष मे शिष्टाचार मे कहता है—शुभ समाचार है।[5] इस प्रकार संवाहक एक सच्चे, कृतज्ञ एवं सहनशील पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है।

धूता :—

धूता चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है। यह एक पतिव्रता नारी है। यह चारुदत्त के दुःख मे दुःखी और सुख मे सुख का अनुभव करती है। शर्विलक के द्वारा (वसन्तसेना के द्वारा धरोहर के रूप मे न्यस्त) सुवर्णभाण्ड के चुरा लेने का समाचार पाकर यह बड़ी दुःखी होती है और सोचती है कि लोग चारुदत्त की निर्धनता के कारण यह कलंक लगायेंगे कि उसने आभूषण हड़प लिये हैं और चोरी

---

१. (क) एशा तलुणी इत्थिआ, एशो भिक्खु त्ति शुद्धे मम एशे धम्मे।
संस्कृतछाया—एषा तरुणी स्त्री, एष भिक्षुरिति शुद्धो मम एष धर्मः।
अष्टमाक पृ० ४४६

(ख) हत्थसञ्जदो मुहसञ्जदो इन्दिअशञ्जदो शेक्खु मानुशे।
किं कलेदि लाअउले तश्श पललोओ हत्थे णिच्चले॥

संस्कृतछाया—हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मानुषः।
किं करोति राजकुलं तस्य परलोको हस्ते निश्चलः॥ ८।४७

२. चारुदत्त—कस्त्वमकारणबन्धुः। दशम अंक, पृ० ५७६

३. द्रष्टव्य—दशम अंक, पृ० ५७६–५७७

४. इमं ईदिशं अणिच्चत्तणं पेक्खिअ दिउणे मे पव्वज्जाए बहुमाणे संवुत्ते।
संस्कृतछाया—इदमीदृशमनित्यत्वं प्रेक्ष्य मे प्रव्रज्यायां बहुमानः संवृत्तः।
दशमांक, पृ० ५९९

५. पिअं णो पिअं।
संस्कृतछाया—प्रियं नः प्रियम्। दशम अंक, पृ० ५९९

तरह मुंडा लिया है।'

संन्यासी जीवन में भी संवाहक वसन्तसेना-कृत उपकार को विस्मृत नहीं कर सका है।' संयोग से उसकी प्रत्युपकार की अभिलाषा पूर्ण हो जाती है। शकारकृत कण्ठ-निपीडन के बाद चैतन्य को प्राप्त करती हुई वसन्तसेना के उठे हुए हाथ को देखकर वह उसके समीप जाता है और उसके प्राणों की रक्षा करता है। इस प्रकार पुराने उपकार का प्रतिदान कर वह कृतार्थ हो जाता है।'

संवाहक भिक्षु अपने बौद्ध-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों एवं नियमों का सम्यक् रूप से पालन करता है। भिक्षुओं को स्त्री-स्पर्श वर्जित है। वह इस नियम का पूर्ण पालन करता है। अष्टम अंक में वसन्तसेना को उठाने के लिये हाथ का सहारा नहीं देता, अपितु समीपस्थ एक लता को झुका देता है और वसन्तसेना को उसके सहारे खड़ी होने का निवेदन करता है।' संकटग्रस्त उस युवती स्त्री की रक्षा करना

---

१. (क) सञ्ञमध णिअपोटं णिच्चं जग्गेध झाण-पडहेण।
विसमा इन्दिअ-चोला हलन्ति चिलसञ्चिदं धम्मं॥
संस्कृत छाया—संयच्छत निजोदरं नित्य जाग्रत ध्यानपटहेन।
विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चितं धर्मम्॥ ८/१
(ख) शिल मुण्डिद तुण्ड मुण्डिदे चित्त ण मुण्डिद कीश मुण्डिदे।
जाह उणअ चित्त मुण्डिदे शाहु शुट्ठु शिल ताह मुण्डिदे॥
संस्कृत छाया—शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किं मुण्डितम्।
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम्॥ ८/३

२. जाव ताए बुद्धोवाशिआए पच्चुवकालं ण कलेमि, जाए दशाणं शुवण्णकाणं किदे जूदिकलेहिं णिक्कीदे, तदो तदो पहुदि ताए किदं विअ अत्ताणअं अवगच्छामि।
संस्कृतछाया—यावत्तस्या वसन्तसेनाया बुद्धोपासिकायाः प्रत्युपकारं न करोमि यया दशानां सुवर्णकानां कृते द्यूतकाराभ्यां निष्क्रीतः, ततः प्रभृतिः तया क्रीत-मिवात्मानमवगच्छामि। अष्टम अंक, पृ० ४४६

३. (क) हीणामहे! अट्ठाणपलिश्शन्तं शमश्शाशिअ वशन्तशेणिअं णअन्ते अणुग्गहिदम्हि पव्वज्जाए। उवाशिके! कहिं तुमं णइश्शं?
संस्कृतछाया—हन्त! अस्थानपरिश्रान्तां समाश्वास्य वसन्तसेनिका नयन् अनुगृहीतोऽस्मि प्रव्रज्यया। उपासिके! कुत्र त्वा नेष्यामि। दशम अंक, पृ० ५६३
(ख) किं मं ण शुमलेदि बुद्धोवाशिआ दश-शुवण्णणिक्कीदं?
संस्कृतछाया—किं मां न स्मरति बुद्धोपासिका दश-सुवर्ण-निष्क्रीतम्।
अष्टम अंक, पृ० ४४८

४. उट्ठेदु उट्ठेदु बुद्धोवाशिआ एदं पादव-समीवजादं लदं ओलम्बिअ।
संस्कृतछाया—उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु बुद्धोपासिका एतां पादपसमीपजातां लतामवलम्ब्य। (वसन्तसेना गृहीत्वा उत्तिष्ठति) अष्टम अंक, पृ० ४४८

अपना धर्म समझता है। उसे अपने इन्द्रिय-संयम पर गर्व है।[1]

वसन्तसेना को चारुदत्त के घर पहुँचाने के लिये ले जाता हुआ वह राजमार्ग में चारुदत्त को शूली पर लटकाने की घोषणा सुनकर अचानक वसन्तसेना के साथ श्मशान-स्थल पर पहुँच जाता है और चारुदत्त के चरणों में गिर पड़ता है। चारुदत्त उसे न पहचानने के कारण अकारणबन्धु कहता है।[2] तब वह आद्योपान्त सारी कहानी सुनाता है। इस प्रकार वह चारुदत्त-कृत उपकार का भी बदला चुका कर अनुगृहीत हो जाता है।[3] फलागम के आनन्दपूर्ण अवसर पर उसकी इच्छा पूछे जाने पर वह सच्चे श्रमण की भाँति उत्तर देता है कि इस प्रकार की नश्वरता से प्रव्रज्या में भी मेरी आदर-बुद्धि दुगुनी हो गई है।[4] तथापि उसे पृथ्वी के सम्पूर्ण विहारों का कुलपति बना दिया जाता है और उस महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन किये जाने के उपलक्ष में शिष्टाचार में कहता है—शुभ समाचार है।[5] इस प्रकार संवाहक एक सच्चे, कृतज्ञ एवं सहनशील पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है।

धूता :—

धूता चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है। यह एक पतिव्रता नारी है। यह चारुदत्त के दुःख में दुःखी और सुख में सुख का अनुभव करती है। शर्विलक के द्वारा (वसन्तसेना के द्वारा धरोहर के रूप में न्यस्त) सुवर्णभाण्ड के चुरा लेने का समाचार पाकर यह बड़ी दुःखी होती है और सोचती है कि लोग चारुदत्त की निर्धनता के कारण यह कलंक लगायेंगे कि उसने आभूषण हड़प लिये हैं और चोरी

---

१ (क) एशा तलुणी इत्थिआ, एशो भिक्खु त्ति शुद्धे मम एशे धम्मे।
संस्कृतछाया—एषा तरुणी स्त्री, एष भिक्षुरिति शुद्धो मम एष धर्मः।
अष्टमांक पृ० ४४६

(ख) हत्थसञ्जदो मुहसञ्जदो इन्दिअशञ्जदो शेक्खु मानुशे।
किं कलेदि लाअउले तश्श पललोओ हत्थे णिच्चले॥
संस्कृतछाया—हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मानुषः।
किं करोति राजकुलं तस्य परलोको हस्ते निश्चलः॥ ८।४७

२ चारुदत्त—कस्त्वमकारणबन्धुः। दशम अंक, पृ० ५७६

३. द्रष्टव्य—दशम अंक, पृ० ५७६–५७७

४. इमं ईदिशं अणिच्चत्तणं पेक्खिअ दिउणे मे पव्वज्जाए बहुमाणे संवुत्ते।
संस्कृतछाया—इदमीदृशमनित्यत्वं प्रेक्ष्य मे प्रव्रज्यायां बहुमानः संवृत्तः।
दशमांक, पृ० ५९९

५. पिअं णो पिअं।
संस्कृतछाया—प्रियं नः प्रियम्। दशम अंक, पृ० ५९९

होने की अफवाह फैला दी है। उसे अपने पति के यश की बहुत चिन्ता रहती है।[1] पति को लोकनिन्दा से बचाने के लिये बड़ी चतुराई से रत्नषष्ठी-व्रत के दान के बहाने अपनी रत्नावली विदूषक को दे देती है।[2] धूता को आभूषणों के प्रति ममता नहीं है, उसके मन में जरा भी लोभ नही है। धूता धार्मिक प्रवृत्ति की है। रत्नषष्ठी का दान इस बात का प्रमाण है। धूता अत्यंत उदार-हृदया नारी है। वह वसन्तसेना से ईर्ष्या एवं द्वेष नही करती और न ही वसन्तसेना से प्रेम करने वाले अपने पति चारुदत्त के प्रति ही कोप करती है। पञ्चम अंक मे वसन्तसेना रात्रिभर चारुदत्त के साथ रहती है, किन्तु धूता इसका विरोध नही करती। वह वसन्तसेना के साथ बहिन का सा व्यवहार करती है।[3] षष्ठ अंक मे वसन्तसेना रत्नावली को धूता के पास भिजवा देती है, परन्तु धूता उसे स्वीकार नहीं करती, वह उसे पुनः वसन्तसेना को लौटा देती है। वह कहती है कि आर्यपुत्र ने प्रसन्न होकर इसे आपको दिया है, उसे वापिस लेना सर्वथा अनुचित है।[4] धूता चारुदत्त को अत्यधिक प्रेम करती है। उसकी मृत्यु (वध) का समाचार पाने के पूर्व ही वह चितारोहण कर *अपनी सतीत्वपूर्ण पतिनिष्ठा का ज्वलंत प्रमाण देना चाहती है।* वह अपने पातिव्रत्य-धर्म के समक्ष अपने प्रिय पुत्र रोहसेन की भी चिन्ता नही करती। वह पाप-

---

१. हञ्जे ! किं भणामि ? अपरिक्खदसरीरो अज्जउत्तो त्ति। वरं दाणि सो सरीरेण परिक्खदो ण उण चारित्तेण। संपदं उज्जइणीए जणो एव्वं मन्तइस्सदि—'दलिद्ददाए अज्जउत्तेण ज्जेव ईदिसं अकज्जं अणुचिट्ठिदं' त्ति।
संस्कृतछाया—हञ्जे ! किं भणामि—'अपरिक्षतशरीरः आर्यपुत्र.' इति वरमिदानीं—स शरीरेण परिक्षत. न पुनश्चारित्रेण। साम्प्रतमुज्जयिन्या जन एवं मन्त्रयिष्यति—'दरिद्रतयार्यपुत्रेणैवेदृशमकार्यमनुष्ठितम्। तृतीय अंक, पृ० १८३

२. अहं क्खु रअणसट्ठि उववसिदा आसि। तहिं जधा विहवाणुसारेण बम्हणो पडिग्गाहिदव्वो, सो अ ण पडिग्गाहिदो, ता तस्स किदे पडिच्छ इमं रअणमालिअं।
संस्कृत छाया—अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता आसम्। तस्मिन् यथाविभवानुसारेण ब्राह्मणः प्रतिग्राहयितव्य:, स च न प्रतिग्राहित, तत् तस्य कृते प्रतीच्छ इमां रत्नमालिकाम्। तृतीय अंक, पृ० १८४

३ (वसन्तसेना दृष्ट्वा) दिट्ठिआ कुसलिणी बहिणीआ।
संस्कृतछाया—दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी ? दशम अंक, पृ० ५६८

४. भणादि अज्जा धूदा—अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा, णं जुत्तं मम एदं गेण्हिदुं। अज्जउत्तो ज्जेव मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी।
भणति आर्या धूता—'आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता न युक्तं ममैता ग्रहीतुम्। आर्यपुत्र एव मम आभरणविशेष. इति जानातु भवती।
षष्ठ अंक, पृ० ३१७

कर्म से भी नही डरती।[1] चारुदत्त धूता जैसी विभवानुगता पतिव्रता पत्नी के कारण ही अपने को दरिद्र नही समझता।[2] वस्तुतः धूता उत्तमकोटि की भारतीय गृहिणी है, जिसके लिये पति ही देवता एवं भगवान् हैं तथा वही आभूषण है।

रोहसेन :—मृच्छकटिक प्रकरण के षष्ठ अंक में बालक रोहसेन का उल्लेख हुआ है। यह चारुदत्त का पुत्र है।[3] बालकोचित मनचलापन और हठवादी आग्रह इसमें भी है। इसी के द्वारा बाल्यावस्था मे मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर सोने की गाडी के लिये आग्रह करने की घटना के आधार पर इस प्रकरण का नाम 'मृच्छकटिक' रखा गया है। रोहसेन पिता से बहुत अधिक प्यार करता है। पितृ-स्नेह के वशीभूत होकर वह चाण्डालों से प्रार्थना करता है कि उनके स्थान पर मुझे प्राणदण्ड दे दो किन्तु पिता को मुक्त कर दो।[4] बालक रोहसेन के प्रति वात्सल्य के कारण ही चारुदत्त प्रणयी के साथ-साथ पितृत्व की गरिमा से मण्डित हो सका है। बालक रोहसेन ने रूप ही नही अपितु स्वभाव भी पिता जैसा ही प्राप्त किया है। इसी से आर्य चारुदत्त अपना विनोद करते हैं।[5]

रदनिका—रदनिका चारुदत्त की चेटी है। अत्यन्त आज्ञाकारिणी है, साहसी है। सायकाल विदूषक चौराहे पर मातृदेवियो को बलि चढ़ाने के लिये जाते समय रदनिका को साथ लेकर जाता है।[6] दरिद्रता मे भी चारुदत्त की सेवा उसी निष्ठा

---

१. (सास्रम्) जाद ! मुञ्चेहि म, मा विग्ध करेहि। भीआमि अज्जउत्तस्स अमङ्गलावण्णणदो।
संस्कृत छाया—जात ! मुञ्च मा, मा विघ्नं कुरु, बिभेमि आर्यपुत्रस्य मङ्गलाकर्णनात्। दशम अंक, पृ० ५८३
(ख) वर पावारणणं, ण उण अज्जउत्तस्स अमङ्गलाकण्ण।
संस्कृतछाया—वर पापाचरणम्, न पुनरार्यपुत्रस्य अमङ्गलाकर्णनम्।
दशम अंक, पृ० ५८३

२. विभवानुगता भार्या सुखदुःखसुहृद् भवान्।
सत्यञ्च न परिभ्रष्टं यद्दरिद्रेषु दुर्लभम्॥ ३।२८

३. एसो क्खु अज्जचारुदत्तस्स पुत्तो रोहसेणो णाम।
संस्कृतछाया—एष खलु आर्यचारुदत्तस्यपुत्रोरोहसेनो नाम।
षष्ठ अंक, पृ० ३१६

४. वावादेध मं, मुञ्चध आवुकं।
संस्कृतछाया—व्यापादयत माम्, मुञ्चत आवुकम्। दशम अंक, पृ० ५३८

५. ण केवलं रूव सीलं पि, तक्केमि। एदिणा अज्जचारुदत्तो अत्ताणअं विणोदेदि।
संस्कृतछाया— न केवलं रूपम्, शीलमपि तर्कयामि। एतेन आर्यचारुदत्त आत्मानं विनोदयति। षष्ठ अंक, पृ० ३१६

६- (क) सवैलक्ष्यम्) भो वअस्स ! जई मए गन्तव्वं, ता एसा वि मे सहाइणी रदणिआ भोदु। (शेष अगले पृष्ठ पर)

और श्रद्धा के साथ करती जा रही है, जिस निष्ठा के साथ पहले करती थी। चारुदत्त की दयनीय अवस्था में अत्यन्त दुखी रहती है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन की देखभाल का पूर्ण दायित्व उसी के ऊपर है। रोहसेन के सोने की गाड़ी के साथ ही खेलने की हठ करने पर वह अत्यन्त दुखी होकर कहती है—"पुत्र ! हमारे यहाँ सोने का व्यवहार कहाँ है ? पिता, चारुदत्त के सम्पत्तिशाली होने पर पुनः सुवर्ण की गाड़ी से खेलना।'[1] सुख-दुःख में साथ देने वाली रदनिका जैसी दासी पाकर चारुदत्त निर्धनता में भी सम्पन्न है।

राजा पालक—राजा पालक एक अत्याचारी, निर्मम, विवेकरहित तथा विलासी शासक है। उसकी कुत्सित शासन-प्रणाली के कारण सारी प्रजा क्षुब्ध एवं संतप्त है। उसने अपने श्यालक शकार को अत्याचारपूर्ण व्यवहार करने की पूरी छूट दे रखी है। स्वयं यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में विश्वास करता है, किन्तु मनु के वचनों का उल्लंघन कर उसने चारुदत्त का प्राण-दण्ड क्षमा नहीं किया। भीरु इतना अधिक है कि सिद्धों की वाणी में विश्वास कर आर्यक को कारागार में डाल देता है और दूसरी ओर मदान्ध और अयोग्य भी इतना अधिक है कि राज्य-क्रान्ति की योजना को असफल करने में समर्थ नहीं हो सका। अन्ततः इसकी विलासिता, विवेकहीनता तथा निर्दयता के परिणामस्वरूप शासन-सत्ता पलट जाती है और इसका वध हो जाता है।[2]

आर्यक—आर्यक गोपाल-पुत्र है।[3] सिद्ध ज्योतिषी की वाणी पर विश्वास करके घर से निकालकर यह राजा पालक के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है।[4]

(पिछले पृष्ठ का शेष)
संस्कृत छाया—भो वयस्य ! यदि मया गन्तव्यम्, तदेयापि मम सहायिनी रदनिका भवतु। प्रथम अंक, पृ० ६१

(ग) चारुदत्त—रदनिके ! मैत्रेयमनुगच्छ।
चेटी—जं अज्जो आणवेदि।
संस्कृतछाया—यदार्य आज्ञापयति। प्रथम अंक, पृ० ६१

१. (सनिर्वेदं निःश्वस्य) जाद ! कुदो अम्हाणं सुवण्ण-ववहारो ? तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्णस अडिआए कीलिस्ससि। ता जाव विणोदेमि णं, अज्जआ वसन्तसेणाआए समीवं उवसप्पिस्सं।
संस्कृतछाया—जात। कुतोऽस्माकं सुवर्णव्यवहारः। तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्यवसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। षष्ठ अंक, पृ० ३१८

२. हत्वा रिपुं तं बलमन्त्रिहीनं पौरान्समाश्वास्य पुनः प्रकर्षात्।
प्राप्तं समग्रं वसुधाधिराज्य राज्यं बलारेरिव शत्रुराज्यम्॥ १०/४८

३. शरणागतो गोपालप्रकृतिरार्यकोऽस्मि। सप्तम अंक, पृ० ३६५

४. (क) किं घोषादानीय योऽसौ राजा पालकेन बद्धः ? सप्तम अंक, पृ ३६५
(ग) पृ० ३२८–३२६ (६/२)

वह शरीर से स्वस्थ तथा प्रभावकारी एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाला है।[1] चारुदत्त के प्रति वह अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव करता है और उसे आत्मा कह उठता है।[2] प्रकरण के अन्त में बन्दी गोपाल-बालक आर्यक मित्र शर्विलक की सहायता से सिंहासनारूढ़ होकर राजा बन जाता है। वह चारुदत्त के उपकार का बदला उसे कुशावती राज्य प्रदान करके करता है।[3] वसन्तसेना को 'वधू' की उपाधि से विभूषित करता है। आर्यक को साधुचरित्र वाला, साहसी, कृतज्ञ, कुल और मान की रक्षा करने वाले पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है।[4]

मदनिका—मदनिका वसन्तसेना की निष्ठापूर्ण दासी तथा सखी है। दोनों परस्पर बहुत प्रेम करती है। मदनिका वसन्तसेना की अत्यन्त विश्वासपात्र दासी है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अपनी आसक्ति का रहस्य केवल मदनिका को ही बतलाती है। मदनिका का शर्विलक से गुप्त प्रणय है। वह साधु स्वभाव की है। शर्विलक ने उसकी मुक्ति के लिये सेंध लगाकर चारुदत्त के घर चोरी की है, यह जानकर वह मूर्छित हो जाती है[5] क्योंकि उसे भय है कि शर्विलक ने चारुदत्त के साथ शायद हिंसापूर्ण व्यवहार किया हो। चोरी के आभूषणों के साथ आये हुए शर्विलक को वह एक सुगृहिणी के समान सत्परामर्श देती है कि आभूषण लौटा दो।[6] वसन्तसेना भी मदनिका के द्वारा दी गई सम्मति की प्रशंसा करती हुई कहती है कि हे मदनिके ! तुम धन्य हो, तुमने दासीत्व-बन्धन से मुक्त (स्त्री) के

---

१. करिकर-समबाहुः सिंहपीनोन्नतांसः
पृथुतर-सम-वक्षास्ताम्रलोलायताक्षः।
कथमिदमसमानं प्राप्त एवंविधो यो
वहति निगडमेकं पादलग्नं महात्मा ॥ ७/५

२. स्वात्मापि विस्मर्यते। सप्तम अंक, पृ० ३६८

३. प्रतिष्ठितमात्रेण तव सुहृदा आर्यकेण उज्जयिन्यां वेणातटे कुशावत्यां राज्यमतिसृष्टम्। दशम अंक, पृ० ५८३

४. आर्यकेणार्यवृत्तेन कुलं मानञ्च रक्षता।
पशुवद्यज्ञवाटस्थो दुरात्मा पालको हतः ॥ १०/५१

५. अयि प्रभाते मया श्रुतं श्रेष्ठिचत्वरे—यथा सार्थवाहस्य चारुदत्तस्य इति (वसन्तसेना मदनिका च मूर्च्छां नाटयतः)। चतुर्थ अंक, पृ० २०४

६. तस्स ज्जेव अज्जस्स केरओ भविअ, एदं अलंकारअं अज्जआए उवणेहि।···तुमं दाव अचोरो, सो वि अज्जो अरिणो, अज्जआए सकं अलंकारअं उवगदं भोदि।
संस्कृतछाया—तस्यैव आर्यस्य सम्बन्धी भूत्वा एतमलंकारकमार्यायां उपनय ···त्वं तावदचोरः, सोऽपि आर्यः अनृणः, आर्यायाः स्वकः अलङ्कारक उपगतो भवति। चतुर्थ अंक, पृ० २१७

समान कहा है।' मदनिका अपनी स्वामिनी वसन्तसेना को भी समय-समय पर अच्छी सम्मति देती रहती है। इसी से वसन्तसेना उसकी प्रशंसा करती हुई कहती है कि तुम दूसरे के हृदय की बातों को ग्रहण करने में कुशल हो।' मदनिका भीरु नहीं है। वह शर्विलक जैसे कर्मठ और साहसी की पत्नी होने योग्य है। जब पाणि-ग्रहण के तुरन्त बाद शर्विलक अपने मित्र आर्यक को छुड़ाने जाना चाहता है, तो वह उसके मार्ग में बाधा नहीं डालती। वह केवल उसे इतना ही कहती है कि पहले मुझे गुरुजनों के पास सुरक्षित पहुँचा दो। वह उसे अपने कार्य में सावधान होने के लिये भी परामर्श देती है।' वस्तुतः मदनिका वसन्तसेना की स्नेहमयी सखी है और अपने प्रणय की निष्ठा के कारण उसने दासीपन को छोड़कर एक वधू (सुगृहिणी) का रूप धारण कर लिया है।

अधिकरणिक—न्यायालय के दृश्य में न्यायाधीश (अधिकरणिक) की अवतारणा हुई है। न्यायाधीश पवित्र हृदय तथा न्यायप्रिय है, किन्तु भीरु है, क्योंकि राजश्यालक शकार की दुष्टता से भयभीत रहता है। शोधनक से शकार के सर्वप्रथम कार्यार्थी होने की बात सुनकर वह कहता है—'क्या सर्वप्रथम राजा का साला ही कार्यार्थी है? ......आज न्याय-विमर्श में व्याकुलता छा जायेगी। भद्र! बाहर कहो कि 'जाओ आज तुम्हारे अभियोग पर विचार नहीं होगा।' तदनन्तर शकार की धमकी सुनकर न्यायाधीश कहता है—'यह मूर्ख सब कुछ कर सकता है। भद्र! कह दो कि 'आओ, तुम्हारे अभियोग पर आज ही विचार होगा।''

१. साहु मदणिए! साहु। अभुजिस्साए विअ मन्तिदं।
 संस्कृतछाया—साधु मदनिके। साधु। अभुजिष्ययेव मन्त्रितम्।
 चतुर्थ अंक, पृ० २१८

२. *सुट्ठु, तुए जाणिदं। परहिअ अग्गहण-पण्डिआ मदणिआ क्खु तुमं।*
 संस्कृतछाया—सुष्ठु त्वया ज्ञातम्। परहृदयग्रहणपण्डिता मदनिका खलु त्वम्।
 द्वितीय अंक, पृ० ९६

३. (साम्रमञ्जलिं बद्ध्वा) एव्वं णेदं। ता परं णेदु मं अज्जउत्तो समीवं गुरुअणाण ...जधा अज्जउत्तो भणादि। अप्पमत्तेण दाव अज्जउत्तेण होदव्वं।
 संस्कृतछाया—एवमेतत्। तत्परं नयतु मामार्यपुत्रः समीपं गुरुजनानाम्। ...... यथा आर्यपुत्रो भणति। अप्रमत्तेन तावदार्यपुत्रेण भवितव्यम्।
 चतुर्थ अंक, पृ० २२५-२२६

४. (क) कथं प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी। शोधनक! व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण तव व्यवहार इति। भद्र। निष्क्रम्य उच्यताम्—गच्छ, अद्य न दृश्यते तव व्यवहार इति। नवम अंक, पृ० ४६०

(ख) सर्वमस्य मूर्खस्य सम्भाव्यते। भद्र! उच्यताम्—आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहार। नवम अंक, पृ० ४६१

यह सज्जनता का आदर करता है। चारुदत्त की सज्जनता और शालीनता से बहुत अधिक प्रभावित है। उसे विश्वास नहीं होता कि चारुदत्त जैसा सज्जन, आकृतिविशेष वाला व्यक्ति वसन्तसेना की हत्या रूप जघन्य कर्म को कर सकता है। वह सच्चाई की खोज करने का इच्छुक दिखाई पड़ता है, किन्तु सारे प्रमाण चारुदत्त के विरुद्ध ही मिलते जाते हैं, तो वह अपने वैयक्तिक विश्वास को न्याय के मार्ग में बाधक नहीं बनने देता। न्यायाधीश के साथ-साथ सभ्य एवं सुसंस्कृत मनुष्य होने के नाते उसने राजा पालक को मनु के विधान का स्मरण कराकर चारुदत्त के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति अवश्य अभिव्यक्त की है किन्तु न्याय-तुला की पवित्रता को कलंकित नहीं होने दिया।[1] राजा पालक की आज्ञा की सूचना मिलने पर न्यायाधीश ने बड़े गम्भीर स्वर में आदेश दिया—"भद्र शोधनक। इस ब्राह्मण को हटाओ। यहाँ कौन है? कौन है? चाण्डालों को आदेश दो।"[2] इस प्रकार अधिकरणिक के वाक्यों में न्यायाधीश की निष्पक्ष न्यायशीलता और सुसंस्कृत व्यक्ति के व्यवहार की झलक इन दोनों बातों की एक साथ अभिव्यञ्जना हुई है।

वीरक और चन्दनक—वीरक राजा पालक का सेनापति और चन्दनक बलपति है। दोनों नगर-रक्षक हैं। चारुदत्त की गाड़ी में बन्दी आर्यक के भागते समय दोनों गाड़ी को निरीक्षणार्थ रोकते हैं। वीरक आर्यक का पुराना शत्रु है और चन्दनक उसका मित्र है।[3] चन्दनक गाड़ी में झाँककर देखता है और आर्यक को देखकर उसे अभयदान देता है।[4] भाषा-प्रयोग में यथेष्ट अभ्यास न होने के कारण वह गाड़ी में बैठे व्यक्ति का विवरण देते समय 'आर्या' कहने के स्थान पर 'आर्य' शब्द का प्रयोग कर बैठता है। वीरक चन्दनक की अपेक्षा अधिक चतुर,

---

१. आर्यचारुदत्त ! निर्णये वयं प्रमाणम्, शेषे तु राजा। तथापि शोधनक ! विज्ञाप्यतां राजा पालकः—

अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह॥ ९/३९

२. भद्र ! शोधनक। अपसार्य्यतामयं वटुः। (शोधनकस्तथा करोति।) कः कोऽत्र भोः ! चण्डालानां दीयतामादेशः। नवम अंक, पृ० ५१८

३. अयं मे पूर्ववैरी, अयं मे पूर्वबन्धु। षष्ठ अंक, पृ० ३४२

४. (क) आर्यक—शरणागतोऽस्मि।

चन्दनक—(संस्कृतमाश्रित्य) अभय शरणागतस्य। षष्ठ अंक, पृ० ३४४–४५

(ख) अभअं तुह देउहरो विण्हू बह्मा रवी चन्दो अ।
हत्तूण सत्तुवक्खं सुम्भ-णिसुम्भे जधा देवी॥
संस्कृतछाया—अभयं तव ददातु हरो विष्णुर्ब्रह्मा रविश्च।
हत्वा शत्रुपक्षं शुम्भनिशुम्भौ यथा देवी॥ ६/२७

सावधान, एवं सतर्क है और पालक के प्रति अधिक निष्ठावान् है। उसे चन्दनक के शब्द-परिवर्तन—प्रारम्भ में आर्य कहकर आर्या कहना—से संशय हो जाता है और वह गाड़ी का निरीक्षण स्वयं करना चाहता है। इसी बात पर दोनों में कलह होती है। पारस्परिक झगड़े में दोनों एक दूसरे पर कीचड उछालते हैं। चन्दनक वीरक की जाति का भेद खोलता है कि तुम नापित हो।[1] तथा वीरक चन्दनक की जाति का भेद खोलता है कि तुम चमार हो।[2] चन्दनक क्रोधाभिभूत होकर वीरक के केश पकडकर उसे भूमि पर पटक देता है और लात भी मारता है। वीरक न्यायार्थ न्यायालय जाता है और चन्दनक के विरुद्ध अभियोग लगाता है। चन्दनक आर्यक को तलवार देकर उसे सुरक्षित करके अन्त में अपने परिवार के साथ उसी की सहायता में विद्रोह को सफल बनाने चला जाता है।

इस प्रकार वीरक तथा चन्दनक दोनों एक पद पर नियुक्त होकर भी अपनी अलग-अलग विशेषताओं से युक्त व्यक्तित्व वाले है।[3] वीरक किसी पर जल्दी विश्वास नहीं करता। वह राजकीय कार्य में अपने पिता को भी क्षमा करने के लिए तैयार नहीं है।[4] इसके विपरीत चन्दनक सहज विश्वास कर लेने वाला है। वह गुणग्राही है। आर्य चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रति सम्मान की भावना से ओत-प्रोत है। वह कहता है कि आर्या वसन्तसेना और धर्मनिधि चारुदत्त ये दो

---

१. मिण्ण-सिलाअल-हत्थो पुरिसाणं कुच्च-गण्ठिमण्ठवणो।
कत्तरि-वावुद-हत्थो तुमं पि सेणावई जादो॥ ६/२२
संस्कृतछाया—शीर्णशिलातलहस्तः पुरुषाणां कूर्च-ग्रन्थि संस्थापन।
कर्त्तरी-व्यापृत-हस्तस्त्वमपि सेनापतिर्जातः॥ ६/२२

२. जादी तुज्झ विसुद्धा मादा भेरी पिदा वि दे पडहो।
दुम्मुह! करडअ-भादा तुमं पि सेणावई जादो॥ ६/२३
संस्कृतछाया—जातिस्तव विशुद्धा माता भेरी पितापि ते पटहः।
दुर्मुख करटकभ्राता त्वमपि सेनापतिर्जात॥ ६/२३

३. एककार्मनियोगेऽपि नानयोस्तुल्यशीलता।
विवाहे च चितायाञ्च यथा हुतभुजोर्द्वयोः॥ ६/१६

४. (क) वीरक—को अज्जचारुदत्तो? का वा वसन्तसेणा। जेण अणवलोइदं वजइ।
संस्कृतछाया—क आर्यचारुदत्त.? का वा वसन्तसेना? येनानवलोकितं व्रजति।
षष्ठ अंक, पृ० ३४०

(ख) जाणामि चारुदत्तं वसन्तसेणं अ सुट्ठु जाणामि।
पत्ते अ राअकज्जे पिदरंपि अहं न जाणामि॥
संस्कृतछाया—जानामि चारुदत्तं वसन्तसेनाञ्च सुष्ठु जानामि।
प्राप्ते च राजकार्ये पितरमपि अहं न जानामि॥ ६/१५, पृ० ३४१–३४२

ही उज्जयिनी नगरी मे पूज्य एवं अलंकारभूत है।[1]

इस प्रकार वीरक तथा चन्दनक दोनो शूद्र जाति के हैं, दोनो लड़ाकू प्रकृति के है किन्तु दोनो मे से वीरक स्वामिभक्त है और चन्दनक सत्ता-परिवर्तन के लिये प्रयत्नशील है।

सभिक माथुर, द्यूतकर और दर्दुरक—जुआरियों मे उनकी मनोवृत्ति-गत सामान्य विशेषताओं का सम्यक् प्रदर्शन हुआ है। किन्तु उन सबके बीच मे दर्दुरक एकमात्र ऐसा जुआरी है जिसके चरित्र में कुछ प्रशंसनीय बातें सन्निहित हैं। वही सभिक (द्यूताध्यक्ष) माथुर के शिकंजे से संवाहक की रक्षा करता है। केवल दस-सुवर्ण के लिये पञ्चेन्द्रियो से युक्त मनुष्य को सताया जाना उसे सहन नहीं है।[2] वह द्यूताध्यक्ष सभिक से मारपीट कर उसकी आंखो मे धूल झोंक देता है और संवाहक को भाग जाने का इशारा कर देता है।[3] स्वयं भी राजद्रोही अपने मित्र शर्विलक के पास चला जाता है।

वृद्धा—नवम अंक मे वृद्धा माता का वर्णन आता है। यह वसन्तसेना की माता है। वेश्यालय के समस्त जन उसका सम्मान करते है। पहले वह चाहती थी कि वसन्तसेना शकार के प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार करे, किन्तु बाद मे यथास्थिति समझकर वह अपनी पुत्री वसन्तसेना के आर्य चारुदत्त के प्रति प्रणय का पूर्णरूपेण समर्थन करने लगी। न्यायालय मे अभियोग-काल मे उसने चारुदत्त की रक्षा के लिये यथासम्भव चेष्टा की और अन्तिम घड़ी तक चारुदत्त की उदारता, सज्जनता आदि गुणो का बखान ही करती रही।[4] उसने वसन्तसेना के आभूषणों को भी पह-

---

१ दो ज्जेव पूअणीआ एत्थ णअरीए तिलअभूदा अ।
अज्जा वसन्तसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ॥
संस्कृत छाया—द्वावेव पूजनीयौ अत्र नगर्यां तिलकभूतौ च।
आर्या वसन्तसेना धर्मनिधिश्चारुदत्तश्च॥ ६/१८

२. अरे मूर्ख ! नन्वहं दशसुवर्णान् कटकरणेन प्रयच्छामि। तद् किं यस्यास्ति धनम् स क्रोडे कृत्वा दर्शयति ? अरे—
दुर्वर्णोऽसि विनष्टोऽसि दशस्वर्णस्य कारणात्
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तो नरो व्यापाद्यते त्वया॥ २/१३

३. (क) माथुरो दर्दुरं ताडयति। दर्दुरो विप्रतीपं ताडयति। द्वि० अंक, पृ० १२२
(ख) दर्दुरो माथुरस्य पांसुना चक्षुषी पूरयित्वा संवाहकस्य अपक्रमितुं संज्ञां ददाति। संवाहकोऽपि अपक्रामति। द्वि० अंक, पृ० १२३

४ पसीदन्तु पसीदन्तु अज्जमिस्सा। ता जदि वावादिदा मम दारिआ, वावादिदा, जीवदु मे दीहाऊ। अण्णं च-अत्थि-पच्चत्थिएण ववहारो, अहं अत्थिणी, ता मुञ्चध एदं।……हा जाद ! हा पुत्तअ। (इति रुदती निष्क्रान्ता)।
संस्कृतछाया—प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु आर्यमिश्रा। तद् यदि व्यापादिता ममदारिका व्यापादिता, जीवतु मे दीर्घायुः। अन्यच्च अर्थिप्रत्यर्थिनोर्व्यवहारः, अहमर्थिनी, तद् मुञ्चत एनम्। नवम अंक, पृ० ५१४

पहचानने में बड़ी कुशलता से इंकार कर दिया।[1] वस्तुतः इस वृद्धा गणिका का आचरण विस्मयोत्पादक तथा साहसपूर्ण ही कहा जा सकता है।

चाण्डाल—दशम अंक में चाण्डालों का वर्णन आता है। इनको जल्लाद भी कहते हैं। इनका कार्य अपराधी घातकों को प्राणदण्ड देना है। चाण्डाल होते हुए भी ये समझदार हैं।[2] ये भी चारुदत्त की सज्जनता से प्रभावित हैं। इनमें से एक को तो यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि चारुदत्त जैसे सज्जन पुरुष ने वसन्तसेना की हत्या की होगी। वह केवल चारुदत्त कहकर पुकारने वाले अपने साथी को समझाता है—'अरे बिना उपाधि के आर्य चारुदत्त का नाम पुकार रहे हो? अरे! देखो, उन्नति और अवनति में रात और दिन की अप्रतिहत गति रहती है, उनके क्रम में कोई विकार नहीं आता। उन्मुक्त बन्धन वाली यौवन-सम्पन्न युवती के समान दैव स्वच्छन्द गति से चलता है। नियति की गति दुर्निवार है। झूठे दोषारोपण के कारण क्या आर्य चारुदत्त का कुल, नाम इत्यादि प्रणाम करके मस्तक पर रखने योग्य नहीं है? राहु से ग्रसित चन्द्रमा क्या जनता से पूजनीय नहीं होता है?'[3] वस्तुतः चारुदत्त की प्राणरक्षा की कामना अप्रत्यक्ष रूप से इन चाण्डालों की

---

१. (अवलोक्य) सरिसो एसो, ण उण सो।······अज्ज! सिप्पिकुसलदाए ओबन्धेदि दिट्ठिं, ण उण सो।······णं भणामि—णहु णहु अणभिजाणिदो अद्धवा कदावि सिप्पिणा घडिदो भवे।

संस्कृत छाया—सदृश एषः, न पुनः सः।······आर्य! शिल्पिकुशलतया अवबध्नाति दृष्टिम्, न पुनः सः।······ननु भणामि, न खलु न खलु अनभिजातः, अथवा, कदापि शिल्पिना घटितो भवेत्। नवम अंक, पृ० ५०८–५०९

२. प्रथम—अले! भणिदोम्हि पिदुणा सग्गं गच्छन्तेण। जधा पुत्त! वीरअ। जइ तुह वज्जवाली होदी, मा सहसा वावादअसि वज्झं।······ कदापि कोवि साहू अत्थं दइअ वज्झं मोआवेदि। कदावि लण्णो पुत्ते होदि, तेन वद्धावेण सव्ववज्झाण मोक्खे होदि। कदावि हत्थी बन्धं खण्डेदि तेण सम्भमेण वज्झे मुक्के होदि। कदावि लाअपलिवत्ते होदि, तेण सव्ववज्झाणं मोक्खे होदि।

संस्कृतछाया—अरे! भणितोऽस्मि पित्रा स्वर्गं गच्छता। यथा पुत्रवीरक! यदि तव वध्यपाली भवति, मा सहसा व्यापादयसि वध्यम्।······कदापि कोऽपि साधुरर्थं दत्त्वा वध्यं मोचयति। कदापि राज्ञः पुत्रो भवति, तेन वृद्धिमहोत्सवेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति। कदापि हस्ती बन्धं खण्डयति, तेन सम्भ्रमेण वध्यो मुक्तो भवति। कदापि राजपरिवर्त्तो भवति, तेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति। दशम अंक, पृ० ५५८–५५९

३. (क) अब्भुदए अवसाणे तहेअ लत्तिन्दिवं अहदमग्गा।
उद्दामे व्व किशोरी णिअदी क्खु पडिच्छिदुं जादि॥

संस्कृतछाया—अभ्युदये अवसाने तथैव रात्रिन्दिवमहतमार्गा।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

भी रही है।

कर्णपूरक—यह वसन्तसेना का भृत्य है। असीम साहसी है। यही वसन्तसेना के दुष्ट हाथी—खुण्टमोडक से बौद्ध भिक्षु संवाहक की रक्षा करता है और उदार-शील चारुदत्त के द्वारा पुरस्कार के रूप में उनका जातीकुसुमवासित प्रावारक प्राप्त करता है।[1]

शोधनक—नवम अंक में नवीन पात्र शोधनक हमारे सामने आता है। यह न्यायालय का एक सेवक है।[2]

चेट और विट—शृंगार-प्रबन्ध के नायकों के सहायक के रूप में विदूषक के साथ-साथ 'चेट' और 'विट' का भी वर्णन मिलता है। सामान्य रूप से ये सहायक स्वामिभक्त, बातचीत तथा हास्यविनोद में कुशल, कुपित वधू के मान को भंग करने में कुशल तथा सच्चरित्र होते हैं।[3] चेट साधारण दास होता है।[4]

विट का विशिष्ट लक्षण भी किया गया है। यथा भोगविलास में अपनी सम्पत्ति क्षीण कर चुकने वाला, धूर्त, वार्तालाप में निपुण, कतिपय कलाओं में निपुण, वेशोपचार चतुर-स्वभाव का मधुर और गोष्ठियों में सम्मानित पुरुष

(पिछले पृष्ठ का शेष)

उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रतीष्टं याति ॥ १०।१६

(ख) सुक्का ववदेशा से कि पणमिअ मत्थए ण कादव्वं।
लाहुगहिदे वि चन्दे ण वन्दणीए जणपदस्स ॥
संस्कृतछाया—शुष्का व्यपदेशा अस्य किं प्रणम्य मस्तके न कर्तव्यम्।
राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य ॥ १०।२०

१. (क) आहणिऊण सरोसं तं हत्थिं विञ्झ-सैल-सिहराभं।
मोआविओ मए सो दन्तन्तरसंठिओ परिव्वाजओ ॥ वही
संस्कृत छाया—आहत्य सरोषं तं हस्तिनं विन्ध्यशैलशिखराभम्।
मोचितो मया स दन्तान्तरसंस्थितः परिव्राजकः ॥ २।२०

(ख) तदो अज्जए ! एक्केण सुण्णाइं आहरणट्ठाणाइं परामसिअ, उद्धं पेक्खिअ, दीहं णीससिअ, अअं पावारओ मम उवरि क्खित्तो। द्वितीय अंक, पृ० १४२

२. आणत्तम्हि अधिअरणभोइएहि—'अरे सोहणआ ! ववहारमण्डवं गदुअ आसणाइं सज्जीकरेहि त्ति।
संस्कृत छाया—आज्ञप्तोऽस्मि अधिकरणभोजकैः—अरे शोधनक ! व्यवहारमण्डपं गत्वा आसनानि सज्जीकुरु इति। नवम अंक, पृ० ४५१

३. शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः।
भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभञ्जनाः शुद्धाः ॥ साहित्यदर्पण ३।४०

४. कलहप्रियो बहुकथो विरूपो गन्धसेवकः।
मान्यामान्यविशेषज्ञश्चेटोऽप्येवंविध स्मृतः ॥ नाट्यशास्त्र ३५।५८

विट कहलाता है।[1]

मृच्छकटिक प्रकरण में तीन चेटों का वर्णन है—चारुदत्त का चेट, वसन्तसेना का चेट और शकार का चेट।

चारुदत्त के चेट का नाम वर्धमानक है, वसन्तसेना का चेट कुम्भीलक है और शकार के चेट का नाम स्थावरक है।

चेट वर्धमानक—यह अत्यन्त सरल प्रकृति का नौकर है। चारुदत्त इसे ही वसन्तसेना को पुष्पकरण्डक उद्यान में प्रातःकाल पहुँचाने का आदेश देते हैं। किन्तु वह गाड़ी ढकने वाला वस्त्र लाना भूल जाता है और गाड़ी द्वार पर खड़ी करके उस वस्त्र को लेने अपने घर चला जाता है। यानास्तरण को लाने और फिर जाने में हुए इस विलम्ब के कारण ही प्रवहण-विपर्यय की वह दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित होती है, जिसमें वसन्तसेना शकार के चंगुल में फँस जाती है। यह इतना भोला तथा सीधा है कि जब कारागार से भागा हुआ आर्यक चुपचाप गाड़ी में चढ़ता है और उसके पैरों में बँधी शृंखला बजती है, तो वर्धमानक उस आवाज को वसन्तसेना के नूपुरों की झंकार समझ लेता है।[2] स्वामिभक्ति, निश्छलता और सीधापन ही वर्धमानक की व्यक्तिगत विशेषतायें हैं।

चेट कुम्भीलक—कुम्भीलक गणिका वसन्तसेना का सेवक है। यह वर्धमानक चेट की अपेक्षा चतुर है और इसके अतिरिक्त धूर्त भी है। वह सात छिद्रों वाली बाँसुरी से मधुरध्वनि निकालता है, सात तारों से बजने वाली वीणा को बजाता है। वह गाना भी जानता है। उसका कथन है कि उसके गाने के सामने

---

१. (क) संभोगहीनसम्पद्विटस्तु धूर्तः कलैकदेशज्ञः।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम्॥ वही ३।४१

(ख) वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत्॥ वही ३५।५५

२. हीणामहे! आणीदे मए जाणत्थलके! लदणिए! णिवेदेहि अज्जआए वसन्तसेणाए अवत्थिदे सज्जे पवहणे अहिलुहिअ पुप्फकलण्डअं जिण्णुज्जाणं गच्छदु अज्जआ। (श्रुत्वा) कधं णेउलशद्दे? ता आअदा क्खु अज्जआ। अज्जए! इमे णस्स-कडुआ बइल्ला, ता पिट्ठदो ज्जेव आलुहदु अज्जआ।......पादुप्फालचालिदाणं णेउलाणं वीशन्तो शद्दो, भलक्कन्ते अ पवहणे, तथा तक्केमि शम्पदं अज्जआए आलूढाए होदव्वं, ता गच्छामि।

संस्कृतछाया—आश्चर्यम्! आनीत मया यानास्तरणम्। रदनिके! निवेदय आर्यायै वसन्तसेनायै—अवस्थितं सज्जं प्रवहणम्, अधिरुह्य पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं गच्छतु आर्या। कथं नूपुरशब्दः? तदागता खलु आर्या? इमौ नस्य-कटुकौ बलीवर्दौ, तद् पृष्ठत एवारोहतु आर्या। पादोत्कालनचालितानां नूपुराणां विश्रान्तः शब्दः? भाराक्रान्तं च प्रवहणम्? तथा तर्कयामि, साम्प्रतमार्यया आरूढया भवितव्यम्, तद्गच्छामि। षष्ठ अंक, पृ० ३३१–३३२

प्रसिद्ध गन्धर्व तुम्बुरु तथा देवर्षि गायक नारद भी तुच्छ है।[1] वसन्तसेना के आगमन की सूचना देने वह चारुदत्त के घर जाता है। वहाँ उद्यान का दरवाजा बन्द देखकर शरारत से विदूषक के ऊपर छिपकर कंकड़ी मारता है और तब कुम्भीलक को देखकर विदूषक दरवाजा खोलता है और दुर्दिन अंधकार में आने का कारण पूछता है। कुम्भीलक वसन्त और सेना वाली पहेली के द्वारा विदूषक की बुद्धि को आश्चर्य में डाल देने की चेष्टा करता है।[2] वह हर प्रश्न का उत्तर चारुदत्त से पूछकर देता है। मैत्रेय की अपेक्षा भी वह अधिक चतुर प्रदर्शित किया गया है।

चेट स्थावरक—शकार का सेवक है, उसी के अन्न से पला है। सामान्यतः *वह स्वामिभक्त है और शकार की लम्पटता में सहायता पहुँचाता है।* वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार के साथ वह भी रहा है। भय के कारण भागती हुई वसन्तसेना की तुलना वह सुन्दर पूँछ वाली ग्रीष्ममयूरी से करता है और उससे रुक जाने का अनुरोध करता है और कहता है कि मेरे स्वामी तुम्हारे पीछे वैसे ही दौड़ रहे हैं, जैसे लोग वन में गये हुए मुर्गे के बच्चे को पकड़ने के लिये दौड़ते है।[3] वह चित्त और कल्पना से मृदु प्रतीत होता है। एक ओर वह वसन्तसेना के प्रति दयाभाव रखता है, तो दूसरी ओर वह वसन्तसेना से यह अपेक्षा करता है कि वह शकार की कामवासना पूर्ण करे। इसके लिये वह वसन्तसेना को शकार के घर प्राप्त होने वाले मछली-मांस की प्रचुरता का लालच भी देता है।[4] किन्तु चेट

---

१ वश वाए्‌ शत्तछिद्दं शुशद्दं वीणं वाए्‌ शत्ततन्ति णदन्ति।
गीअ गाए्‌ गद्दहश्शाणुलूअ के मे गाणे तुम्बुलू णालदेवा॥
संस्कृतछाया—
वंश वादयामि सप्तच्छिद्रं सुशब्दं, वीणां वादयामि सप्ततन्त्रीं नदन्तीम्।
गीतं गायामि गर्दभस्यानुरूपं को मे गाने तुम्बुर्नारदो वा॥ ५/११

२. अले! तेण हि कदिश काले चुआ मौलेन्ति? शुशमिद्धाण गामाणं का लक्खअं कलेदि?……अले! दुवे वि एक्कश्शि कदुअ शिग्घं भणाहि।……अले! मुक्खं! अक्खलपदाइं पलिवत्तावेहि। एशा शा आअदा।
संस्कृतछाया—अरे! तेन हि कस्मिन् काले चूता मुकुलयन्ति? ……सुसमृद्धानां ग्रामाणां का रक्षां करोति? अरे! द्वे अपि एकस्मिन् कृत्वा शीघ्रं भण। अरे मूर्ख! अक्षरपदे परिवर्त्तय। एषा सा आगता। पंचम अंक, पृ० २७०—२७२

३. उत्ताशिना गच्छशि अन्तिका मे शपुण्णपुच्छा विअ गिम्हमोरी।
ओवग्गदी शामिअभट्टके मे वणे गडे कुक्कुडशावके व्व॥
संस्कृतछाया—उत्त्रासिता गच्छसि अन्तिका मे सम्पूर्णपक्षेव ग्रीष्ममयूरी।
अववल्गति स्वामी भट्टारको मे वने गतः कुक्कुटशावक इव॥ १/१६

४. लामेहि अ लाअवल्लहं तो क्खाहिशि मच्छमंशकं।
एदेहि मच्छमंशकेहि शुणआ मडअं ण शेवन्ति॥
संस्कृतछाया—रमय च राजवल्लभं ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम्।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वानो मृतकं न सेवन्ते॥ १/२६

स्थावरक का अपना विशेष व्यक्तित्व तथा वास्तविक चरित्र वसन्तसेना-मोटन वाले प्रसंग में उभर कर आया है। शकार वसन्तसेना को मार डालने के लिये उसे स्वर्ण-कंकण, स्वर्ण-आसन तथा सभी चेटों का प्रधानत्व आदि विविध प्रलोभन देता है,[1] किन्तु वह निर्भीक होकर ऐसा दुष्कर्म करने से मना करता है। वह स्पष्टभाषी और धर्मभीरु है। वह शकार से स्पष्ट कहता है—स्वामी! आप मेरे शरीर पर समर्थ है, चरित्र पर नहीं। वह परलोक से डरता है। पाप और पुण्य कर्मों के परिणामों का स्पष्ट भेद करता है। वह कहता है कि पूर्वजन्म के पाप-कर्मों के परिणाम से मैं परान्नभोजी बना हूँ और आप पुण्यों के प्रभाव से विविध स्वर्णाभरणों से भूषित है।[2] उसे अपनी वर्तमान अवस्था के प्रति दुःख है, पुनः वह स्त्री-हत्या रूप जघन्य पाप करने के लिये तैयार नहीं होता।[3] जब शकार चेट को वहाँ से चले जाने को कहता है, तो वह 'जैसी स्वामी की आज्ञा' कहकर चला जाता है किन्तु वसन्तसेना के समीप पहुँचकर यह निवेदन भी करता है—आर्ये!

---

१. पुत्तका! थावलका! चेडा! शोवण्णखडआइ दइश्शं। शोवण्णं दे पीढके कालइश्शं। शव्व दे उच्छिट्टं दइश्शं। शव्वचेडाणं महत्तलकं कलइश्शं। ता मण्णेहि मम वअणं। एणं वशन्तशेणिअं मालेहि। अष्टम अंक, पृ० ४१२-४१४

संस्कृतछाया—पुत्रक! स्थावरक! चेट! सुवर्णकटकानि दास्यामि। सौवर्णं ते पीठकं कारयिष्यामि सर्वं ते उच्छिष्टं दास्यामि। सर्वचेटाना महत्तरक करिष्यामि। तन्मन्यस्व मम वचनम्। एना वसन्तसेना मारय।

अष्टम अंक, पृ० ४१२-४१४

२. भट्टके! शव्वं कलेमि, वज्जिअ अकज्जं। पशीददु भट्टके! इअं मए अणज्जेण अज्जा पवहणपलिवत्तणेण आणीदा। पहवदि भट्टके शलीलाह, ण चालित्ताह। ......भाआमि क्खु अहं......पललोअश्श। भट्टके! शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे? जादिशे भट्टके बहु-शोवण्ण-मण्डिदे। जादिशे हग्गे पलपिण्डभक्खके भूदे। ता अकज्जं ण कलइश्शं। पिट्टदु भट्टके, मालेदु भट्टके, अकज्जं ण कलइश्शं।

संस्कृतछाया—भट्टक! सर्वं करोमि वर्जयित्वा अकार्यम्। प्रसीदतु भट्टकः। इयं मया अनार्येण आर्या प्रवहणपरिवर्तेनानीता। प्रभवति भट्टकः शरीरस्य, न चारित्रस्य।......बिभेमि खलु अहम्......परलोकात्। भट्टक! सुकृतदुष्कृतस्य परिणामः (परलोकः)। यादृशो भट्टक. बहुसुवर्णमण्डितः (सुकृतस्य परिणामः)। यादृशोऽहं परपिण्डभक्षकोभूतः (दुष्कृतस्य परिणामः)। तदकार्यं न करिष्यामि। पीडयतु भट्टकः, मारयतु भट्टकः, अकार्यं न करिष्यामि। पृ० ४१३-४१६

३. जेण म्हि गब्भदाशे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं।
अहिअं च ण कीणिश्शं तेण अकज्जं पलिहलामि॥

संस्कृतछाया—येनास्मि गर्भदासः विनिर्मितो भागधेयदोषैः।
अधिकञ्च न क्रेष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि॥ ८/२५

तुम्हारी रक्षा करने मे मेरी इतनी ही सामर्थ्य है।[1]

शकारकृत (वसन्तसेना के) कण्ठ-निपीडन के बाद जब वह उसे मूर्च्छित अवस्था मे पडी होने के कारण मृतक समझ लेता है, तब वह अत्यन्त पश्चात्ताप करता है कि गाडी से वसन्तसेना को वहाँ लाकर पहले तो मैंने ही उसको मार डाला।[2] शकार पुन उसे विविध आभूषणो का प्रलोभन देता है, जिससे यह रहस्योद्घाटन न करे किन्तु चेट उनको लेने से इंकार कर देता है।[3] अपनी पूर्ण स्वामिभक्ति के बावजूद वह स्त्री-हत्या जैसे कृत्य को करने मे असमर्थ रहा। चेट अपने चरित्र की विशेषता के कारण हत्या के रहस्य को सम्भवतः गुप्त नही रख सकेगा, इस आशंका से शकार उसे अपने महल की नवनिर्मित वीथी मे बन्दी बनाकर डाल देता है।[4]

वस्तुत दुष्कर्म से डरने वाला स्थावरक अत्यन्त साहसी है। वह निष्पाप एवं निर्दोष चारुदत्त के प्राणदण्ड की घोषणा सुनकर उसे बचाने के लिये अपने प्राणो की चिन्ता किये बिना महल की खिडकी से अपनी बेडियो के साथ कूद पडता है। वह कहता है कि मेरा मरना उचित है किन्तु चारुदत्त का नही। कुलपुत्र-रूपी विहगों के आश्रयीभूत चारुदत्त के प्राणो की रक्षा के निमित्त मरने से मुझे

---

१. *अले गब्भदाशे ! चेडे, गच्छ तुमं, ओवलके पविशिअ वीशन्ते एअन्ते चिट्ठ।* ज भट्टके आणवेदि। (वसन्तसेनामुपसृत्य) अज्जए ! एत्तिके मे विहवे।
संस्कृतछाया—अरे गर्भदास ! चेट ! गच्छ त्वम्, अपवारके प्रविश्य विश्रान्त एकान्ते तिष्ठ। यद् भट्टक आज्ञापयति। (वसन्तसेनामुपसृत्य) आर्ये। एतावान् मे विभव। अष्टम अंक, पृ० ४१८–४१९

२ पमश्शशदु पमश्शशदु भावे। अविचालिअं पवहणं आणन्तेण ज्जेव मए पढम मालिदा।
संस्कृतछाया—समाश्वसितु समाश्वसितु भाव। अविचारितं प्रवहणमानयतैव मया प्रथमं मारिता। अष्टम अंक, पृ० ४३४

३ (क) गेण्ह एद अलकालअ, मए ताव दिण्णे, जेत्तिके वेले अलकलेमि, तेत्तिकं वेल *मम अण्णं तव।*
संस्कृतछाया—गृहाण इममलंकारं मया तावद्दत्तम्, यावत्या वेलायामलङ्करोमि, तावती वेला मम अन्या तव। अष्टम अंक, पृ० ४४१

(ख) भट्टके ज्जेव एदे शोहन्ति, किं मम एदेहि।
संस्कृत छाया—भट्टक एव एते शोभन्ते, किं मम एतैः ? अष्टम अंक, पृ० ४४१

४. ··· ··मा वश्श वि कधइश्शशि त्ति पाशादबालग्ग-पदोलिकाए दण्डणिअलेण बन्धिअ णिक्खित्ते।
संस्कृतछाया—मा कस्यापि कथयिष्यसीति प्रासादबालाग्र-प्रतोलिकायां दण्डनिगडेन बद्ध्वा निक्षिप्तः। दशम अंक, पृ० ५४५

स्वर्ण की प्राप्ति होगी।' स्थावरक नीचे कूदता है और वसन्तसेना की हत्या का रहस्योद्घाटन कर देता है।' शकार यहाँ भी उसे स्वर्ण देकर सत्य को छिपाना चाहता है, किन्तु अधर्मभीरु स्थावरक उस घूस को भी घोषित कर देता है।' किन्तु जब चाण्डाल राजश्यालक शकार के प्रभाव के कारण उसकी बात पर विश्वास नहीं करते तो उसे अपने दास-भाव की स्थिति पर आन्तरिक वेदना होती है।' वह चारुदत्त के चरणों पर गिर पड़ता है और शरणार्द्र होकर कहता है— "आर्य चारुदत्त आपको बचाने मे मुझमें इतनी ही शक्ति थी।'"

---

१. अत्ताणअं पाडेमि। जइ एव्वं कलेमि तदा अज्जचालुदत्ते ण वावादीअदि। भोदु इमादो पाशादबालग्ग-पदोलिकादो एदिणा जिण्णगवक्खेण अत्ताणअं णिक्खिवामि। वलं हगे उवलदे, ण उण एशे कुलपुत्तविहआणं वाशपादवे अज्जचालुदत्ते। एव्व जइ विवज्जामि, लद्धे भए पललोए।

संस्कृतछाया—आत्मानं पातयामि। यद्येवं करोमि, तदा आर्यचारुदत्तो न व्यापाद्यते। भवतु, अस्याः प्रासादबालाग्रप्रतोलिकात एतेन जीर्णगवाक्षेण आत्मानं निक्षिपामि। वरमहमुपरतो न पुनरेष कुलपुत्रविहगानां वासपादप आर्यचारुदत्तः। एवं यदि विपद्ये लब्धो मया परलोकः। दशम अंक, पृ० ५४२-५४३

२. शुणाध अज्जा शुणाध, एत्थ दाणि मए पाविण पवहणपडिवत्तेण पुप्फकलण्ड-अजिण्णुज्जाणं वशन्तशेणा णीदा, तदो मम शामिणा 'मं ण कामेशि त्ति कदुअ बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा, ण उण एदिणा अज्जेण।

संस्कृत छाया—शृणुत आर्या! शृणुत, अत्र इदानीं मया पापेन प्रवहणपरिवर्तेन पुष्पकरण्डक-जीर्णोद्यानं वसन्तसेना नीता, ततो मम स्वामिना 'मां न कामयसीति' कृत्वा बाहुपाशबलात्कारेण मारिता, न पुनः एतेन आर्येण।

दशम अंक, पृ० ५४१-५४२

(ख) अहो तुए मालिदा, ण अज्जचारुदत्तेण।

संस्कृत छाया—अहो, त्वया मारिता न आर्यचारुदत्तेन। दशम अंक, पृ० ५४६

३. (क) पुत्तका! थावलका! चेडा, एद गेण्हिअ अण्णधा भणाहि।

संस्कृत छाया—पुत्रक! स्थावरक! चेट! एतद् गृहीत्वा अन्यथा भण।

दशम अंक, पृ० ५५०

(ख) (गृहीत्वा) पेक्खध पेक्खध भट्टालका! हहो। शुवण्णेण मं पलोभेदि।

संस्कृत छाया—प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वं भट्टारकाः। हंहो, सुवर्णेन मां प्रलोभयति।

दशम अंक, पृ० ५५१

४. हीमादिके! ईदिशे दाशभावे, जं शच्चं क पि ण पत्तिआअदि।

संस्कृत छाया—हन्त! ईदृशो दासभावः, यत्-सत्यं कमपि न प्रत्याययति।

दशम अंक, पृ० ५५२

५. अज्ज चालुदत्त! एत्तिके मे विहवे।

संस्कृत छाया—आर्य चारुदत्त! एतावान् मे विभव। दशम अंक, पृ० ५५२

स्थावरक दास है, वह अपनी सामर्थ्य जानता है, तथापि उसने वसन्तसेना और चारुदत्त को बचाने के लिये यथाशक्ति यथासंभव प्रयास किया। वह सत्य का उद्घोषक है, सज्जनता और शालीनता का पुजारी है। धर्मनिष्ठ है, परलोक से डरता है। निष्ठावान् स्वामीभक्त है।

चारुदत्त का चेट वर्धमानक और वसन्तसेना का चेट कुम्भीलक ये दोनों सामान्य श्रेणी के हैं। यद्यपि वर्धमानक ने कथा-विकास में निश्चय ही योगदान किया है तथापि इन दोनों की अपेक्षा शकार का चेट स्थावरक अपने साहसपूर्ण कार्यों के कारण कथा-विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वह स्थिति से दास होते हुए भी चरित्र की उज्ज्वलता की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

वसन्तसेना का विट—वसन्तसेना का विट चतुर, मधुरभाषी तथा वेशोपचार में कुशल है। अपने मानस में उद्भूत ललित शृंगारिक कल्पनाओं को वह सुन्दर, सुसंस्कृत वाणी में अभिव्यक्त करता है। अभिसरण के लिये उत्कण्ठित वसन्तसेना की ओर लक्ष्य करके वह कहता है—'यह कमलरहित लक्ष्मी है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, कुलीन रमणीयों का साक्षात् शोक है, कामदेव रूपी श्रेष्ठ वृक्ष का पुष्प है, सुरत-काल में लज्जा की प्रणयिनी, काम-क्षेत्र रूपी रङ्गभूमि में विलासपूर्वक गमन करने वाली (यह वसन्तसेना) प्रिय-पथिकों के समूहों से अनुगत होती है।'[1]

दुर्दिन का वर्णन करते हुए उसने एक ही पद्य में मेघ तथा राजा का सटीक चित्रण किया है।[2] उसने घोर जल-वृष्टि का वर्णन भी कई प्रकार से किया है।[3] गणिकाओं को रति-विहार के लिये शिक्षा देना रूप अपने कार्य को वह बड़े सुन्दर ढंग से पूर्ण करता है। वसन्तसेना के सुरत-कलाओं में निपुण होने पर भी वह उसके प्रति अगाध स्नेह के कारण उसे मर्मयोग्युक्त उपदेश देता है—यदि अत्यन्त

---

१ अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी
रतिक्षेत्रे रङ्गे प्रियपथिकसार्थैरनुगता॥ ५/१२

२. पवन-चपल-वेगः स्थूलधारा शरौघः
स्तनित-पटह-नादः स्पष्ट-विद्युत्पताकः।
हरति करसमूहं खे शशाङ्कस्य मेघो
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः॥ ५/१७

३. (क) बलाका-पाण्डुरोष्णीषं विद्युदुत्क्षिप्तचामरम्।
मत्त-वारण-मारूप्यं कर्तुकाममिवाम्बरम्॥ ५/१९

(ख) एते हि विद्युद्गुण-बद्ध-कक्षा, गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।
शक्राज्ञया वारिधराः सधारा, गां रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति॥ ५/२१

(ग) द्रष्टव्य ५/२४, ५/२७

कोप करोगी तो रति का आविर्भाव नहीं होगा। अथवा कोप के बिना काम जागृत ही कहाँ होता है ? अतएव प्रिय को कुपित कर दो तथा कुछ स्वयं कुपित हो जाओ और प्रिय को प्रसन्न कर लो।[1]

वसन्तसेना द्वारा निपुणतापूर्वक विदा किये जाने के समय वह पुनः अनाकांक्षित उपदेश देता है—'सुश्री वसन्तसेने ! जो दम्भसहित माया, कपट तथा असत्य की जन्मभूमि है, धूर्तता ही जिसकी आत्मा है, सुरत की लीला ही जिसका आश्रय (भवन) है, रमण का आमोद ही जिसका संचय है, ऐसे वेश्यारूपी बाजार के विक्रेय द्रव्य (अपने यौवन) का उदारतापूर्वक आदान-प्रदान करो और उसी (पण्य) के द्वारा मूल्य-सिद्धि होवे।'[2]

इस प्रकार वसन्तसेना का विट शास्त्रीय जाति का विट कहा जा सकता है।

शकार का विट—शकार के चेट स्थावरक के समान शकार का विट भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। अंधेरी रात में शकार के साथ वसन्तसेना का पीछा करने वालों में वह भी एक है। उसकी भी इच्छा है कि वसन्तसेना शकार की कामवासना को शान्त करने के लिये उद्यत हो जाय। वह अनुसरण करते हुए व्याघ्र से भयभीत हरिणी के समान वेगपूर्वक दौड़ने वाली वसन्तसेना के भागने को अनुचित समझता है, किन्तु बलपूर्वक उसे रोकने के लिए भी तैयार नहीं है।[3] वह वसन्तसेना की त्वरित गति के लिये अनेक उपमाएँ देता है।[4] सुकुमार सौंदर्य का वह इतना पारखी है कि दृष्टि के अंधकाराच्छन्न होते हुए भी वह समझ जाता है कि त्वरित गति से भागने के कारण वसन्तसेना के कोमल कपोल कुण्डल के संघर्षण से क्षतिग्रस्त हो गये होंगे।[5] मधुर भाषण की कला में वह कुशल है। वसन्तसेना के यह पूछने पर कि उन्हें उसका कौन सा आभूषण चाहिए, वह बड़ी निपुणता से उत्तर देता है—'ऐसा मत कहो, वसन्तसेने ! उद्यान-लता से फूलों की चोरी नहीं की जाती। इसलिये आभूषणों को रहने दो।'[6] वसन्तसेना जब

---

१. यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन विनाऽथवा कुतः कामः ।
कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ॥ ५/२४

२. साटोप-कूट-कपटानृतजन्मभूमेः शाठ्यात्मकस्य रतिकेलिकृतालयस्य ।
वेश्यापणस्य सुरतोत्सवसंग्रहस्य दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धिरस्तु ॥ ५/३६

३. त्वन्निग्रहे तु वरगात्रि ! न मे प्रयत्न । १/२२

४. (क) किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या नृत्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती ।
उद्विग्न-चञ्चल-कटाक्ष-विसृष्ट-दृष्टि-र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि ॥ १/१७

(ख) द्रष्टव्य १/२२, १/२०

५. प्रसरसि भयविक्लवा किमर्थं प्रचलितकुण्डलघृष्टगण्डपार्श्वा ।
विटजन-नखघट्टितेव वीणा जलधरगर्जितभीतसारसीव ॥ १/२४

६. शान्तम् । भवति ! वसन्तसेने ! न पुष्पमोषमर्हति उद्यानलता । तत् कृतमलङ्कारैः। पृ० ४८

शकार को अशिष्ट वाक्यों के प्रयोग के लिये डाँटती है,[1] तब विट बड़े शिष्ट ढंग से वसन्तसेना को वस्तुस्थिति समझाता हुआ कहता है—'वसन्तसेने ! तुमने वेश्यालय के जीवन के विरुद्ध वाक्यों का प्रयोग किया है । देखो, वेश्यालय के जीवन को युवकों की सहायता पर आश्रित समझो । पथ में उत्पन्न होने वाली लता के समान अपने को समझो । धन के द्वारा खरीदी जाने योग्य वस्तु के समान तुम शरीर को धारण करती हो । इसलिये रसिक और अरसिक दोनों के साथ समान व्यवहार करो ।' 'विद्वान् ब्राह्मण, तथा नीच जाति का मूर्ख दोनों एक ही तालाब में स्नान करते हैं । जो पुष्पित लता पहले मयूर द्वारा झुकायी गई है, उसे कौआ भी झुकाता है । जिस नौका से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पार उतरते हैं, उसी से शूद्र भी । तुम वापी, लता तथा नौका के तुल्य वेश्या हो, इसलिये प्रत्येक मनुष्य का समान रूप से सेवन (आदर) करो ।'[2] विट एक बुद्धिमान एवं उदार व्यक्ति है । जब वह वसन्तसेना के इस मनोभाव को जान लेता है कि गुण ही अनुराग का कारण होते हैं, बलात्कार नहीं,[3] तब वह उसे परेशान करना ही नहीं छोड़ देता है, अपितु *वह भी चाहता है कि वसन्तसेना समीपस्थ चारुदत्त के घर में भागकर प्रविष्ट* हो जाए । वह शकार की बात को इसलिये पुनः दोहराता है जिससे वसन्तसेना को संकेत मिल जाए कि सार्थवाह चारुदत्त का घर बाईं ओर है ।[4] इस से वसन्तसेना को प्रत्यक्ष रूप से चारुदत्त के घर की स्थिति का ज्ञान हो जाता है और वह मन ही मन कह उठती है—चारुदत्त का घर यदि सचमुच बाईं ओर है, तो अपराध करते हुए भी दुष्ट ने उपकार कर दिया, जिससे प्रिय-समागम तो सम्भव

---

१. शन्तं शन्तं । अवेहि, अणज्जं मन्तेसि ।
संस्कृत छाया—(सक्रोधम्) शान्तं शान्तम् । अपेहि, अनार्यं मन्त्रयसि । पृ० ४६

२. (क) वसन्तसेने ! वेशवासविरुद्धमभिहितं भवत्या । पश्य—
तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव ।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं, सममुपचर भद्रे ? सुप्रियं चाप्रियञ्च ॥
१/३१

(ख) वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा ।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज ॥ १/३२

३. गुणो क्खु अणुराअस्स कालणं ण उण बलक्कारो ।
संस्कृत छाया—गुणः खलु अनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः ।
दशम अंक, पृ० ५२

४. *काणेलीमातः ! वामतस्तस्य सार्थवाहस्य गृहम् ?* प्रथम अंक, पृ० ५३

हो गया ।[1]

शकार के यह कहने पर कि 'भाव ! ऐसा उपाय करो जिससे जन्म से नीच-भोग्या यह वेश्या हमारे और तुम्हारे हाथ से निकल न जाए,'[2] तब विट अपने मन में कहता है 'रत्न का संयोग रत्न से ही होता है। तब वैसा ही हो, इस मूर्ख से क्या लाभ।'[3] विट अप्रत्यक्ष रूप से वसन्तसेना को इस बात का भी संकेत देता है कि वह अपनी फूलों की माला फेंक दे और शब्दायमान नूपुरों को भी हटा ले, जिससे उसकी प्रगति के संकेतक चिह्न विनष्ट हो जाएँ।[4] वस्तुतः विषम परिस्थिति में विट ने अपनी समझदारी का परिचय दिया है।

रदनिका के प्रति अनजान में शकार द्वारा हुए अपमान के लिये विट मैत्रेय से क्षमा-याचना करता है। वेश्या युवती के भ्रम में सदाचार का उल्लंघन हो जाने के लिये वह दुःख प्रकट करता है और तलवार हटा कर हाथ जोड़कर विदूषक के चरणों में गिर पड़ता है।[5] इस प्रकार वह विनम्रतापूर्वक भूल का समाधान कर लेता है। विट होते हुए भी वह सामाजिक मूल्यों के प्रति निष्ठा रखता है। उसे यह ज्ञान है कि किसी कुलीन स्त्री के साथ किया गया दुर्व्यवहार अनुचित है। चारुदत्त की भावनाओं का भी उसे पूर्ण ध्यान है। इसीलिये वह विदूषक से रदनिका के अपमान की घटना को आर्य चारुदत्त से न बतलाने के लिये आग्रह करता है। वह चारुदत्त की उदारता आदि गुणों से भयभीत है। जब शकार चारुदत्त की दरिद्रता पर व्यंग्य करता है, तब वह उसे मूर्ख कहता हुआ चारुदत्त

---

१. आश्चर्यम्। वामतस्तस्य गृहमिति यत्सत्यम् अपराध्यतापि दुर्जनेन उपकृतम्। येन प्रियसङ्गम प्रापितः। प्रथम अंक, पृ० ५३

२. जधा तव मम च हत्थादो एशा ण परिब्भंशदि, तधा कलेदु भावे।
संस्कृत छाया—···यथा तव मम च हस्तात् एषा न परिभ्रश्यति, तथा करोतु भावः। प्रथम अंक, पृ० ५२

३. यदेव परिहर्तव्य तदेवोदाहरति मूर्ख.। वयं वसन्तसेना आर्यचारुदत्तमनुरक्ता। सुष्ठु खल्विदमुच्यते—'रत्नं रत्नेन सङ्गच्छते' इति। तद्गच्छतु, किमनेन मूर्खेण। प्रथम अंक, पृ० ५३

४. कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं सौदामिनीव जलदोदरसन्धिलीना। त्वा सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं गन्धश्च भीरु मुखराणि च नूपुराणि। १/३५

५. सर्वंसत्यम्। महाब्राह्मण ! मर्षय मर्षय। अन्यजनशङ्कया खल्विदमनुष्ठितम् न दर्पात्। पश्य—

सकामान्विष्यतेऽस्माभिः काचित् स्वाधीनयौवना।
सा नष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेयं शीलवञ्चना॥ १/४४

सर्वथा इदमनुनयसर्वस्वं गृह्यताम्। इति खड्गमुत्सृज्य कृताञ्जलिः पादयोः पतति। प्रथम अंक, पृ० ६६

के परोपकारशीलता आदि गुणों का उसके समक्ष वर्णन कर देता है।[1] शकार के यह कहने पर कि वसन्तसेना को ग्रहण किये बिना नहीं जाऊँगा, वह उसे उसके बलात् प्रणय के लिये कठोर सीख देकर उसे वहाँ अकेला छोड़कर चला जाता है। नारी-वशीकरण की कला बताता हुआ वह कहता है—हाथी स्तम्भ में बाँधकर वश में किया जाता है, घोड़ा लगाम के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है और स्त्री हृदय से अनुरक्त होने पर वशीभूत की जाती है।[2]

अष्टम अंक में विट के उज्ज्वल चरित्र का प्रकटीकरण हुआ है। वसन्तसेना को गाड़ी में बैठी देखकर और यह समझकर कि वह शकार के पास सम्भोगार्थ जानबूझ कर आयी है, वह दुखी होकर कहता है कि चारुदत्त जैसे हंस को छोड़कर इसे शकार जैसे कौवे के पास नहीं आना चाहिए था।[3] किंतु प्रवहण-विपर्यय की बात जानने पर वह वसन्तसेना को आश्वस्त करता है कि वह भयभीत न हो। तब से वह निरन्तर इस प्रयास में रहता है कि वसन्तसेना के प्राण संकटग्रस्त न हों। वसन्तसेना को मार डालने के शकार के अनुरोध को वह स्पष्ट ठुकरा देता है। वह धर्मभीरु है और पाप-पुण्य की भावनाओं से अनुप्राणित है। इसलिये उसने स्पष्ट कह दिया—यदि मैं उज्जयिनी की अलंकारभूता, वेश्याओं के विरुद्ध कुलीन कामिनी के सदृश व्यवहार करने वाली इस स्त्री वसन्तसेना को मारता हूँ, तो मैं परलोक रूपी नदी को किस नौका से पार करूँगा ?[4]

शकार के वसन्तसेना को स्वयं मार डालने की बात कहने पर वह मूढ

१. (क) '''तदुत्तिष्ठामि समयतः। यदीमं वृत्तान्तमार्य्यचारुदत्तस्य नाख्यास्यसि।
(ख) भीतोऽस्मि। तस्य चारुदत्तस्य गुणेभ्य। प्र० अंक, पृ० ७०
सोऽस्मद्विधाना प्रणयैः कृशीकृतो न तेन कश्चिद्विभवैर्विमानित।
निदाघकालेष्विव सोदको ह्रदो नृणा स तृष्णामपनीय शुष्कवान्॥ १/४६
(ग) मूर्ख ! आर्यचारुदत्तः खल्वसौ।
दीनाना कल्पवृक्षः स्वगुणफलनत. सज्जनाना कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षिताना सुचरितनिकष शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येक. श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥ १/४८
२. (क) एतदपि न श्रुतं त्वया ?
(ख) आलाने गृह्यते हस्ती वाजी वल्गासु गृह्यते।
हृदये गृह्यते नारी यदिदं नास्ति गम्यताम्॥ १/५०
३. शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पुलिनान्तरशायिनम्।
हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता॥ ८/१६
४. (क) बाला स्त्रियञ्च नगरस्य विभूषणञ्च वेश्यामवेश-सदृश-प्रणयोपचाराम्।
एनामनागसमहं यदि मारयामि, केनोडुपेन परलोकनदीं तरिष्ये॥ ८/२३
(ख) द्रष्टव्य, ८/२४

होकर कहता है कि क्या मेरे सामने मारोगे और यह कहकर गला पकड लेता है।[1] फिर उससे कहता है—उच्चता के लिये सद्वंश मे उत्पन्न होना ही कारण नही है, अपितु इस अकार्य में स्वभाव ही तो कारण है। बबूल आदि काँटों वाले वृक्ष अच्छे खेत मे भी भली-भाँति समृद्ध हो जाते हैं।[2] किन्तु फिर शकार की इस बात पर कि वसन्तसेना तुम्हारे सामने संकोचवश मुझे स्वीकार नही करती—विश्वास करके वह वहाँ से चला जाता है। वसन्तसेना को न डरने के लिये आश्वस्त करता है तथा शकार से कहता है कि वसन्तसेना तुम्हारे हाथ मे धरोहर है।[3] चेट को ढूंढकर वापिस आने पर मरी वसन्तसेना को देखकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है और चेतना प्राप्त करने पर शोकाकुल होकर अपने उद्गार प्रकट करता है—'हा अलंकार-विभूषणे! सुवदने, सुजनता की नदी, हास-पुलिने! उदारता रूपी जल की नदी विलुप्त हो गई। रति पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर पुनः स्वर्ग चली गई। हाय, कामदेव का बाजार लुट गया।[4] शकार से कहता है—वसन्तसेना को मारकर तुमने जो दुष्कार्य किया है, उससे तुम्हारा कौन सा प्रयोजन सिद्ध हुआ है?[5] करुणापूर्वक वसन्तसेना के प्रति निवेदन करता हुआ कहता है कि हे सुन्दरि! दूसरे जन्म मे तुम वेश्या न होना। चरित्र-गुण से युक्त वसन्तसेने! तुम किसी निर्मल कुल में जन्म लेना।[6] तदनन्तर विट शकार को पापी, पामर कहकर शर्विलक

---

१. आः ममाग्रतो व्यापादयिष्यसि ? (इति गले गृह्णाति)। अष्टम अंक, पृ० ४१६

२. किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्रकारणम्।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः॥ ८/२६

३. वसन्तसेने! न भेतव्यं न भेतव्यम्। काणेलीमातः! वसन्तसेना तव हस्ते न्यासः। अष्टम अंक, पृ० ४२२

(ख) अये! कामी संवृत्तः! हन्त। निर्वृत्तोऽस्मि। गच्छामि (इतिनिष्क्रान्तः) अष्टम अंक, पृ० ४२३

४. (क) (सविषादम्) सत्यं त्वया व्यापादिता। हा। हतोऽस्मि मन्दभाग्यः (इति मूर्च्छितः पतति)। अष्टम अंक, पृ० ४३४

(ख) (समाश्वस्य सकरुणम्) हा वसन्तसेने!
दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रतिः
हा हालङ्कृतभूषणे! सुवदने! क्रीडारसोद्भासिनी।
हा सौजन्यनदि! प्रहासपुलिने! हा मादृशामाश्रये
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः॥ ८/३८

५. (सास्रम्) कष्टं भोः। कष्टम्—
किं नु नाम भवेत् कार्यमिदं येन त्वया कृतम्।
अपापा पापकल्पेन नगरश्रीर्निपातिता॥ ८/३९

६. (सकरुणम्) वसन्तसेने—
अन्यस्यामपि जातौ मा वेश्या भूस्त्वं हि सुन्दरि।
चारित्र्यगुणसम्पन्ने! जायेथा विमले कुले॥ ८/४३

चन्दनक इत्यादि की पंक्ति में शामिल हो जाता है।

इस प्रकार शकार का विट सज्जन, धर्मभीरु, साहसी, निर्भीक एवं शिष्ट दिखलाई पड़ता है। वह तत्कालीन शासन के अत्याचारों के प्रति सावधान एवं जागरूक है। वस्तुत: वह सामान्य शृंगारी विटों से भिन्न व्यक्तित्व रखने वाला होने के कारण सामाजिक दर्शकों की प्रशंसा का पात्र बन गया है।

शूद्रक ने अपने प्रकरण में सत्ताईस पात्रों का सन्निवेश किया है। इनमें समाज के लगभग प्रत्येक स्तर तथा प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। यथा राजा, राजश्याल, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, कुलवधू, वेश्या, न्यायाधीश, न्याय-कर्मचारी, सेनापति, नगर-रक्षक, बौद्ध श्रमण, चोर, जुआरी, चेट, चेटी, विट, तथा चाण्डाल आदि। यह एक ऐसी दुनियां है जिसमें मानव-संस्कृति के लगभग सम्पूर्ण स्वरूपों की प्रदर्शनी लगी हुई है। मृच्छकटिक के समस्त पात्र अपनी वर्ग-गत विशेषताओं से युक्त होते हुए भी ऐसे रूप में चित्रित हुए हैं, जिसमें उनकी व्यक्ति-गत विशेषतायें भी उभर कर सामने आ जाती हैं। डा० राइडर ने मृच्छकटिक के पात्रों को सार्वदेशिक कहा है—

Shudraka alone in the long line of Indian dramatists has a cosmopolitan character[1].

---

1. 'The Little Clay Cart, 'Introduction, Page xvi

मृच्छकटिक की भाषा-शैली तथा संवाद

रूपकों में संस्कृत और प्राकृत के भेद से विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से मृच्छकटिक एक महत्वपूर्ण प्रकरण है। जितनी भाषाओं का प्रयोग इसमें किया गया है उतनी भाषाओं का प्रयोग अन्य रूपकों में उपलब्ध नहीं होता है।

जिस प्रकार 'मृच्छकटिक' नामकरण इसको नाट्य-परम्परा के शिष्ट-सामन्तीय वातावरण से पृथक् कर जन साधारण के वातावरण में ले आता है उसी प्रकार भाषा-वैशिष्ट्य भी उसे नाट्यपरम्परा से पृथक कर देता है। इसके सत्ताईस पात्रों में से केवल पाँच-छः पात्र संस्कृत-भाषा-भाषी हैं और शेष प्राकृत-भाषी हैं। आर्यक, अधिकरणिक, शर्विलक, दर्दुरक, दोनों विट (शकार का विट और वसन्त सेना का विट) और बन्धुल ने समस्त प्रकरण में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है। संस्कृत भाषा के संवाद दीर्घकाय नहीं हैं। साहित्यिक संस्कृत के स्थान पर बोलचाल की भाषा का प्रयोग सुन्दर ही नहीं है अपितु सरल भी है। सामान्य संस्कृतवेत्ताओं के लिए भी यह बोधगम्य है। सूक्तियों के यत्र-तत्र प्रयोग के कारण भाषा सजीव और अलंकृत हो गई है। भाषा के समास-प्रधान न होने से इसमें स्वाभाविक सरलता है। प्रसाद और माधुर्य गुण का सर्वत्र साम्राज्य है। पात्रों के अनुकूल तथा परिस्थितियों के अनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है। कुछ पात्र प्राकृत बोलते-बोलते संस्कृत बोलने लगते हैं। वसन्तसेना ने चतुर्थ अंक में विदूषक से सम्भाषण करते हुए गद्य और पद्य में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है और इस प्रकार विदूषक के हृदय में अपनी विद्वत्ता की छाप लगाई है। अन्यत्र वसन्तसेना ने शौरसेनी प्राकृतभाषा का ही प्रयोग किया है। सूत्रधार और चारुदत्त ने भी परिस्थितिवश प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है। सूत्रधार ने पद्य में संस्कृत का और गद्य में अधिकतर प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है, यह बात प्रस्तावना से ज्ञात होती है। सूत्रधार ने स्वयं कहा भी है कि मैं कार्यवश प्राकृतभाषी हो गया हूँ।[1] चारुदत्त ने भी अधिकतर संस्कृत का प्रयोग किया है किन्तु परिस्थितिवश प्राकृत का भी प्रयोग किया है। अन्य पात्रों ने किसी एक निश्चित भाषा संस्कृत अथवा प्राकृत में ही कथोपकथन किये हैं। प्राकृत गद्य के लिये ही नहीं, अपितु पद्य के लिए भी प्रयुक्त हुई है। लगभग सौ पद्य विभिन्न छन्दों में प्राकृत में रचे गये हैं।

मृच्छकटिक में प्राकृत-भाषा के अन्तर्गत शौरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या और मागधी का प्रयोग किया गया है। अपभ्रंश-भाषाओं के अन्तर्गत इसमें शकारी चाण्डाली और ढक्की का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार मृच्छकटिक में संस्कृत के अतिरिक्त चार प्राकृत और तीन अपभ्रंश कुल सात भाषाओं का प्रयोग किया

---

१. एषोऽस्मि भो. कार्यवशात्प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्तः।

मृच्छकटिक, प्रथम अंक, प्रस्तावना, पृ० १० (चौखम्बा संस्करण)

गया है। मृच्छकटिक के संस्कृत टीकाकार पृथ्वीधर के अनुसार इसमे प्रयुक्त प्राकृतभाषाओ का विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

शौरसेनी बोलने वाले पात्र—ग्यारह पात्र शौरसेनी प्राकृत बोलते हैं। यथा सूत्रधार, नटी, रदनिका, मदनिका, वसन्तसेना, उसकी माता (वृद्धा), चेटी, धूता, कर्णपूरक, शोधनक और श्रेष्ठी। प्रथम अंक मे सूत्रधार ने संस्कृत के 'प्रविशामि' के स्थान पर शौरसेनी मे 'पविसामी' का प्रयोग किया है। नटी के कथन मे 'मर्षयतु मर्षयत्वार्यः' संस्कृत के स्थान पर 'मरिसेदु मरिसेदु अज्जो' का प्रयोग है। इसी प्रकार अन्यत्र भी ऐसे प्रयोग हैं। इस भाषा मे श, ष, स, इन तीनो के स्थान पर 'स' ही होता है।

अवन्तिका बोलने वाले पात्र—इसके बोलने वाले दो ही पात्र हैं—वीरक और चन्दनक। यह भाषा लोकोक्तिबहुला है। यह बात षष्ठ अंक मे वीरक और चन्दनक के सम्भाषण से स्पष्ट होती है।[1] इस भाषा मे भी शौरसेनी की भाँति श, ष, स, तीनो के स्थान पर केवल स का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त 'र' के स्थान पर ल का प्रयोग भी देखने को मिलता है। यथा षष्ठ अंक मे 'भारूढो' और 'आरूढा' दोनों प्रयोग मिलते हैं।

प्राच्या बोलने वाले पात्र—विदूषक इस भाषा को बोलता है। यह स्वार्थिक ककार-बहुला भाषा है। किन्तु मृच्छकटिक मे विदूषक की भाषा मे ककार का बाहुल्य नही दिखाई देता। प्रथम अंक मे 'एसा ससुवण्णा सहिलण्णा णवणाङ्- मसंशणुट्ठिदा सुत्तधालिव्व'[2] इत्यादि मे क' के दर्शन नही होते हैं।

मागधी भाषा बोलने वाले पात्र—मागधी भाषा को बोलने वाले पाँच पात्र हैं—संवाहक (भिक्षु), तीनो चेट (शकार का चेट स्थावरक, वसन्तसेना का कुम्भीलक और चारुदत्त का वर्धमानक), तथा चारुदत्त का पुत्र रोहसेन। इस भाषा मे श, ष, स के स्थान पर तालव्य शकार का प्रयोग होता है। प्रथम अंक मे चेट की उक्ति —'एशे भट्टालके [1] गेण्डुणं भट्टके धशिमृ, मे 'एष' के स्थान पर 'एशे', असिमृ' के स्थान पर 'धशिमृ'[3] का प्रयोग किया गया है। अष्टम अंक में 'जूतिदोषः' के

---

१. (क) पत्तो अ राअकज्जे पिदरं पि अह ण जाणामि।

मृच्छकटिक, षष्ठ अंक, पृ० ३४१

(ख) जाणन्तो वि हु जादिं तुज्झ अण्ण भणामि सील-विहवेण।
चिट्ठउ मह च्चिअ मणे किं हि कइत्थेण भग्गेण ॥ वही, ६/२१, पृ० ३५०

(ग) ता गुरुगुरे ! अहिप्पराणमज्झे जइ दे चउरङ्गं ण कप्पावेमि, तदो ण होमि वीरओ। वही, षष्ठ अंक, पृ० ३५३

(घ) किं तुए सुणअ सरिसेण। वही, पृ० ३५३ (षष्ठ अंक)

२. वही, प्रथम अंक पृ० ८५

३. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, पृ० ८०

स्थान पर 'घूसीवोशे' का प्रयोग है।[1] 'प्रसार्य' के स्थान पर 'पशालिम' का प्रयोग है। द्वितीय अंक मे संवाहक की उक्ति—'अज्जा ! विक्किणिध मं इमश्श शहिअश्श हत्थादो दशेहि शुवण्णकेहि'[2]—मे 'श' का प्रयोग कई बार किया गया है। इसके अतिरिक्त मागधी मे र के स्थान पर ल का प्रयोग होता है। जैसे संस्कृत के प्रसार-यिष्यामि' का मागधी मे 'पशालइश्शम्' हो जाता है।[3]

शकारी अपभ्रंश-भाषाभाषी पात्र—इस भाषा का प्रयोग शकार ने किया है। इसमे तालव्य शकार अधिक प्रयुक्त होता है तथा र के स्थान पर ल का भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। जैसे संस्कृत के 'प्रकाशयिष्यति' का शकारी मे 'पआश-इश्शदि'[4] 'आर्यपुरुष' का 'अज्जपुलिशे'[5] और 'सार्थवाहः' का 'शत्थवाह'[6] हो जाता है। प्रथम अंक मे शकार की उक्तियो—मावे ! मावे ! मणुश्शे ! मणुश्शे'[7] तथा 'मए अहिशालिअन्ती तुमं को पलित्ताइश्शदि'[8] मे मूर्धन्य नकार और दन्त्य सकार के स्थान पर तालव्य शकार और र के स्थान पर ल का प्रयोग स्पष्ट देखा जा सकता है।

चाण्डाली भाषा-भाषी पात्र—दशम अंक मे दोनो चाण्डाल इस भाषा का प्रयोग करते हैं। इसमे भी श, ष, स के स्थान पर तालव्य शकार तथा र के स्थान पर ल का प्रयोग होता है। दशम अंक मे चाण्डालो की उक्ति—'चावलअ ! अधि शच्चं मलाशि'[9]—मे स के स्थान पर श का प्रयोग तथा ('चावलअ' में) र के स्थान पर ल का प्रयोग स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी प्रकार चाण्डालों की उक्ति के संस्कृत के 'शोभनं' 'एष' तथा 'सागरदत्तस्य' के स्थान पर क्रमशः 'शोहणं'[10] 'एशे'[11] और 'शाअलदत्तश्श'[12] हो जाता है।

ढक्की भाषा-भाषी पात्र—द्यूतकर और सभिक माथुर दो व्यक्ति इस भाषा का प्रयोग करते हैं। पृथ्वीधर का कथन है कि इस भाषा मे यकार का अधिक प्रयोग होता है और जब यह संस्कृतप्राय होती है तो इसमे सकार और शकार दोनो

१. वही, अष्टम अंक, पृ० ४४५
२. वही, द्वितीय अंक, पृ० ११२
३. वही, अष्टम अंक, पृ० ४४५
४. वही, अष्टम अंक, पृ० ४४४
५. वही, अष्टम अंक, पृ० ४४२
६. वही, अष्टम अंक, पृ० ४४२
७. वही, प्रथम अंक, पृ० ४४
८. वही, प्रथम अंक, पृ० ४५
९. वही, दशम अंक, पृ० ५४५
१०. वही, दशम अंक, पृ० ५५१
११. वही, दशम अंक, पृ० ५५०
१२. वही, दशम अंक, पृ० ५२८

का प्रयोग होता है, वैसे नही।[1] मृच्छकटिक प्रकरण मे ढक्की भाषा वकारप्राय होने के स्थान पर उकारप्राय दिखाई देती है। तात्पर्य यह है कि शब्दो के अन्त मे प्राय 'उ' का प्रयोग दिखाई देता है। जैसे द्वितीय अंक मे नेपथ्य के कथन—'अले भट्टा दशसुवण्णस्स लुद्धु जूदअरु पपलीणु पपलीणु'[2]—मे माथुर की उक्तियों—"विप्पदीवु पादु! पडिमाशुण्णु देउलु।[3] 'अले! णट्ठु णट्ठु'[4] 'को दोसु'[5] 'धुत्तु! माथुरु अहं णिउणु'[6] 'भट्टा! तुए दशसुवण्णु कल्लवत्तु, मए एसु विहुलु'[7] मे शब्दो के अन्त मे उकार की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इन सब उदाहरणो मे वकार की अधिकता दृष्टिगोचर नही होती। इस सम्बन्ध मे श्री कान्तानाथ शास्त्री तैलंग का कथन है कि या तो पृथ्वीधर ने अशुद्धि की है अथवा टीका छापने वालो ने 'उ' को 'व' पढ़ लिया है। इसके अतिरिक्त उनका यह भी कहना है कि 'संस्कृतप्रायत्वे' के स्थान पर 'संस्कृतप्रायत्वेन' होना चाहिये। ढक्की भाषा मे स और श दोनों वर्णों का प्रयोग होता है यथा 'दशसुवर्ण' के स्थान पर ढक्की मे 'दशसुवण्णु' हो जाता है।

ढक्की के सम्बन्ध मे प्रो० कीथ का कथन है कि ढक्की के स्थान पर टक्की होना चाहिये। पिशेल इसको पूर्वी बोली तथा ग्रियर्सन पश्चिमी बोली मानते हैं। नाट्यशास्त्र मे ढक्की नामक भाषा की चर्चा नही है। समुचित परिशीलन के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यह एक विभाषा है तथा पश्चिमी बोली है।

अपभ्रंश भाषाएँ शकारी और चाण्डाली मागधी प्राकृत की ही विभाषाएँ प्रतीत होती है, अन्तर केवल इतना है कि इनमे र को ल हो जाता है। अवंतिका और प्राच्या शौरसेनी की विभाषाएँ प्रतीत होती हैं। इसलिए प्रो० कीथ ने पृथ्वीधर की उपर्युक्त सात प्राकृतो को केवल दो मुख्य भेदो शौरसेनी और मागधी मे समाविष्ट किया है।

मृच्छकटिक में कुछ ऐसे पात्र भी हैं, जिनकी चर्चा तो मिलती है किन्तु रंगमंच पर उनके दर्शन नही होते, अत कथोपकथन के अभाव मे यह नही कहा जा सकता कि वे किस भाषा को बोलते होंगे। इस प्रकार के मौन पात्रों मे ये पात्र हैं—अवन्ती का राजा पालक, उज्जयिनी का एक व्यापारी रेभिल जो चारुदत्त का मित्र है तथा विशिष्ट गायक है, चारुदत्त का मित्र जूर्णवृद्ध, आर्यक की राज्य-

१. वकारप्राया ढक्कविभाषा। संस्कृतप्रायत्वे दन्त्यतालव्यसशकारद्वययुक्ता च।
मृच्छकटिक-समीक्षा, पृ० ५८ से उद्धृत

२. मृच्छकटिक, द्वितीय अंक, पृ० १०१

३. वही, द्वितीय अंक, पृ० १०५

४. वही, द्वितीय अंक, पृ० १०६

५. वही, द्वि० अंक, पृ० ११०

६. वही, द्वि० अंक, पृ० १११

७. वही, द्वितीय अंक, पृ० १२०

प्राप्ति का भविष्यवक्ता सिद्ध, राजपुरुष और नागरिक आदि।

शूद्रक की काव्यशैली अत्यन्त सरल तथा स्वाभाविक है। इसकी शब्दावली विविध, विशद तथा विशाल है। इसमे संस्कृत के प्राचीन तथा अप्रचलित शब्दों का प्रयोग तो नही है किन्तु प्राकृत भाषा में अप्रचलित शब्दो का प्रयोग हुआ है यथा मल्लक, वरटा, लुप्तदडक, वलंडलम्बुक, तलित, सैरिफ, महल्लक, रूपिन्, कपर्दकडाकिनी, कोष्टक इत्यादि। वसन्तसेना का प्रासाद-वर्णन तो अवश्य ओज-गुणपूर्ण होने से दीर्घकाय समासों वाला है, अन्यत्र लम्बे समासों का प्रयोग प्राय. नही किया गया है। पद्यो मे भी समस्त पदों का प्रयोग अत्यल्प है और जहाँ कही समस्त-पद प्रयुक्त हैं, वे अत्यन्त सरल हैं। शूद्रक ने प्रवाहपूर्ण सुन्दर-सरस तथा संगीतमय वाक्यों और पद्यों मे साधारण तथा लोकप्रिय लोकोक्तियो एवं सूक्तियों का जो निबन्धन किया है, वह उनकी अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है।

मृच्छकटिक मे 'च', 'हि', 'तु' तथा 'वै' जैसे अव्यय प्राय. प्रयुक्त हुए है। जटिल पद-संघटना, कठिन श्लेष अलकार के प्रयोग इसमे प्रायः नही मिलते है। शूद्रक ने पाणिनीय भाषा का माध्यम अंगीकार करके भी यथेष्ट स्वतन्त्रता का प्रयोग किया है। इसमे 'प्रणष्टा' के स्थान पर 'प्रनष्टा'[1] 'देव' के स्थान पर 'देवता' शब्द का प्रयोग (कहीं पुलिगवत् और कही स्त्रीलिगवत्)[2] 'मारयामि', 'मारयामो' का (जान से मारने के सामान्य अर्थ मे) प्रयोग,[3] 'कुट्टयति', 'कुट्टयिष्यामि' का (सिर कूट दूंगा के अर्थ मे) प्रयोग,[4] तलितं मांस' का प्रयोग,[5] आभूषणों के झनझनाने के लिए 'झाणज्झणन्त' का प्रयोग,[6] आलसी के अर्थ मे 'अलस' का प्रयोग,[7] घुरघुर शब्द करने के लिए 'घुरघुरायमाणम्' का प्रयोग,[8] हवा लगने के लिए 'लगति शीतवात.' का प्रयोग,[9] तेल और घी में बघारा हुआ के लिए 'व्याघारित' का प्रयोग,[10] हारा हुआ के अर्थ मे 'हारितम्'[11] का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त

---

१. मृच्छकटिक, (चौखम्बा संस्करण), प्रथम अंक, पृ० ५४

२. वही, प्रथम अंक, पृ० ३२-३३, द्वितीय अंक, पृ० ६५

३. वही, प्रथम अंक, पृ० ४५, ४७ (१/३० श्लोक)

४. दण्डकाष्ठेन दुष्टस्येव शुष्कवेणुकस्य मस्तकं ते प्रहारै कुट्टयिष्यामि।
वही, प्रथम अंक, पृ० ६७

५. वही, १/५१

६ झाणज्झणन्तु बहुभूषणमिश्रं……। १/२५ पृ० ४१

७. वही, १/४६

८. मृच्छकटिक (चौखम्बा संस्करण) पृ० ३६२-वृद्धशूकर इव घुरघुरायमाणं सदयते।

९. वही, ५/१० (पृ० २६६)

१०. वही, ८/१४, पृ० ३६०

११. (क) तदो भाग्गेअविसमदशए दशसुवण्णं जूदे हालिद।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

सभी प्रयोग इस तथ्य की विज्ञप्ति करते हैं कि कालिदास तथा भवभूति की वाग्-धारा से पृथक् देववाणी की एक ऐसी धारा भी प्रवाहित हो गई थी जिसमे शास्त्रीय नियमों की कठोरता को शिथिल कर दिया गया था तथा जिसमे जनसाधारण के भाव स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्ति पाते रहे थे। शूद्रक संस्कृत-प्रेमियो की उस लोकनिष्ठ परम्परा के मुकुटमणि कहे जा सकते हैं।

मृच्छकटिक मे कालिदास की भाषा-शैली का सा लालित्यसौष्ठव भले ही न हो किन्तु इसकी भाषा-शैली सरल, प्रभावपूर्ण तथा लक्ष्यभेदिनी है और इसमे संस्कृत भाषा के साथ विविध लौकिक भाषा-रूप भी देखने को मिलते है। मृच्छकटिक मे संस्कृत तथा प्राकृत की गद्य-पद्य की अनेकविध सूक्तियाँ इस बात की द्योतक हैं कि मृच्छकटिककार का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उदाहरणार्थ कुछ सूक्तियाँ दर्शनीय हैं—

१- सुख हि दुःखान्यनुभूय शोभते ।[1]
२- अहो निर्धनता सर्वापदास्पदम् ।[2]
३- साहसे श्रीः प्रतिवसति ।[3]
४. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ।[4]
५. सर्वत्रार्जवं शोभते ।[5]

कही कही तो सम्पूर्ण श्लोक ही सूक्ति के रूप मे है। कवि का शब्द-भण्डार अगाध है। कही कही व्याकरण की दृष्टि से भाषा मे दोष हैं, किन्तु वे नगण्य हैं, कही कुछ सामाजिक प्रयोग असंगत एवं भद्दे लगते हैं और कही हि, तु, खलु च आदि अनिरिक्त अव्यय शब्दों का प्रयोग भाषा-शैथिल्य व्यक्त करता है तथापि संस्कृत और प्राकृत के अन्तर्गत अनेक भाषाओ के प्रयोग मे मृच्छकटिककार को आशातीत सफलता मिलती है। भाषा की विविधता के कारण मृच्छकटिक आन्तरिक रूप के साथ बाह्य रूप मे भी प्रशंसनीय प्रकरण है। नाट्यशास्त्र मे

(पिछले पृष्ठ का शेष)

वही, द्वितीय अंक, पृ० १३१

संस्कृत छाया—ततो भागधेयविषमतया दशसुवर्णं द्यूते हारितम्। वही, पृ० १३२

(ख) मए तं सुवण्णभण्डअं विस्सम्भादो अत्तणकेरकेत्ति कदुअ जूदे हारिदं।

वही, पृ० २५१

संस्कृत छाया—मया तद् सुवर्णभाण्डं विस्रम्भादात्मीयमिति कृत्वा द्यूते हारितम्।

वही, चतुर्थ अंक, पृ० २५१

१. वही, १/१०
२. वही, १/१४
३. वही, चौथा अंक
४. वही, ६/२६
५. वही, दशम अंक

विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग के लिए जो विधान किया गया है,[1] उसको चरितार्थ करने के लिए ही शूद्रक ने विविध प्राकृत-प्रयोगों की योजना कार्यान्वित की है।

मृच्छकटिक में छन्द तथा अलंकार-योजना—मृच्छकटिक में संस्कृत और प्राकृत दोनों का प्रयोग किया गया है। छन्दों की विविधता संस्कृत तथा प्राकृत दोनों प्रकार के पद्यों में दृष्टिगोचर होती है। इन छन्दों को देखने से ऐसा आभास होता है कि शूद्रक को लघु तथा सरल छन्द ही अभिप्रेत है। स्वभावतः विशेष प्रिय छन्द अनुष्टुप् है, क्योंकि इसका प्रयोग ८३ बार सबसे अधिक संख्या में हुआ है। यह छन्द कथोपकथन की प्रगति को आगे बढ़ाने में अनुकूल पड़ता है। दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका है, जिसका प्रयोग ३६ बार हुआ है। शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग ३२ बार किया गया है। अन्य महत्त्वपूर्ण छन्दों में इन्द्रवज्रा का प्रयोग छत्तीस बार, वंशस्थ का ६ बार और उपजाति का प्रयोग ५ बार हुआ है। इसके अतिरिक्त पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालिनी, विद्युन्माला, शिखरिणी, स्रग्धरा, वैश्वदेवी तथा हरिणी और एक विषमवृत्त का प्रयोग भी हुआ है। आर्या के इक्कीस उदाहरण है। इसमेंएक गीति भी समाविष्ट है जिसके प्रथमार्ध और परार्ध में तीस मात्राएँ है। दो उदाहरण औपच्छादिक के है। प्राकृत भाषाओं के वैविध्य के कारण प्राकृत के छन्दों में अधिक वैविध्य मिलता है। जैसे आर्या शैली के ५३ तथा अन्य प्रकार के ४४ पद्य उपलब्ध होते है।[2]

मृच्छकटिककार ने अलकारो को यत्नपूर्वक कही नही लादा है, सहज रूप से ही अनेक अलकार आ गये है। स्वाभाविकता के कारण ही ये अलंकार अर्थ-व्यंजना में सहायक सिद्ध हुए है और उनके कारण काव्य-सौंदर्य में वृद्धि हुई है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा, काव्यलिंग, विशेषोक्ति और समासोक्ति आदि अर्थालंकार विशेष रूप से यथास्थान प्रयुक्त हुए है। शब्दालंकारो का प्रयोग भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है। उड़ते हुए मेघ के सम्बन्ध में प्रस्तुत कल्पना बड़ी मनोरम है—

जल से सिक्त महिष के पेट के समान एवं भ्रमर के समान कृष्ण-वर्ण (नीला), बिजली की प्रभा से निर्मित पीताम्बर तुल्य उत्तरीय धारण करने वाला, बक-पंक्ति रूपी शङ्ख को धारण करने वाला वामन रूपी दूसरे विष्णु के समान आकाश को व्याप्त करने को उद्यत मेघ शोभायमान है।[3]

---

१. नाट्यशास्त्र (चौखम्बा), १८/३५-४८

२. ए० बी० कीथ, अनुवादक डा० उदयभानुसिंह—संस्कृत नाटक, पृ० १४१

३. (क) मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो,
विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः।
आभाति संहतबलाकगृहीतशङ्खः,
खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः॥ मृच्छकटिक, ५/२

(ख) द्रष्टव्य ५/३, १६, १७, १८, २६, १/५७ इत्यादि

प्रस्तुत पद्य मे रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारो की एवं वसन्ततिलका छन्द की छटा दर्शनीय है।

बादलों मे बिजली चमकने तथा उनसे पानी की धाराओ के पृथ्वी पर गिरने का दृश्य कितना रमणीक है—

बिजली रूपी रस्सी से बद्ध कटि वाले, एक दूसरे को धक्का देते हुए हाथियो के समान ये जलधारायुक्त बादल मानो इन्द्र की आज्ञा से पृथ्वी को (जलधारा-रूपी) चांदी की रस्सियो के द्वारा ऊपर उठा रहे हैं।[1]

कवि-कल्पना कितनी अद्भुत है। काले उमडते बादल काले मदमत्त हाथी हैं। बिजली की चमकती लकीरें ऐसी शोभित हैं जैसे चमकीली रस्सियो से बादलों की कमर कसी हुई हो। हाथियो के पार्श्व भाग मे सोने की जंजीरें हैं, इनसे बिजली की चमचमाती लकीरों का आभास होता है। जल की गिरती स्वच्छ धारायें रजत की रस्सियां है। निरन्तर तेजी से भूमि पर गिरती हुई जलधारायें ऐसी प्रतीत हो रही है मानो चमकीली रस्सियां नीचे आकर पुन. पृथ्वी को ऊपर खीच रही हैं। जल-धरायें कब आकाश से पृथक् होती हैं और कब पृथ्वी का स्पर्श करती हैं, दर्शकों को इसका आभास नही होता। धारासार वर्षा का वस्तुत स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत श्लोक मे उपमा और उत्प्रेक्षा अलकारो की एवं उपजाति छन्द की छटा दर्शनीय है।

मेघ से आच्छादित आकाश को धृतराष्ट्र के मुख के समान बताया गया है।[2]

बादलो से जिसमे अंधेरा हो गया है, ऐसा यह आकाश उस प्रसिद्ध धृतराष्ट्र के मुख के समान है, क्योंकि धृतराष्ट्र का मुख भी आंखे न होने से अन्धकारपूर्ण था और आकाश की भी सूर्य-चन्द्र रूपी दोनो आँखें बादलों से नष्ट हो गई थी। प्रसन्न एवं अति गर्वित बल (मयूर पक्ष मे शक्ति, दुर्योधन पक्ष मे सेना) वाले दुर्योधन के समान मयूर गरज रहा है। जुए मे हारे हुए युधिष्ठिर के समान कोयल मौन (युधिष्ठिर के पक्ष मे वनमार्ग) को प्राप्त हो गई है। इस समय हंसगन पाण्डवों के समान वन से अज्ञातवास को (अर्थात् मानसरोवर को) चले गये हैं।

प्रस्तुत श्लोक मे धृतराष्ट्र के मुख के समान मेघाच्छादित आकाश, अतिगर्वित

१. एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।
शक्राज्ञया वारिधरा सधाराः गा रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति ॥
—मृच्छकटिक ५।२१

२. एतद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं मेघान्धकारं नभो
दृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गता.॥ वही ५।६

बलयुक्त दुर्योधन के समान मयूर, जुए में हारे हुए युधिष्ठिर के समान कोयल, पाण्डवों के समान हंस में उपमानोपमेय भाव के कारण उपमालंकार तथा शार्दूल विक्रीडित छन्द की छटा अत्यन्त रमणीय है।

इस प्रकार स्थल-स्थल पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, दीपक आदि अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[1]

मृच्छकटिक के संवाद (कथोपकथन)

रूपकों की कथा का विकास संवाद तथा अभिनय-व्यापार के द्वारा हुआ करता है। संवाद के द्वारा ही पात्रों के चरित्र का परिचय प्राप्त होता है। अतः रूपक में कथोपकथन या संवाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। रंगमंच की दृष्टि से नाट्यवस्तु के तीन भेद हैं— (१) सर्वश्राव्य (२) अश्राव्य (३) नियत श्राव्य।

सर्वश्राव्य—जो वस्तु रंगमंच पर स्थित पात्रों तथा रङ्गशाला में स्थित सामाजिकों—सभी को सुनाने के योग्य होती है, उसे 'सर्वश्राव्य' अथवा 'प्रकाश' कहते हैं।[2]

अश्राव्य—जो बात किसी को भी सुनाने योग्य नहीं होती, उसे 'अश्राव्य' अथवा 'आत्मगत' या 'स्वगत' कहा जाता है।[3]

नियतश्राव्य—इसके दो भेद होते हैं— (१) जनान्तिक और (२) अपवारित।

जनान्तिक—जहाँ दूसरे पात्रों के होते हुए भी दो पात्र परस्पर इस प्रकार मंत्रणा करें कि उसे दूसरे पात्रों को सुनाना अभीष्ट न हो तथा दूसरे पात्रों की ओर त्रिपताक हस्तमुद्रा[4] द्वारा संकेत किया जाये कि उसका वारण किया जा रहा है, तो उसे 'जनान्तिक' कहते हैं[5]।

अपवारित—जहाँ मुँह दूसरी ओर करके कोई पात्र दूसरे पात्र का रहस्य प्रकट करता है, उसे 'अपवारित' कहते हैं।[6]

इनके अतिरिक्त एक अन्य भेद भी होता है जिसे 'आकाश-भाषित' कहा जाता है।

---

१. अर्थान्तरन्यास—मृच्छकटिक ४।२
   दीपकालंकार—वही ५।२६
२. सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्—सा० द०, ६-१३७
३. अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ॥ वही, ६।१३८
४. जब हाथ की सब अंगुलियाँ सीधी ऊपर की ओर खड़ी हों और अनामिका अंगुलि टेढ़ी कर ली जाए, तो यह हस्तमुद्रा त्रिपताक कहलाती है।
५. त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
   अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् तज्जनान्ते जनान्तिकम् ॥ वही ६।१३९
६. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्। —दशरूपक १।६६

जहाँ कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ दूसरे पात्र के बिना ही बातचीत करता है तथा अन्य पात्र के कथन के बिना भी बात को सुनने का अभिनय करके वार्तालाप करता है, उसे 'आकाश-भाषित' कहते हैं। इसके लिये ही 'आकाशे' भी प्रयुक्त होता है।[1]

संक्षेप में ये पाँच प्रकार के संवाद होते हैं। साहित्यदर्पणकार ने इनका उल्लेख 'नाट्योक्ति'[2] नाम से किया है। मृच्छकटिक प्रकरण में उपर्युक्त सभी प्रकार के संवादों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है।

मृच्छकटिक के संवाद सुरुचिपूर्ण तथा उत्तमकोटि के हैं। सम्पूर्ण प्रकरण के संवादों में उत्फुल्लता एवं ताजगी दृष्टिगोचर होती है। सर्वत्र प्रत्युत्पन्न संवादों की झड़ी वर्तमान है। विशेषतः वसन्तसेना, मदनिका, विट, मैत्रेय और संस्थानक के संवाद अत्यन्त सजीव एवं फड़कते हुए हैं। कुछ स्थानों को छोड़ कर संवाद संक्षिप्त हैं। इन संवादों में लोकभाषा का माधुर्य है, स्वाभाविकता है तथा सूक्तिपूर्ण होने के कारण ये अत्यन्त प्रभावशाली हैं। ये संवाद पात्रों की स्थिति के सर्वथा अनुकूल हैं, इनसे पात्रों की मानसिक स्थिति तथा चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट हुई हैं। ये संवाद प्रायः विषयसंगत एवं व्यावहारिक हैं। इन संवादों के द्वारा व्यक्त शिष्ट हास्य के कारण ही मृच्छकटिक अत्यंत सजीव, सरस तथा औत्सुक्यपूर्ण बन सका है। इस प्रकरण में ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ संवाद नीरस एवं अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं। शकार और विट के कथोपकथन का एक नमूना उद्धृत है। यथा—

शकारः[3]—मम पिअं कलेहि।

विटः—बाढं करोमि, वर्जयित्वा त्वकार्यम्।

शकारः—भावे अकज्जाह गन्धे वि णत्थि, लक्खशी कावि णत्थि

विटः—उच्यतां तर्हि।

शकारः—मालेहि वशन्तशेणिअं।

विटः—(कर्णौ पिधाय)

> बालां स्त्रियञ्च नगरस्य विभूषणञ्च
> वेश्यामवेश-सदृश-प्रणयोपचाराम्।
> एनामनागसमहं यदि मारयामि
> केनोडुपेन परलोकनदीं तरिष्ये॥८।२३

---

१. किं ब्रवीषि यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम्। सा० द० ६।१४०

२. वही, षष्ठ परिच्छेद, पृ० ४३७

३ संस्कृतछाया—

क) शकारः—मम प्रियं कुरु।

ख) भाव ! अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति, राक्षसी कापि नास्ति।

ग) मारय वसन्तसेनाम्। (शेष अगले पृष्ठ पर)

शकारः—अह ते मेडकं दइस्सं । अण्णं च विवित्ते उज्जाणे इध मालन्तं को तुम पेक्खिस्सदि ।

विटः—पश्यन्ति मां दश दिशो वनदेवताश्च,
चन्द्रश्च दीप्तिकिरणश्च दिवाकरोऽयम् ।
धर्मानिलौ च गगनञ्च तथान्तरात्मा
भूमिस्तथा सुकृति-दुष्कृति-साक्षिभूताः ॥८।२४

शकारः—तेण हि पडन्तोवालिदं कदुअ मालेहि ।

विटः—मूर्ख ! अपध्वस्तोऽसि ।

शकारः—अधम्मभीलू एशे वुड्ढकोले । भोदु, थावलअं चेड' अणुणेमि । पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! शोवण्णकडआइं दइस्सं ।

चेटः—अहं पि पलिहिस्सं ।

शकारः—शोवण्ण दे पीढके कलाइस्सं ।

चेटः—अहं उवविशिस्सं ।

शकारः—शव्वं दे उच्छिट्ठं दइस्सं ।

चेटः—अहं पि खाइस्सं ।

शकारः—शव्वचेडाणं महत्तलकं कलइस्सं ।

चेटः—भट्टके हुविस्सं ।

शकारः—ता मण्णेहि मम वअणं ।

चेटः—भट्टके ! शव्वं कलेमि, वज्जिअ अकज्जं ।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

श) अहं ते उर्णा दास्यामि । अन्यच्च विविक्ते उद्याने इह मारयन्तं कस्त्वा प्रेक्षिष्यते ।

श) तेन हि पटान्तापवारितं कृत्वा मारय ।

श) अधर्मभीरुरेष वृद्धकोल । भवतु स्थावरक चेटमनुनयामि । पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! सुवर्णकटकानि दास्यामि ।

चेटः—अहमपि परिधास्यामि ।

शकार—सौवर्णं ते पीठकं कारयिष्यामि ।

चेटः—अहमपि उपवेक्ष्यामि ।

शकारः—सर्वं ते उच्छिष्टं दास्यामि ।

चेट—अहमपि खादिष्यामि ।

शकार—सर्वचेटानां महत्तरकं करिष्यामि ।

चेटः—भट्टकः भविष्यामि ।

शकार.—तन्मन्यस्व मम वचनम् ।

चेट—भट्टक ! सर्वं करोमि वर्जयित्वा अकार्यम् ।

शकारः—अकय्जाह गन्धे वि णत्थि ।
चेटः—मणादु भट्टके ।
शकार—एणं वशन्तशेणिअं मालेहि ।
चेटः—पशीदद् भट्टके[1] इअं मए अणज्जेण अज्जा पवहणपलिवत्तणेण आणीदा ।
शकार—अले चेड़ा । तवावि ण पहवामि ।
चेट—पहवदि भट्टके शलीलाह, ण चालित्ताह् । ता पशीदद् पशीदद् भट्टके । भाआमि क्खु अहं ।
शकार—तुमं मम चेड़े भविअ कश्श भाआशि ।
चेटः—भट्टके ! पललोअश्श ।
शकारः—के शे पलन्नोए ।
चेट.—भट्टके ! शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे । इत्यादि ।

इस प्रकार मृच्छकटिक के संवादों में स्वाभाविकता है और ये संवाद पात्रों के स्वभाव तथा चरित्र पर प्रकाश डालने वाले हैं। शूद्रक की इसी कुशल संवाद-कला को ध्यान में रखते हुए हेनरी वेल्स ने कहा है कि मृच्छकटिक जैसे लम्बे प्रकरण में नीरस स्थलों का अद्भुत अभाव है।[2]

इसमें हास्यविनोद की योजनाएँ भी सुन्दर हैं। इनसे नाटक में सजीवता आ गई है। एक ओर हास्य विनोदप्रिय विदूषक द्वारा प्रस्तुत हुआ है तो दूसरी ओर हास्यास्पद परिस्थितियों में पूर्ण कुछ पात्रों के कार्य-व्यापार द्वारा तथा व्यंग्यपूर्ण मधुर संलाप द्वारा। विदूषक का हास्य प्रकरण के आरम्भ से अन्त तक हास्य-विनोद का मधुर आस्वादन कराता है, उसके हास्य में स्वाभाविकता तथा शिष्टता है। तृतीय अंक में रदनिका से चोरी की बात सुनकर वह कहता है—'अरी दासी

शकारः—अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति ।
चेटः—भणतु भट्टकः ।
शकारः—एना वसन्तसेना मारय ।
चेटः—प्रसीदतु भट्टकः । इयं मया अनार्येण आर्या प्रवहणपरिवर्तनेनानीता ।
शकारः—अरे चेट ! तवापि न प्रभवामि ।
चेटः—प्रभवति भट्टकः शरीरस्य, न चारित्रस्य । तत् प्रसीदतु प्रसीदतु भट्टकः, बिभेमि खलु अहम् ।
शकारः—त्वं मम चेटो भूत्वा कस्मात् बिभेषि ?
चेट—भट्टक ! परलोकात् ।
शकारः—कः स परलोक. ?
चेट—भट्टक ! सुकृतदुष्कृतस्य परिणाम !
मृच्छकटिक, अष्टम अंक, पृ० ४०६–४१५ (चौखम्बा संस्करण)

२. "The Little Clay Cart is a long play singularly lacking in longeurs". *The Classical Drama of India*, p. 150.

की पुत्री ! क्या कहती है कि चोर फोड़कर सेंध निकल गया।"[1]

शकार भी अपने वार्तालाप तथा आंगिक अभिनय से हास्य-विनोद उत्पन्न करता है। प्रथम अंक में उसके हास्य-युक्त प्रश्नोत्तर, वाणी की विकृति एवं पुराणों के उल्टे-सीधे उद्धरण यदि हमें आनन्द प्रदान करते हैं तो अष्टम अंक में तर्क-वितर्क उत्पन्न करते हैं।

संवादों में प्रयुक्त अनेक श्लोक भी काव्यत्व की दृष्टि से अत्यंत उच्च कोटि के हैं।

---

१. आः दासीए धीए। किं भणासि चोरं कप्पिअ सन्धी णिक्कन्तो ?
(आः दास्याः पुत्रिके ! किं भणसि चौरं कल्पयित्वा सन्धिर्निष्क्रान्तः)
तृ० अंक, पृ० १७४

अध्याय ७

मृच्छकटिक का रस तथा भाव-विवेचन

मृच्छकटिक का रस-विवेचन—

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रस रूपक का प्रमुख अंग है। पाश्चात्य समीक्षकों ने प्रभावान्विति को ही नाटक का प्राण कहा है। समालोचकों का कथन है कि इन दोनों मे बहुत साम्य है। विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भावों के संयोग से सहृदयो को होने वाली जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति है, वही रस है। भरतमुनि के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[1] रूपकों का प्रयोजन इसी रस की प्रतीति कराना है। दृश्यकाव्य—रूपक मे नटों का यही उद्देश्य होता है कि उनके अभिनय द्वारा सामाजिकों मे रसोद्बोध हो। विविध रूपकों मे विविध रसों की प्रधानता और अप्रधानता (गौणता) भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है।

प्रकरण मे श्रृंगार रस अंगी (प्रधान) रस होता है और अन्य रस उसके अंग बनकर रहते है। श्रृंगार दो प्रकार का होता है—(१) सम्भोग या संयोग श्रृङ्गार और (२) विप्रलम्भ (वियोग) श्रृङ्गार। मृच्छकटिक प्रकरण मे संयोग श्रृङ्गार ही अंगी (प्रधान) रस है तथा विप्रलम्भ श्रृङ्गार, करुण, हास्य, भयानक, वीर और शान्त आदि रस उसके अङ्ग हैं।

सम्भोग श्रृङ्गार—मृच्छकटिक मे चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-कथा का वर्णन किया गया है। गणिका वसन्तसेना नाट्य समीक्षा की दृष्टि से सामान्य नायिका है और सामान्य नायिका का प्रेम रस की कोटि तक न पहुँचकर 'रसाभास' ही रहता है, तथापि गणिका वसन्तसेना का प्रेम कुलनारी के समान अनन्य प्रेम है और वह अन्त मे वधू पद को प्राप्त करती है, इसलिये उसका प्रेम रस की कोटि तक पहुँच जाता है। कामदेवायतन उद्यान मे रूप-यौवन-सम्पन्न तथा गुणागार चारुदत्त को देखकर वसन्तसेना के हृदय मे अनुराग उत्पन्न हो जाता है। प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य मे चारुदत्त और वसन्तसेना परस्पर मिलते है। चारुदत्त उसके रूप की ओर उसकी शालीनता की मन ही मन प्रशंसा करता है।[2] इसी समय मे चारुदत्त के हृदय मे भी वसन्तसेना के प्रति अनुराग पैदा हो जाता है। यही संभोग श्रृङ्गार का उदय स्पष्ट है। यह अनेक विघ्नबाधाओं के साथ दशम अंक मे परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है।

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य मे वसन्तसेना और मदनिका के सम्भाषण मे विप्रलम्भ श्रृङ्गार की प्रतीति होती है। यहीं वसन्तसेना की उदारशीलता और चारुदत्त के प्रति उसका प्रेम व्यजित होता है। चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य मे

---

१. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः। नाट्यशास्त्र

२ (क) एषादिना दारदर्शनेन चन्द्रेणेव दृश्यते। मृच्छकटिक, १/५८

(ख) अये, वयं देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम्। वही, प्रथम अंक, पृ० ८६

वसन्तसेना और मदनिका चारुदत्त की चित्राकृति के विषय में बातचीत करती हैं। यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार का आभास मिलता है। इस प्रकार द्वितीय और चतुर्थ अंक के विप्रलम्भ शृङ्गार के अभिव्यंजक भावों में यह सम्भोग शृङ्गार परिपुष्ट होता है। तदनन्तर पंचम अंक के तृतीय दृश्य में अकालदुर्दिन में विट और अभिसारिका-वेश धारण करके वसन्तसेना चारुदत्त के यहाँ पहुँचते हैं। यहाँ मेघगर्जना, दुर्दिन का अन्धकार तथा विद्युत् की चमक सम्भोग शृङ्गार के उद्दीपन के रूप में सहायक होते हैं। मेघों ने चारुदत्त के प्रेम को भी उद्दीप्त कर दिया है, इसलिये वह कह उठता है—'हे मेघ! तुम और अधिक गर्जना करो, क्योंकि तुम्हारे नाद के प्रभाव से मेरी काम-पीड़ित देह वसन्तसेना के संस्पर्श से रोमाञ्चित तथा राग-युक्त होकर कदम्ब-पुष्प के समान विकसित एवं रोमाञ्चित हो रही है।' 'उन्हीं मनुष्यों का जीवन धन्य है, जो स्वयं घर में आई हुई कामिनियों के वर्षा जल से आर्द्र एवं शीतल अंगों को अपने अंगों से आलिंगन करते हैं।'[1] इस प्रकार पंचम अंक में सम्भोग शृङ्गार की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

षष्ठ अंक के प्रारम्भ में चारुदत्त से पुन: मिलने के लिये तथा अन्तःपुर में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने के लिये वसन्तसेना की उत्सुकता दिखाई गई है। सप्तम अंक में वसन्तसेना से मिलने के लिये चारुदत्त की उत्सुकता व्यक्त होती है। किन्तु दुर्दैव-वशात् वसन्तसेना का कण्ठनिपीडन, चारुदत्त पर अभियोग तथा उसे प्राणदण्ड आदि घटनाओं से विप्रलम्भ शृंगार करुण दशा को प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है, तदनन्तर चारुदत्त और वसन्तसेना का पुनर्मिलन होता है और चारुदत्त सहसा कह उठता है—तुम्हारे कारण नष्ट किया जाता हुआ यह मेरा शरीर तुम्हारे द्वारा ही मुक्त करा दिया गया। अहो! प्रिय-मिलन का महान् प्रभाव है। (अन्यथा) मर कर भी कोई फिर जीवित हो सका है?[2]

प्रकरण के अन्त में नायक को अभीष्ट रूप में अर्थात् वधू के रूप में वसन्तसेना की प्राप्ति हो जाती है।[3]

---

१. (क) भो मेघ! गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात् स्मरपीडितं मे।
संस्पर्शरोमाञ्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपैति गात्रम्॥ ५/४७
(ख) धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति॥ ५/४९

२. त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमानं देहं त्वयैव प्रतिमोचितं मे।
अहो प्रभाव: प्रियसंगमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत? १०/४३

३. (क) लब्धा चारित्रशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्तः।
प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यकः शास्ति राजा।
प्राप्ता भूयः प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान् सङ्गतो मे वयस्यो
लभ्यं किञ्चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम्॥ १०/५८
(ख) आर्ये वसन्तसेने! परितुष्टो राजा भवती वधूशब्देनानुगृह्णाति।
दशम अंक, पृ० ५९८

इस प्रकार प्रकरण के आरम्भ मे सम्भोग शृंगार का उदय होता है और वह विप्रलम्भ इत्यादि से परिपुष्ट होता हुआ परिपक्व अवस्था को पहुँच जाता है। अत यहाँ सम्भोग शृंगार अंगी (प्रधान) रस है। वसन्तसेना के प्रति प्रतिनायक शकार का झुकाव, उसका पीछा करना, अनुनय-विनय करना, और प्रेम प्रदर्शित करना आदि शृंगाराभास है।

विप्रलम्भ शृङ्गार—मृच्छकटिक मे सम्भोग शृङ्गार की भाँति विप्रलम्भ शृङ्गार की भी अनेक स्थलों पर सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। द्वितीय अंक के आरम्भ मे वसन्तसेना विशेष उत्कण्ठित है। हृदय में कुछ सोच रही है और स्नानादि मे भी उसे कोई रुचि नही है।[1] वह शून्यहृदया-सी किसी की कामना करती हुई-सी प्रतीत होती है।[2] चतुर्थ अंक के आरम्भ में वसन्तसेना चारुदत्त के चित्र की रचना मे मग्न दिखाई पडती है।[3] पंचम अक के आरम्भ मे जब विदूषक चारुदत्त से गणिका वसन्तसेना का प्रसंग छोडने की प्रार्थना करता है, तो उस समय चारुदत्त की भी वसन्तसेना के प्रति उत्सुकता प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त विरह की वेदना भी प्रकट होती है।[4] षष्ठ और सप्तम अक मे दोनों ओर से विरह की उत्कण्ठा व्यक्त हुई है। इस प्रकार मृच्छकटिक मे विप्रलम्भ शृङ्गार का भी सुन्दर चित्रण किया गया है।

---

१. (क) एसा अज्जआ हिअएअ किंपि आलिहन्ती चिट्ठदि।
संस्कृत-छाया— एषार्या हृदयेन किमप्यालिखन्ती तिष्ठति। द्वि० अंक, पृ० ६४
(ख) हञ्जे! विण्णवेहि अत्ता, अज्ज ण ण्हाइस्सं, ता बम्हणो ज्जेव पूअं णिव्वत्तेदु त्ति।
संस्कृत छाया—आर्ये! विज्ञापय मातरम्, अद्य न स्नास्यामि। तद् ब्राह्मण एव पूजा निर्वर्तयतु इति। द्वितीय अंक, पृ० ६५
२. मदनिका—अज्जआए सुण्णहिअअत्तणेण जाणामि— हिअअगदं कंपि अज्जआ अहिलसदि त्ति।
संस्कृतछाया—आर्यायाः शून्यहृदयत्वेन जानामि, हृदयगतं किमपि आर्या अभिलषतीति। द्वितीय अक, पृ० ६६
३ (क) एसा अज्जआ चित्तफलअ-णिसण्ण-दिट्ठी मदणिआए सह किं पि मन्तअन्ती चिट्ठदि।
संस्कृत छाया—एषा आर्या चित्रफलकनिषण्णदृष्टिर्मदनिकया सह मन्त्रयन्ती तिष्ठति। चतुर्थ अंक, पृ० १६०
(ख) हञ्जे मदणिए। अवि सुसदिसी इअं चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्स।
संस्कृत छाया—हञ्जे मदनिके! अपि सुसदृशी इयं चित्राकृतिः आर्यचारुदत्तस्य।
चतुर्थ अंक, पृ० १६०
४. (क)……गुणहार्यो ह्ययमो जन। ५/६, पृ० २६५
(ख) वयमर्थैः परित्यक्ता, ननु त्यक्तैव सा मया। ५/६

करुण-रस—अभीष्ट की हानि से शोक का आविर्भाव होता है और इसके चित्रण के द्वारा सहृदय-सामाजिकों को करुण रस का आस्वादन हुआ करता है। प्रथम अंक में चारुदत्त के वैभव-नाश और निर्धन अवस्था का करुण चित्रांकन किया गया है। यथा—

(क) सुखात् यो याति नरो दरिद्रतां धृत शरीरेण मृत. स जीवति।[1]

(ख) दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्॥[2]

इसी प्रकार संवाहक के भूमिपतन मे[3], अलंकारों के चोरी चले जाने का समाचार सुनकर धूता की मूर्च्छा[4], तदनन्तर गणिका वसन्तसेना की मूर्च्छा[5], चारुदत्त के प्राणदण्ड की घोषणा होने पर मैत्रेय और रोहसेन के रुदन[6], धूता के

---

१. १/१०

२. १/११

३ संवाहक—शिलु पडदि (संस्कृत छाया—शिर. पतति)। (इति भूमौ पतति) उ भौ बहुविधं ताडयतः)। द्वितीय अङ्क, पृ० १०६

४. ………कि तु जो सो वेससाजणकेरको अलंकारओ, सो अवहिदो।
संस्कृत छाया—किन्तु य स वेश्याजनस्य अलंकारकः, सोऽपहृतः (वधू. मोहं नाटयति)। तृतीय अंक, पृ० १८२

५. (क) मदनिका—(निरूप्य) दिट्ठपुरुव्वो विअ अअ अलंकारओ। ता भणेहि कुदो दे एसो ?।
संस्कृत छाया—दृष्टपूर्व इवायमलङ्कार.। तद्भण कुतस्ते एषः ?।

(ख) शर्विलक—आर्य प्रभाते मया श्रुत श्रेष्ठि-चत्वरे यथा सार्थवाहस्य चारुदत्तस्य इति। (वसन्तसेना मदनिका च मूर्च्छा नाटयतः)।

(ग) वसन्तसेना—(संज्ञा लब्ध्वा) अम्महे। पच्चुवजीविदम्हि।
संस्कृत छाया—अहो ! प्रत्युपजीवितास्मि। चतुर्थ अंक, पृ० २०४-२०६

६. (क) दारक—हा ताद ! हा आवुक।……अरे रे चाण्डाला, कहिं मे आवुकं णेध ? ता कीस मारेध आवुक। वावादेध मं, मुञ्चध आवुकं।
संस्कृत छाया—हा तात ! हा आवुक ! ……अरे रे चाण्डाला। कुत्र मम पितरं नयत ?……तत् केन (किमर्थं) मारयत आवुकम् ?……व्यापादयत माम्, मुञ्चत आवुकम् (पितरम्)। दशम अंक, पृ० ५३४-५३८

(ख) विदूषक—हा पिअवअस्स। कहिं मए तुमं पेक्खिदव्वो ?……भो भद्दमुहा ! मुञ्चध पिअवअस्स चारुदत्त, मं वावादेध।
संस्कृत छाया—हा प्रियवयस्य ! कस्मिन् मया त्व प्रेक्षितव्यः ? भो भद्रमुखा ! मुञ्चत प्रियवयस्यं चारुदत्तम्। मा व्यापादयतम्। दशम अंक, पृ० ५३४-५३६

(ग) (पुत्रं मित्रञ्चवीक्ष्य)—हा पुत्र ! हा मैत्रेय ! (सकरुणम्) भोः। कष्टम्।
चिरं खलु भविष्यामि परलोके पिपासितः।
अत्यल्पमिदमस्माकं निवापोदकभोजनम्॥ १०/१७

अग्नि-प्रवेश की बात सुनकर चारुदत्त के मूर्च्छित होने[1] इत्यादि के वर्णनों में करुण रस की अभिव्यञ्जना हुई है। जब शकार वसन्तसेना का गला घोट देता है और वह मूर्च्छित होकर गिर जाती है, तब विट ने शोकनिमग्न होकर जो विलाप किया है, उसमें तो करुण रस का अत्यन्त सुन्दर परिपाक दृष्टिगोचर होता है। यथा—हा आभूषणों को अलंकृत करने वाली, सुन्दर मुख वाली, लीला-रसोद्भासिनी, सुजनता की नदी, हासपुलिने, हा मुझ जैसों की चिराश्रितभुन, उदारता रूपी जल की नदी विलुप्त हो गई, रति अपने देश (स्वर्ग) को चली गई। हाय कामदेव का बाजार (हाट) तथा सौभाग्यरूपी विक्रेय द्रव्य की निधि नष्ट हो गई।[2]

हास्य रसः—हास्य और व्यंग्य की दृष्टि से मृच्छकटिक का संस्कृत नाटकों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। शूद्रक ने अनेक प्रकार से हास्य-व्यञ्जना का प्रयास किया है। यथा—

(१) विनोदी तथा हास्यप्रिय पात्रों द्वारा,
(२) विनोदपूर्ण परिस्थितियों की उद्भावना द्वारा,
(३) व्यङ्ग्योक्तियों और अद्भुत प्रश्नोत्तरों द्वारा।

विदूषक और शकार के अनेक कार्यों एवं संवादों द्वारा समस्त प्रकरण में हास्य की व्यञ्जना हुई है। किन्तु विदूषक के हास्योत्पादक कार्य शकार की भाँति मूर्खतापूर्ण नहीं है। मैत्रेय विदूषक हास-परम्परा का प्रतिनिधि है और इसी कारण उसके चारित्रिक गुण हास्योत्पादक हैं। विदूषक की भीरुता भी परिहास का विषय बनती है।[3] देवताओं को बलि चढाने के लिए वह सायंकाल घर से

---

१. (क) चारुदत्त—(सोद्वेगम्) हा प्रिये ! जीवत्यपि मयि किमेतत् व्यवसितम्। (ऊर्ध्वमवलोक्य दीर्घं निःश्वस्य च)। दशम अङ्क, पृ० ५६०
(ख) द्रष्टव्य १०/५५

२. दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रतिः
हा हालङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि।
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा मादृशामाश्रये।
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः॥ ८/३८

३ विदूषक—भो न गमिस्सं।......मम उण बम्हणस्स सव्वं ज्जेव विपरीदं परिणमदि, आदंसगदा विअ छाआ, वामादो दक्खिणा दक्खिणादो वामा। अण्णं अ, एदाये पदोसवेलाए, इध राअमग्गे गणिआ विडा चेडा राअवल्लहा अ, पुरिसा सञ्चरन्ति। ता मण्डुअलुद्धस्स कालसप्पस्स मूसिओ विअ अहिमुहावडिदो वज्झो दाणिं भविस्सं। तुमं इध उवविट्ठो किं करिस्ससि ?
संस्कृत छाया—भोः ! न गमिष्यामि।......मम पुनर्ब्राह्मणस्य सर्वमेव विपरीतं परिणमति, आदर्शगता इव छाया, वामतो दक्षिणा, दक्षिणतो वामा। अन्यच्च, एतस्यां प्रदोषवेलायाम् इह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राजवल्लभाश्च पुरुषाः सञ्चरन्ति। तत् मण्डूकलुब्धस्य कालसर्पस्य मूषिक इव अभिमुखापतितो वध्य इदानीं भविष्यामि। त्वमिह उपविष्टः किं करिष्यसि ?।
प्रथम अंक, पृ० ३३-३४

बाहर जाने से इन्कार कर देता है किन्तु फिर जाने के लिये बाध्य किये जाने पर वह हाथ में दीपक लेकर रदनिका दासी के साथ जाने के लिए उद्यत हो जाता है।[1]

सुस्वादु भोजन की लोलुपता प्रदर्शित कर वह हास्यास्पद बनता है। वह गत दिनों की याद कर दुःखाभिभूत होकर अपने को नगर-प्रांगण में पागुर करते हुए साँड के समान बनाता है।[2] इसी स्वाद-लोलुपता के कारण वह वसन्तसेना के व्यवहार पर दुःखी होता है तथा रुष्ट होता है कि उसने उसे घर जाने पर अपनी विपुल सम्पत्ति के होते हुए भी जलपान के लिये नहीं पूछा।[3] वसन्तसेना जब चारुदत्त के घर आती है, तब वह अवसर पाकर व्यंग्यपूर्ण शैली से अपनी रुष्टता को व्यक्त करता है। वसन्तसेना के चारुदत्त के विषय में पूछने पर वह उत्तर देता है कि प्रियमित्र शुष्कउद्यान में है। वसन्तसेना पूछती है आप लोग शुष्कवाटिका किसे कहते हैं? तब वह व्यंग्यपूर्ण भाव से उत्तर देता है—जहाँ न खाया जाता है, न पिया जाता है।[4] वसन्तसेना व्यंग्य समझ जाती है और मुस्करा देती है। इसी

१. विदूषक—(सवैलक्ष्यम्) भो वअस्स ! जई मए गन्तव्व, ता एसा वि मे सहाइणी रदणिआ भोदु।
संस्कृत छाया—भो वयस्य ! यदि मया गन्तव्यम्, तदेषापि मम सहायिनी रदनिका भवतु। प्रथम अंक, पृ० ६१

२. (क) हा अवत्थे ! तुलीअसि।······णअरचत्तरवुसहो विअ रोमन्थाअमाणो चिट्ठामि, सो दाणिं अहं तस्स दलिद्ददाए जहिं तहिं चरिअ गेहपारावदो विअ आवासणिमित्तं इध आअच्छामि।
संस्कृत छाया—हा अवस्थे ! तूलयसि। नगरचत्वरवृषभ इव रोमन्थायमानस्तिष्ठामि। स इदानीमहं तस्य दरिद्रतया यस्मिन् तस्मिन् चरित्वा गेहपारावत इव आवासनिमित्तमत्र आगच्छामि। प्रथम अंक, पृ० २१-२३

३. विदूषक—एत्तिआए पुद्धीए ण तत्त अहं भणिदो,—अज्ज मित्तेअ ! वीसमीअदु मल्लकेण पाणीअं वि पिविअ गच्छीअदु त्ति। ता मा दाव दासीए धीआए गणिआए मुहं पि पेक्खिस्सं।
संस्कृत छाया—एतावत्या ऋद्धया न तया अहं भणितः—आर्य मैत्रेय ! विश्रम्यताम्, मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यतामिति। तत् मा तावत् दास्याः पुत्र्या गणिकाया मुखमपि प्रेक्षिष्ये। पञ्चम अंक, पृ० २६०-२६१

४. (क) विदूषक—(स्वगतम्) ही ही भो ! जूदिअरो त्ति भणन्तीए अलङ्किदो पिअवअस्सो। (प्रकाशम्) भोदि ! एसो क्खु सुक्खरुक्खवाडिआए।
संस्कृत छाया—(स्वगतम्) ही ही भो ! द्यूतकर इति भणन्त्या अलंकृतः प्रियवयस्यः भवति ! (प्रकाशम्) एष खलु शुष्कवृक्ष-वाटिकायाम्।
(ग) वसन्तसेना—अज्ज ! का तुम्हाणं सुक्ख-रुक्ख-वाडिआ वुच्चदि ?
संस्कृत छाया—आर्य ! का युष्माकं शुष्क-वृक्ष-वाटिका उच्यते ?
विदूषक—भोदि ! जहिं ण खाईअदि ण पीईअदि।
संस्कृत छाया—भवति ! यस्मिन् न खाद्यते न पीयते। पंचम अंक, पृ० २६६

अनादर की मनोभावना को लिये हुए उसने वसन्तसेना से प्रश्न किये हैं कि ऐसे घोर अन्धकार से आच्छन्न दुर्दिन मे आप यहाँ किसलिये आई है ?[1] क्या आप इसी घर मे आज सोयेंगी ?[2]

मैत्रेय के समान शकार के चरित्र मे भी ऐसी विशेषताएँ हैं, जो हास पैदा करती हैं। अन्य नाटकीय शठो के समान वह भी मूर्ख तथा भीरु है। इस प्रकरण मे शकार के मूर्खतापूर्ण कार्यों से हास्य की योजना की गई है। शकार का दम्भ उसे स्थान-स्थान पर उपहास का पात्र बनाता है। वह अपना परिचय मेरी बहिन के पति राजापालक के श्यालक के रूप मे देता है और अपने को प्रधान पुरुष मानता है।[3] शकार राक्षसी आदि के नाम से डरता है, इसीलिये प्रवहण-विपर्यय के कारण वसन्तसेना के शकार के पास पहुँच जाने पर विट शरणागता की रक्षा करने के लिये उसे 'गाडी मे राक्षसी बैठी हुई है', कहकर डराता है।[4] वसन्तसेना के चारुदत्त के घर में घुस जाने पर विदूषक के माध्यम से चारुदत्त को धमकियाँ देने के बाद वह तलवार को कन्धे पर रख कर भय से युक्त हो वैसे ही भाग

---

१. विदूषक—(प्रकाशम्) अध किं णिमित्त उण ईदिसे पणट्टचन्दालोए दुद्दिण अन्धआरे आअदा भोदी ?
संस्कृत छाया—अथ किं निमित्त पुनरीदृशे प्रनष्टचन्द्रालोके दुर्दिनान्धकारे आगता भवती। पंचम अक, पृ० २९९

२. हञ्जे ! किं भोदीए इध ज्जेव सुविदव्व ?
संस्कृत छाया—हञ्जे। किं भवत्या इहैव स्वप्तव्यम्। पचम अंक, पृ० ३०७

३. (क) हग्गे वलपुलिशे मण्णुश्शे वाशुदेवे लट्ठिअशाले लाअशाले कज्जत्थी।
सस्कृत छाया—अह वरपुरुषः मनुष्य. वासुदेव राष्ट्रियश्याल राजश्यालः कार्यार्थी। नवम अंक, पृ० ४५९

(ख) लाअशशुले मम पिदा लाआ तादश्श होइ जामादा।
लाअशिआले हग्गे ममावि वहिणीवदी लाआ॥
संस्कृत छाया—राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालोऽह ममापि भगिनीपति राजा॥ ९/९

(ग) शकार—णहि णहि, पवहणं अहिलुहिअ गच्छामि। जेण दूलदो मं पेक्खिअ भणिश्शन्ति, एशे शे लट्ठिअशाले भट्टालके गच्छदि।...... (सहर्षम्) भावे ! भावे ! मं पवलपुलिश मणुश्शं वाशुदेवकं ?
संस्कृत छाया—नहि नहि, प्रवहणमधिरुह्य गच्छामि। येन दूरतो मा प्रेक्ष्य भणिष्यन्ति—'एष स राष्ट्रियश्यालो भट्टारको गच्छति।'......(सहर्षम्) भाव ! भाव ! मां प्रवरपुरुषं मनुष्यं वासुदेवकं। अष्टम अंक, पृ० ४०३

४. विट—काणेलीमातः ! मम राक्षस्येवात्र प्रतिवसति। अष्टम अंक, पृ० ४०१

की पुत्री ! क्या कहती है कि चोर फोड़कर सेंध निकल गया।"[1]

शकार भी अपने वार्तालाप तथा आंगिक अभिनय से हास्य-विनोद उत्पन्न करता है। प्रथम अंक मे उसके हास्य-युक्त प्रश्नोत्तर, वाणी की विकृति एवं पुराणो के उल्टे-सीधे उद्धरण यदि हमे आनन्द प्रदान करते हैं तो अष्टम अक मे तर्क-वितर्क उत्पन्न करते हैं।

संवादो मे प्रयुक्त अनेक श्लोक भी काव्यत्व की दृष्टि से अत्यत उच्च कोटि के हैं।

१. आः दासीए धीए। किं भणासि चोरं कप्पिअ सन्धी णिक्कन्तो ?
(आः दास्या पुत्रि ! किं भणसि चौरं कल्पयित्वा सन्धिनिष्क्रान्तः)
तृ० अंक, पृ० १७४

मृच्छकटिक का रस तथा भाव-विवेचन

मृच्छकटिक का रस-विवेचन—

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रस रूपक का प्रमुख अंग है। पाश्चात्य समीक्षकों ने प्रभावान्विति को ही नाटक का प्राण कहा है। समालोचकों का कथन है कि इन दोनों में बहुत साम्य है। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से सहृदयों को होने वाली जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति है, वही रस है। भरतमुनि के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[1] रूपकों का प्रयोजन इसी रस की प्रतीति कराना है। दृश्यकाव्य—रूपक में नटों का यही उद्देश्य होता है कि उनके अभिनय द्वारा सामाजिकों में रसोद्बोध हो। विविध रूपकों में विविध रसों की प्रधानता और अप्रधानता (गौणता) भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है।

प्रकरण में शृंगार रस अंगी (प्रधान) रस होता है और अन्य रस उसके अंग बनकर रहते हैं। शृंगार दो प्रकार का होता है—(१) सम्भोग या संयोग शृङ्गार और (२) विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार। मृच्छकटिक प्रकरण में संयोग शृङ्गार ही अंगी (प्रधान) रस है तथा विप्रलम्भ शृङ्गार, करुण, हास्य, भयानक, वीर और शान्त आदि रस उसके अङ्ग हैं।

सम्भोग शृङ्गार—मृच्छकटिक में चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-कथा का वर्णन किया गया है। गणिका वसन्तसेना नाट्य समीक्षा की दृष्टि से सामान्य नायिका है और सामान्य नायिका का प्रेम रस की कोटि तक न पहुँचकर 'रसाभास' ही रहता है, तथापि गणिका वसन्तसेना का प्रेम कुलनारी के समान अनन्य प्रेम है और वह अन्त में वधू पद को प्राप्त करती है, इसलिये उसका प्रेम रस की कोटि तक पहुँच जाता है। कामदेवायतन उद्यान में रूप-यौवन-सम्पन्न तथा गुणागार चारुदत्त को देखकर वसन्तसेना के हृदय में अनुराग उत्पन्न हो जाता है। प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त और वसन्तसेना परस्पर मिलते हैं। चारुदत्त उसके रूप की और उसकी शालीनता की मन ही मन प्रशंसा करता है।[2] इसी समय से चारुदत्त के हृदय में भी वसन्तसेना के प्रति अनुराग पैदा हो जाता है। यहाँ सम्भोग शृङ्गार का उदय स्पष्ट है। यह अनेक विघ्नबाधाओं के साथ दशम अंक में परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है।

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और मदनिका के सम्भाषण से विप्रलम्भ शृङ्गार की प्रतीति होती है। यहीं वसन्तसेना की उदारशीलता और चारुदत्त के प्रति उसका प्रेम व्यंजित होता है। चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य में

---

१. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः। नाट्यशास्त्र

२ (क) छादिता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव दृश्यते। मृच्छकटिक, १/५८

(ख) अये, वयं देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम्। वही, प्रथम अंक, पृ० ८६

वसन्तसेना और मदनिका चारुदत्त की चित्राकृति के विषय में बातचीत करती हैं। यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार का आभास मिलता है। इस प्रकार द्वितीय और चतुर्थ अंक के विप्रलम्भ शृङ्गार के अभिव्यञ्जक भावों से यह सम्भोग शृङ्गार परिपुष्ट होता है। तदनन्तर पंचम अंक के तृतीय दृश्य में अकालदुर्दिन में विट और अभिसारिका-वेश धारण करके वसन्तसेना चारुदत्त के यहाँ पहुँचते हैं। यहाँ मेघगर्जना, दुर्दिन का अन्धकार तथा विद्युत् की चमक सम्भोग शृङ्गार के उद्दीपन के रूप में सहायक होते हैं। मेघों ने चारुदत्त के प्रेम को भी उद्दीप्त कर दिया है, इसलिये वह कह उठता है—'हे मेघ! तुम और अधिक गर्जना करो, क्योंकि तुम्हारे नाद के प्रभाव से मेरी काम-पीडित देह वसन्तसेना के संस्पर्श से रोमाञ्चित तथा राग-युक्त होकर कदम्ब-पुष्प के समान विकसित एवं रोमाञ्चित हो रही है।' 'उन्हीं मनुष्यों का जीवन धन्य है, जो स्वयं घर में आई हुई कामिनियों के वर्षा जल से आर्द्र एवं शीतल अंगों को अपने अंगों से आलिंगन करते हैं।'[1] इस प्रकार पंचम अंक में सम्भोग शृङ्गार की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

षष्ठ अंक के प्रारम्भ में चारुदत्त से पुनः मिलने के लिये तथा अन्तःपुर में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने के लिये वसन्तसेना की उत्सुकता दिखाई गई है। सप्तम अंक में वसन्तसेना से मिलने के लिये चारुदत्त की उत्सुकता व्यक्त होती है। किन्तु दुर्दैव-वशात् वसन्तसेना का कण्ठनिपीडन, चारुदत्त पर अभियोग तथा उसे प्राणदण्ड आदि घटनाओं से विप्रलम्भ शृंगार करुण दशा को प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है, तदनन्तर चारुदत्त और वसन्तसेना का पुनर्मिलन होता है और चारुदत्त सहसा कह उठता है—तुम्हारे कारण नष्ट किया जाता हुआ यह मेरा शरीर तुम्हारे द्वारा ही मुक्त करा दिया गया। अहो! प्रिय-मिलन का महान् प्रभाव है। (अन्यथा) मर कर भी कोई फिर जीवित हो सका है?[2]

प्रकरण के अन्त में नायक को अभीष्ट रूप में अर्थात् वधू के रूप में वसन्तसेना की प्राप्ति हो जाती है।[3]

---

१. (क) भो मेघ! गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात् स्मरपीडितं मे।
संस्पर्शरोमाञ्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपैति गात्रम्॥ ५/४७
(ख) धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति॥ ५/४९

२. त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमानं देहं त्वयैव प्रतिमोचितं मे।
अहो प्रभावः प्रियसंगमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत? १०/४३

३. (क) लब्धा चारित्रशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्तः।
प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यक शास्ति राजा।
प्राप्ता भूयः प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान् सङ्गतो मे वयस्यो
लभ्यं किञ्चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम्॥ १०/५८
(ख) आर्ये वसन्तसेने! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति।
दशम अंक, पृ० ५९८

इस प्रकार प्रकरण के आरम्भ मे सम्भोग शृंगार का उदय होता है और वह विप्रलम्भ इत्यादि से परिपुष्ट होता हुआ परिपक्व अवस्था को पहुँच जाता है। अतः यहाँ सम्भोग शृंगार अंगी (प्रधान) रस है। वसन्तसेना के प्रति प्रतिनायक शकार का झुकाव, उसका पीछा करना, अनुनय-विनय करना, और प्रेम प्रदर्शित करना आदि शृंगाराभास है।

विप्रलम्भ शृङ्गार—मृच्छकटिक मे सम्भोग शृङ्गार की भाँति विप्रलम्भ शृङ्गार की भी अनेक स्थलो पर सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। द्वितीय अंक के आरम्भ मे वसन्तसेना विशेष उत्कण्ठित है। हृदय मे कुछ सोच रही है और स्नानादि मे भी उसे कोई रुचि नही है।[1] वह शून्यहृदया-सी किसी की कामना करती हुई-सी प्रतीत होती है।[2] चतुर्थ अंक के आरम्भ मे वसन्तसेना चारुदत्त के चित्र की रचना मे मग्न दिखाई पडती है।[3] पंचम अक के आरम्भ मे जब विदूषक चारुदत्त से गणिका वसन्तसेना का प्रसंग छोडने की प्रार्थना करता है, तो उस समय चारुदत्त की भी वसन्तसेना के प्रति उत्सुकता प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त विरह की वेदना भी प्रकट होती है।[4] षष्ठ और सप्तम अक मे दोनो ओर से विरह की उत्कण्ठा व्यक्त हुई है। इस प्रकार मृच्छकटिक मे विप्रलम्भ शृङ्गार का भी सुन्दर चित्रण किया गया है।

---

१ (क) एसा अज्जआ हिअएअ किपि आलिहन्ती चिट्ठदि।
संस्कृत-छाया— एषार्या हृदयेन किमप्यालिखन्ती तिष्ठति। द्वि० अक, पृ० ६४
(ख) हञ्जे! विण्णवेहि अत्ता, अज्ज ण ण्हाइस्सं, ता वम्हणो ज्जेव पूअं णिव्वत्तेदु त्ति।
संस्कृत छाया—आर्ये! विज्ञापय मातरम्, अद्य न स्नास्यामि। तद् ब्राह्मण एव पूजा निर्वर्तयतु इति। द्वितीय अंक, पृ० ६५

२. मदनिका—अज्जआए सुण्णहिअअत्तणेण जाणामि— हिअअगदं कपि अज्जआ अहिलसदि त्ति।
संस्कृतछाया—आर्यायाः शून्यहृदयत्वेन जानामि, हृदयगतं किमपि आर्या अभिलषतीति। द्वितीय अंक, पृ० ६६

३ (क) एसा अज्जआ चित्तफलअ-णिसण्ण-दिट्ठी मदणिआए सह किं पि मन्तअन्ती चिट्ठदि।
संस्कृत छाया—एषा आर्या चित्रफलकनिषण्णदृष्टिर्मदनिकया सह मन्त्रयन्ती तिष्ठति। चतुर्थ अंक, पृ० १६०
(ख) हञ्जे मदणिए! अवि सुसदिसी इअ चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्स।
संस्कृत छाया—हञ्जे मदनिके! अपि सुसदृशी इयं चित्राकृतिः आर्यचारुदत्तस्य।
चतुर्थ अंक, पृ० १६०

४. (क)······गुणहार्यो ह्ययमो जन। ५/६, पृ० २६५
(ग) वयमर्थैः परित्यक्ता, ननु त्यक्तैव सा मया। ५/६

करुण-रस—अभीष्ट की हानि से शोक का आविर्भाव होता है और इसके चित्रण के द्वारा सहृदय-सामाजिकों को करुण रस का आस्वादन हुआ करता है। प्रथम अंक में चारुदत्त के वैभव-नाश और निर्धन अवस्था का करुण चित्राकन किया गया है। यथा—

(क) सुखात् यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृत: स जीवति।[1]

(ग) दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्॥[2]

इसी प्रकार संवाहक के भूमिपतन में[3], अलंकारों के चोरी चले जाने का समाचार सुनकर धूता की मूर्च्छा[4], तदनन्तर गणिका वसन्तसेना की मूर्च्छा[5], चारुदत्त के प्राणदण्ड की घोषणा होने पर मैत्रेय और रोहसेन के रुदन[6], धूता के

---

१. १/१०

२. १/११

३. संवाहक—णिवु पडदि (संस्कृत छाया—शिरः पतति)। (इति भूमौ पतति) उ भौ वहुविधं ताडयतः) । द्वितीय अङ्क, पृ० १०६

४. ·········कि तु जो सो वेस्साजणकेरको अलंकारओ, सो अवहिदो।
संस्कृत छाया—किन्तु यः स वेश्याजनस्य अलंकारकः, सोऽपहृतः (वधू मोहं नाटयति)। तृतीय अंक, पृ० १८२

५. (क) मदनिका—(निरूप्य) दिट्ठपुरुव्वो विअ अअं अलकारओ। ता भणेहि कुदो दे एसो?।
संस्कृत छाया—दृष्टपूर्व इवायमलङ्कार। तद्भण कुतस्ते एषः?।
(ख) शर्विलक—आर्ये प्रभाते मया श्रुत श्रेष्ठि-चत्वरे यथा सार्थवाहस्य चारुदत्तस्य इति। (वसन्तसेना मदनिका च मूर्च्छां नाटयतः)।
(ग) वसन्तसेना—(संज्ञा लब्ध्वा) अम्महे। पच्चुवजीविदम्हि।
संस्कृत छाया—अहो! प्रत्युपजीवितास्मि। चतुर्थ अंक, पृ० २०४-२०६

६. (क) दारक—हा ताद! हा आवुक।·······अरे रे चाण्डाला, कहिं मे आवुकं णेध? ता कीस मारेध आवुकं। वावादेध मं, मुञ्चध आवुकं।
संस्कृत छाया—हा तात! हा आवुक! ·· ···अरे रे चाण्डाला। कुत्र मम पितरं नयत?·······तत् केन (किमर्थं) मारयत आवुकम्?·······व्यापादयत माम्, मुञ्चत आवुकम् (पितरम्)। दशम अंक, पृ० ५३४-५३८
(ग) विदूषक—हा पिअवअस्स। कहिं मए तुमं पेक्खिदव्वो?·······भो भद्दमुहा! मुञ्चध पिअवअस्सं चारुदत्तं, मं वावादेध।
संस्कृत छाया—हा प्रियवयस्य! कस्मिन् मया त्वं प्रेक्षितव्यः? भो भद्रमुखाः! मुञ्चत प्रियवयस्यं चारुदत्तम्। मां व्यापादयतम्। दशम अंक, पृ० ५३४-५३६
(ग) (पुत्रं मित्रञ्चवीक्ष्य)—हा पुत्र! हा मैत्रेय! (सकरुणम्) भोः। कष्टम्।
चिरं खलु भविष्यामि परलोके पिपासितः।
अत्यल्पमिदमस्माकं निवापोदकभोजनम्॥ १०/१७

अग्नि-प्रवेश की बात सुनकर चारुदत्त के मूर्च्छित होने[1] इत्यादि के वर्णनों में करुण रस की अभिव्यञ्जना हुई है। जब शकार वसन्तसेना का गला घोंट देता है और वह मूर्च्छित होकर गिर जाती है, तब विट ने शोकनिमग्न होकर जो विलाप किया है, उसमें तो करुण रस का अत्यन्त सुन्दर परिपाक दृष्टिगोचर होता है। यथा—हा आभूषणों को अलंकृत करने वाली, सुन्दर मुख वाली, लीला-रसोद्भासिनी, सुजनता की नदी, हासपुलिने, हा मुझ जैसों की चिराश्रितभूत, उदारता रूपी जल की नदी विलुप्त हो गई, रति अपने देश (स्वर्ग) को चली गई। हाय कामदेव का बाजार (हाट) तथा सौभाग्यरूपी विक्रेय द्रव्य की निधि नष्ट हो गई।[2]

हास्य रसः—हास्य और व्यंग्य की दृष्टि से मृच्छकटिक का संस्कृत नाटकों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। शूद्रक ने अनेक प्रकार से हास्य-व्यञ्जना का प्रयास किया है। यथा—

(१) विनोदी तथा हास्यप्रिय पात्रों द्वारा,
(२) विनोदपूर्ण परिस्थितियों की उद्भावना द्वारा,
(३) व्यङ्ग्योक्तियों और अद्भुत प्रश्नोत्तरों द्वारा।

विदूषक और शकार के अनेक कार्यों एवं संवादों द्वारा समस्त प्रकरण में हास्य की व्यञ्जना हुई है। किन्तु विदूषक के हास्योत्पादक कार्य शकार की भाँति मूर्खतापूर्ण नहीं हैं। मैत्रेय विदूषक हास-परम्परा का प्रतिनिधि है और इसी कारण उसके चारित्रिक गुण हास्योत्पादक हैं। विदूषक की भीरुता भी परिहास का विषय बनती है।[3] देवताओं को बलि चढ़ाने के लिए वह सायंकाल घर से

---

१. (क) चारुदत्त—(सोद्वेगम्) हा प्रिये ! जीवत्यपि मयि किमेतत् व्यवसितम्। (ऊर्ध्वमवलोक्य दीर्घं निश्वस्य च)। दशम अङ्क, पृ० ५६०
(ख) द्रष्टव्य १०/५५

२ दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रतिः
हा हालङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि।
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा मादृशामाश्रये।
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः ॥ ८/३८

३. विदूषक—भो न गमिस्सं।······मम उण बम्हणस्स सव्वं ज्जेव विपरीदं परिणमदि, आदंसगदा विअ छाआ, वामादो दक्खिणा दक्खिणादो वामा। अण्णं अ, एदाये पदोसवेलाए, इध राअमग्गे गणिआ विडा चेडा राअवल्लहा अ, पुरिसा सञ्चरन्ति। ता मण्डुअलुद्धस्स कालसप्पस्स मूसिओ विअ अहिमुहावडिदो वज्झो दाणि भविस्सं। तुमं इध उवविट्ठो किं करिस्ससि ?
संस्कृत छाया—भो. ! न गमिष्यामि।······मम पुनर्ब्राह्मणस्य सर्वमेव विपरीतं परिणमति, आदर्शगता इव छाया, वामतो दक्षिणा, दक्षिणतो वामा। अन्यच्च, एतस्यां प्रदोषवेलायाम् इह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राजवल्लभाश्च पुरुषाः सञ्चरन्ति। तत् मण्डूकलुब्धस्य कालसर्पस्य मूषिक इव अभिमुखापतितो वध्य इदानीं भविष्यामि। त्वमिह उपविष्टः किं करिष्यसि ?।
प्रथम अङ्क, पृ० ३३-३४

बाहर जाने से इन्कार कर देता है किन्तु फिर जाने के लिये बाध्य किये जाने पर वह हाथ में दीपक लेकर रदनिका दासी के साथ जाने के लिए उद्यत हो जाता है।[1]

सुस्वादु भोजन की लोलुपता प्रदर्शित कर वह हास्यास्पद बनता है। वह गत दिनों को याद कर दुःखाभिभूत होकर अपने को नगर-प्रांगण में पागुर करते हुए साँड के समान बताता है।[2] इसी स्वाद-लोलुपता के कारण वह वसन्तसेना के व्यवहार पर दुःखी होता है तथा रुष्ट होता है कि उसने उसे घर जाने पर अपनी विपुल सम्पत्ति के होने हुए भी जलपान के लिये नहीं पूछा।[3] वसन्तसेना जब चारुदत्त के घर आती है, तब वह अवसर पाकर व्यंग्यपूर्ण शैली से अपनी रुष्टता को व्यक्त करता है। वसन्तसेना के चारुदत्त के विषय में पूछने पर वह उत्तर देता है कि प्रियमित्र शुष्कउद्यान में हैं। वसन्तसेना पूछती है आप लोग शुष्कवाटिका किसे कहते हैं? तब वह व्यंग्यपूर्ण भाव से उत्तर देता है—जहाँ न खाया जाता है, न पिया जाता है।[4] वसन्तसेना व्यंग्य समझ जाती है और मुस्करा देती है। इसी

---

१. विदूषक—(सवैलक्ष्यम्) भो वअस्स ! जई मए गन्तव्व, ता एसा वि मे महाइणी रदणिआ भोदु।
संस्कृत छाया—भो वयस्य ! यदि मया गन्तव्यम्, तदेयापि मम सहायिनी रदनिका भवतु। प्रथम अंक, पृ० ६१

२. (क) हा अवत्थे ! तुलीअसि।......णअरचत्तरवुसहो विअ रोमन्थाअमाणो चिट्ठामि, सो दाणि अहं तस्स दलिद्ददाए जहिं तहिं चरिअ गेहपारावदो विअ आवासणिमित्त इध आअच्छामि।
संस्कृत छाया—हा अवस्थे ! तुलयसि। नगरचत्वरवृषभ इव रोमन्थायमानस्तिष्ठामि। स इदानीमहं तस्य दरिद्रतया यस्मिन् तस्मिन् चरित्वा गेहपारावत इव आवासनिमित्तमत्र आगच्छामि। प्रथम अंक, पृ० २१-२३

३. विदूषक—एत्तिआए वेलाए ण तव अहं भणिदो,—अज्ज मित्तेअ ! वीसमीअदु मल्लकेण पानीअं वि पिविअ गच्छीअदु त्ति। ता मा दाव दासीए धीआए गणिआए मुहं वि पेक्खिस्सं।
संस्कृत छाया—एतावत्या वेलया न तया अहं भणितः—आर्य मैत्रेय ! विश्रम्यताम्, मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यतामिति। तत् मा तावत् दास्याः पुत्र्या गणिकाया मुखमपि प्रेक्षिष्ये। पञ्चम अंक, पृ० २६०-२६१

४. (ख) विदूषक—(स्वगतम्) ही ही भो ! जूदिअरो त्ति भणन्तीए अलङ्किदो पिअवअस्सो। (प्रकाशम्) भोदि ! एसो क्खु सुक्खरुक्खवाडिआए।
संस्कृत छाया—(स्वगतम्) ही ही भो ! द्यूतकर इति भणन्त्या अलंकृतः प्रियवयस्यः भवति ! (प्रकाशम्) एष खलु शुष्कवृक्ष-वाटिकायाम्।
(ग) वसन्तसेना—अज्ज ! का तुम्हाणं सुक्ख-रुक्ख-वाडिआ वुच्चदि ?
संस्कृत छाया—आर्य ! का युष्माकं शुष्क-वृक्ष-वाटिका उच्यते ?
विदूषक—भोदि ! जहिं ण खाईअदि ण पीईअदि।
संस्कृत छाया—भवति ! यस्मिन् न खाद्यते न पीयते। पंचम अंक, पृ० २६६

अनादर की मनोभावना को लिये हुए उसने वसन्तसेना से प्रश्न किये हैं कि ऐसे घोर अन्धकार से आच्छन्न दुर्दिन में आप यहाँ किसलिये आई हैं ?[1] क्या आप इसी घर में आज सोयेंगी ?[2]

मैत्रेय के समान शकार के चरित्र में भी ऐसी विशेषताएँ हैं, जो हास पैदा करती हैं। अन्य नाटकीय शठों के समान वह भी मूर्ख तथा भीरु है। इस प्रकरण में शकार के मूर्खतापूर्ण कार्यों से हास्य की योजना की गई है। शकार का दम्भ उसे स्थान-स्थान पर उपहास का पात्र बनाता है। वह अपना परिचय मेरी बहिन के पति राजापालक के श्यालक के रूप में देता है और अपने को प्रधान पुरुष मानता है।[3] शकार राक्षसी आदि के नाम से डरता है, इसीलिये प्रवहण-विपर्यय के कारण वसन्तसेना के शकार के पास पहुँच जाने पर विट शरणागता की रक्षा करने के लिये उसे 'गाडी मे राक्षसी बैठी हुई है', कहकर डराता है।[4] वसन्तसेना के चारुदत्त के घर में घुस जाने पर विदूषक के माध्यम से चारुदत्त को धमकियाँ देने के बाद वह तलवार को कन्धे पर रख कर भय से युक्त हो वैसे ही भाग

---

१. विदूषक—(प्रकाशम्) अध किं णिमित्त उण ईदिसे पणट्टचन्दालोए दुद्दिण अन्धआरे आअदा भोदी ?
संस्कृत छाया—अथ किं निमित्तं पुनरीदृशे प्रनष्टचन्द्रालोके दुर्दिनान्धकारे आगता भवती। पंचम अंक, पृ० २९९

२. हञ्जे ! किं भोदीए इध ज्जेव सुविदव्वं ?
संस्कृत छाया—हञ्जे। किं भवत्या इहैव स्वप्तव्यम्। पंचम अंक, पृ० ३०७

३. (क) हग्गे वलपुलिशे मणुश्शे वाशुदेवे लट्ठिअशाले लाअशाले वज्जत्थी।
संस्कृत छाया—अहं वरपुरुषः मनुष्यः वासुदेवः राष्ट्रियश्यालः राजश्यालः कार्यार्थी। नवम अंक, पृ० ४५९

(ख) लाअशशुले मम पिदा लाआ तादश्श होइ जामादा।
लाअशिआले हग्गे ममावि बहिणीवदी लाआ॥
संस्कृत छाया—राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालोऽहं ममापि भगिनीपतिः राजा॥ ९/६

(ग) शकार—णहि णहि, पवहणं अहिलुहिअ गच्छामि। जेण दूलदो मं पेक्खिअ भणिश्शन्ति, एशे शे लट्ठिअशाले भट्टालके गच्छदि। ...... (सहर्षम्) भावे ! भावे ! मं पवलपुलिश मणुश्शं वाशुदेवक ?
संस्कृत छाया—नहि नहि, प्रवहणमधिरुह्य गच्छामि। येन दूरतो मां प्रेक्ष्य भणिष्यन्ति—'एष स राष्ट्रियश्यालो भट्टारको गच्छति।' ...... (सहर्षम्) भाव ! भाव ! मां प्रवरपुरुषं मनुष्यं वासुदेवक। अष्टम अंक, पृ० ४०३

४. विट—काणेलीमातः ! नन्व राक्षसेवात्र प्रतिवसति। अष्टम अंक, पृ० ४०१

जाता है, जैसे कुत्तों के पीछे लगने पर शृगाल भाग जाते हैं।[1]

शकार की निर्ममता भी परिहास उत्पन्न करती है, किन्तु वह परिहास भयावह होता है। वसन्तसेना का गला घोंटने के बाद वह अपनी बहादुरी का दम्भ भरता है और विट से शान्तभाव से प्रस्ताव करता है—आओ चलें, कमल से परिपूर्ण उस जलाशय में जलक्रीडा करें।[2] अन्त में जब उसकी निर्मम हत्या का रहस्योद्घाटन हो जाता है और उसी के प्राण संकट में पड़ जाते हैं, तब वह वसन्तसेना से इस प्रकार प्रार्थना करता है—हे गर्भदासीपुत्री, प्रसन्न हो जाओ, अब मैं फिर तुम्हें नहीं मारूंगा, मेरी रक्षा करो। शकार का अनुनय-विनय-पूर्ण यह कथन कितना व्यंग्यपूर्ण हास उत्पन्न करता है।[3]

इस प्रकार मैत्रेय विदूषक का हास्य जितना व्यंग्यपूर्ण दृष्टिगोचर होता है, शकार का हास उतना ही हास्यास्पद तथा कठोरता से पूर्ण होता है।

विदूषक और शकार के अतिरिक्त अन्य पात्रों में से अन्यतम जुआरी दर्दुरक द्वारा उत्पन्न हास वस्तुतः सर्वथा विशुद्ध हास माना जा सकता है, क्योंकि उसमें न मैत्रेय विदूषक का-सा व्यंग्य है और न शकार की सी निष्ठुरता है। उसकी

---

१ (क) शकार—अले ले दुट्ठवडुका ! भणेशि मम वअणेण त दलिद्दचालुदत्तकं एशा शगुवण्णा शहिलण्णा एव-णाड़अदशणुट्ठिदा शुत्तधालिव्व वशन्तशेणा णाम गणिआदालिआ······तुह गेहं पविट्ठा। ता जइ मम हत्थे शअं ज्जेव पट्ठाविअ एणं शमप्पेशि, तदो······पीदी हुविश्शदि। आदु अणिज्जादमाणाह आमणणान्तिके वेले हुविश्शदि।

संस्कृत छाया—अरे रे दुष्टवटुक ! भणिष्यसि मम वचनेन त दरिद्रचारुदत्तकम्। एषा ससुवर्णा-सहिरण्या नव-नाटक-दर्शनोत्थिता सूत्रधारीव वसन्तसेना नाम गणिकादारिका······तव गेहं प्रविष्टा। तद् यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्य एना समर्पयसि, ततो प्रीतिर्भविष्यति। अथवा अनिर्यातयत आमरणान्तकं वैरं भविष्यति। प्रथम अंक, पृ० ७८

(ख) द्रष्टव्य वही, १/५२

णिव्वक्कलं मूलकपेशिवण्णं खन्धेण घेत्तूण अ कोशमुत्ता।
कुक्कुलेहिं कुक्कीहिं अ बुक्कअन्ते जधा शिआले शलणं पलामि॥

संस्कृत छाया—निर्वल्कलं मूलकपेशिवर्णं स्कन्धेन गृहीत्वा च कोषमुक्तम्
कुक्कुरैः कुक्कुरीभिश्च बुक्कयमानो यथा शृगालः शरणं पलाये॥ १/५२

२. शकारः—भावे ! पशीद पशीद। एहि णलिणीए पविशिअ कीलम्ह।

संस्कृत छाया—भाव ! प्रसीद प्रसीद ! एहि, नलिन्या प्रविश्य क्रीडावः।

अष्टम अंक, पृ० ४३६

३ गब्भदाशीधीए ! पशीद पशीद, ण पुण मालइश्शं, ता पलित्ताआहि।

संस्कृत छाया—गर्भदासीपुत्रि ! प्रसीद प्रसीद, न पुनर्मारयिष्यामि, तत् परित्रायस्व। दशम अंक, पृ० ५८७-५८८

निर्धनता ने न तो उससे उसका द्यूत-प्रेम छीना है और न उसके मन में कटुता ही उत्पन्न की है। अत्यन्त विनोद-पूर्ण ढंग में वह जुए की सराहना करता हुआ कहता है—अजी! जुआ मनुष्यों का बिना सिंहासन का राज्य है। जुए के कारण ही मैंने धन, स्त्री तथा मित्र प्राप्त किये हैं और जुए से ही मैंने अपना सर्वनाश भी कर डाला है।[1] इसी प्रकार वह विनोद पूर्ण मनोभंगी में फटे, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र उत्तरीय को देखकर उसके प्रति सहजभाव से कहता है—इस वस्त्र के सूत्र छिन्न-भिन्न हो गये हैं। यह वस्त्र सैकड़ों छिद्रों से विभूषित है। यह वस्त्र देह ढकने में समर्थ नहीं हो सकता है। अत यह वस्त्र संपुट रूप में ही सुशोभित होता है।[2]

शर्विलक के चरित्र में भी हास का पुट है, जो सन्धिच्छेद के प्रसंग में दृष्टि-गोचर होता है।[3]

मृच्छकटिक में विनोदपूर्ण परिस्थितियों की उद्भावना द्वारा भी हास्य की योजना दृष्टिगोचर होती है। द्वितीय अंक में द्यूतकरों के झगड़े में हास्य रस की झलक दिखलाई पड़ती है। सभिक माथुर एक अन्य द्यूतकर के साथ जुए में हारे हुए संवाहक का पीछा करता है। संवाहक उनसे बचने के लिए अनेक हास्यास्पद चेष्टाएँ करता है। वह उल्टे कदम चलकर एक समीपस्थ मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है और उसमें रखी प्रतिमा के सामने ऐसे निश्चल भाव से खड़ा हो जाता है कि माथुर और दूसरा द्यूतकर दोनों उसे पत्थर की मूर्ति समझ बैठते हैं।[4]

---

१. (क) भो! द्यूत हि नाम पुरुषस्य असिंहासन राज्यम्। द्वितीय अङ्क, पृ० ११३

(ख) न गणयति पराभवं कुतश्चिद् हरति ददाति च नित्यमर्थजातम्।
नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन। २/७

(ग) द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव दारा मित्रं द्यूतेनैव।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव॥ २/८

२. अय पटः सूत्रदरिद्रतां गतो ह्ययं पटश्छिद्रशतैरलङ्कृतः।
अयं पटः प्रावरितुं न शक्यते ह्ययं पटः संवृत एव शोभते॥ २/१०

३. (क) कृत्वा शरीर-परिणाह-सुखप्रवेशं शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम्।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः॥ ३/६

(ख) वही, द्रष्टव्य ३/१३ तथा तृतीय अंक पृ० १६० गद्यांश।

४. संवाहक—ता जाव एदे सहिअ-जूदिअरा अण्णदो मं अण्णेसन्ति, ताव इदो विप्पदीवेहिं एव्व सुण्णदेउलं पविसिअ देवी भविस्सं।
संस्कृतछाया—तद्यावद् एतौ सभिकद्यूतकरौ अन्यतो मामन्विष्यतः, तावद् इतो विपरीताभ्यां पादाभ्यामेतत् शून्यदेवकुलं प्रविश्य देवी भविष्यामि।
द्वितीय अङ्क, पृ० १०३

(ख) (उभौ देवकुलप्रवेशं निरूपयतः। दृष्ट्वा अन्योन्यं संज्ञाप्य)
द्यूतकर—कथं कट्ठमई पडिमा?

(शेष अगले पृष्ठ पर)

माथुर और अन्य जुआरी दोनों मन्दिर में ही जुआ खेलने बैठ जाते हैं। संवाहक उनको खेलता देखकर अपने को रोक नहीं पाता और प्रतिमा का छद्म रूप छोड़कर जुआ खेलने के लिये सामने प्रकट हो जाता है। जुआ अनिष्टकारी है, यह समझते हुए भी वह अपने पर नियन्त्रण नहीं कर पाता।[1] इस हासपूर्ण दृश्य में संवाहक का भोलापन उस समय करुणापूर्ण स्थिति को उत्पन्न कर देता है, जब उसे माथुर की कड़ी यातना सहनी पड़ती है। किंतु दर्दुरक के आगमन के कारण परिस्थिति बदल जाती है और हास विशद बन जाता है क्योंकि सभी जुआरियों में परस्पर कटु वाक्यों का आदान-प्रदान होता है।[2] इस सम्पूर्ण दृश्य की समाप्ति तो और भी अधिक मनोरंजक बन जाती है। संवाहक भागकर वसन्तसेना के घर में घुस जाता है। वसन्तसेना उसकी करुण-कहानी सुनकर उसे उऋण करने के लिये अपनी दासी के हाथ सभिक के पास स्वर्ण-कंकण भेजती है। चेटी बाहर निकलकर देखती है कि दो जुआरी संवाहक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब वह उन्हें नमस्कार करके उन दोनों में से कौन सभिक है यह पूछती है, तब सभिक माथुर यह सोचकर कि वह वेश्या के लिये ग्राहक ढूंढने के लिए द्वार पर आई है, प्रत्युत्तर देता है कि 'हे कृशोदरि ! तुम कौन हो ? जो सुरत के समय नायक के क्षत-विक्षत ओष्ठों में ऐसी ऐसी मनोहर वाणी निकालती हो तथा मनोहर कटाक्ष से

(पिछले पृष्ठ का शेष)

माथुर—अले ! णहु णहु ! शैलपडिमा (इति बहुविधं चालयति। संज्ञाप्य च) एव्वं भोदु। एहि जूदं किलेम्ह।

संस्कृत छाया—द्यूतकर—कथं काष्ठमयी प्रतिमा ?

सभिक—अरे ! न खलु न खलु। शैलप्रतिमा। एवं भवतु, एहि द्यूतं क्रीडावः।

द्वितीय अंक, पृ० १०६

१. (क) द्यूतकर—मम पाठे मम पाठे।

माथुरः—णहु ! मम पाठे मम पाठे।

संवाहकः—(अन्यत महसोपामृत्य) णं मम पाठे।

संस्कृतछाया—द्यूतकरः—मम पाठे मम पाठे।

माथुर—न खलु ! मम पाठे।

संवाहक :—ननु मम पाठे। द्वितीय अंक, पृ० १०८

(ख) जाणामि ण कीलिस्सं सुमेरु-सिहल-पडण-सण्णिहं जूदं।

तह वि हु कोइलमहुरे कत्ताशद्दे मण हलदि॥ वही, २/६

संस्कृतछाया—जानामि न क्रीडिष्यामि सुमेरु-शिखर-पतन-सन्निभं द्यूतम्।

तथापि खलु कोकिलमधुरः कत्ताशब्दो मनो हरति॥ २/६

२. वही, द्वितीय अंक, पृ० ११०-१२३

देखती हो ? हमारे पास धन नहीं है, दूसरे के पास जाओ।" इस प्रकार इस दृश्य में हास की योजना कितनी अनूठी बन गई है।

हास्योत्पादक अन्य परिस्थितियाँ मदनिका-शर्विलक मिलन के प्रसंग में,[1] सन्धिच्छेद वाले प्रसंग में तथा न्यायालय में शकार मैत्रेय की मारपीट वाले प्रसंग में चित्रित हुई हैं। वसन्तसेना की अत्यन्त मोटी माता के वर्णन से हास्य का उद्रेक होता है। दर्दुरक का माथुर की आँखों में धूल डालना और वीरक तथा चन्दनक का परस्पर जाति सूचक संकेत देना आदि हास्योत्पादक घटनाएँ हैं।

श्लेष तथा शाब्दिक वैदग्ध्य के द्वारा और व्यग्योक्तियों के द्वारा भी हास्य-अभिव्यञ्जना हुई है। यथा सेना तथा वसन्त पदों को उलट कर जोड़ने के निर्देश को मैत्रेय अन्यथा समझ लेता है—सेणावसन्ते। चेट कहता है—णं पलिवत्तिअ भणाहि। मैत्रेय अपने शरीर से घूमकर (कायेन परिवृत्य) सेणावसन्ते कहता है। चेट कहता है—अले मुक्ख वडुका। पदाइं पलिवत्तावेहि। तब विदूषक अपने पैर बदल लेता है—(पादौ परिवर्त्य) और सेणावसन्ते शब्द दोहराता है।[3] इस प्रकार यहाँ विदूषक की मूर्खता और पग-परिवर्तन करके सेणावसन्ते कहने में हास्य रस की उद्भावना होती है।

अष्टम अंक में बौद्ध भिक्षु ने शकार को जब उपासक कहकर सम्बोधित किया, तब शकार उसका अर्थ नाई समझकर क्रुद्ध हो उठता है। जब वह शकार को धन्यवाद देता है, तब वह 'धन्य' और 'पुण्य' आदि शब्दों में चारण, जुआरी,

---

१. माथुरः (क) कस्स तुमं तणुमज्झे। अहरेण रद-दट्ठ-दुव्विणीदेण।
जप्पसि मणोहल-वअण आलोअन्ती कडक्खेण॥
संस्कृत छाया—कस्य त्वं तनुमध्ये ! अधरेण रत-दष्टदुर्विनीतेन।
जल्पसि मनोहरवचनमालोकयन्ती कटाक्षेण॥ २/१६
(ख) णत्थि मम विहवो, अन्यत्र व्रज।
संस्कृत छाया—नास्ति मम विभव, अन्यत्र व्रज। द्वितीय अंक, पृ० १३४
२. (क) ४/६, १०, ११, १२, १६, १७।
(ख) आः दुरात्मन् नाट्यस्तहतक ! अथ न भवति ? (इति कतिचित् पदानि गच्छति)। चतुर्थ अंक, पृ० २१२
३. संस्कृत छाया—विदूषकः—सेनावसन्ते।
चेटः—ननु परिवर्त्य भण।
विदूषकः—(कायेन परिवृत्य) सेनावसन्ते।
चेट —अरे मूर्ख बटुक। पदे परिवर्तय।
विदूषक —(पादौ परिवर्त्य) सेनावसन्ते।
चेटः—अरे मूर्ख अक्षरपदे परिवर्तय।
विदूषकः—(विचिन्त्य) वसन्तसेना। पञ्चम अङ्क, पृ० २५२

कुम्हार आदि विभिन्न अर्थ ग्रहण कर लेता है।[1] इस प्रकार श्लेष से हास्य की उद्भावना हुई है।

कहीं कहीं शब्दों की आड़ में प्रहेलिका का आधार लिया गया है जैसे वसन्तसेना के आगमन की बात समझाने के लिये उसका चेट विदूषक को पहेली बुझाता है यथा—सम्पत्तिशाली नगरों की रक्षा कौन करता है और आम्र में मंजरियाँ कब लगती हैं।[2]

षष्ठ अंक में वीरक तथा चन्दनक ने एक दूसरे की जाति के बोधनार्थ इसी प्रकार की प्रहेलिका का सहारा लिया है।[3]

शकार के कथनों में भी हास्य की जो अवतारणा हुई है, वस्तुतः वह शब्दों का ही खिलवाड़ है। वह पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग का बहुत अधिक शौकीन प्रतीत होता है। यथा वह सदैव अपने को देव-पुरुष-मनुष्य की उपाधि से विभूषित

---

१. भिक्षु:—शाअद ? पशीददु उवाशके।
शकार.—भावे ! पेक्ख पेक्ख, आक्कोशदि।
विठ.—किं ब्रवीति ?
शकारः—उवाशके त्ति मं भणादि। किं हग्गे णाविदे ?
भिक्षु:—तुमं धण्णे, तुमं पुण्णे।
शकार.—भावे ! धण्णे पुण्णे त्ति म भणादि। किं हग्गे शालावके, कोश्टके, कोम्भकले वा ?
संस्कृत छाया:—भिक्षु.—स्वागतम्। प्रसीदतु उपासकः।
शकार.—भाव ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व, आक्रोशति।
विटः—किं ब्रवीति ?
शकार.—उपासक इति मां भणति। किमहं नापितः ?
भिक्षु:—त्वं धन्यः, त्वं पुण्यः।
शकारः—भाव ! धन्यः पुण्य इति मां भणति। किमहं श्रावक, कोष्ठकः कुम्भकारो वा। अष्टम अङ्क, पृ० ३७७-३७८

२. (क) चेट.—अरे जाणाहि दाव, तेण हि कस्सिं काले चुआ मोलेन्ति ?
सस्कृत छाया—अरे जानीहि तावत्, तेन हि कस्मिन् काले चूता मुकुलयन्ति।
पंचम अंक, पृ० २७०

(ख) चेट.—दुदिअं दे पण्हं दइस्सं। सुसमिद्धाणं गामाणं का लक्खअं कलेदि।
संस्कृत छाया—द्वितीयं ते प्रश्नं दास्यामि। सुसमृद्धानां ग्रामाणां का रक्षां करोति। पञ्चम अंक, पृ० २७१

३. वही, षष्ठ अंक, पृ० ३५०-३५३

करता है।[1] वसन्तसेना के लिये उसने दस समानार्थक विशेषण प्रयुक्त किये हैं।[2] पौराणिक पात्रों को गलत ढंग से उद्धृत करता है। यथा वह भय से भागती वसन्तसेना को देखकर 'रावण के द्वारा कुन्ती के सताये जाने तथा राम से डरी हुई द्रौपदी की अनर्गल बात कहता है।[3] और रदनिका के केश पकड़ लेने पर चाणक्य के द्वारा द्रौपदी के केश-कर्षण का कथन करता है[4]। इस प्रकार शकार के समस्त पौराणिक प्रयोग हास्योत्पादन करते हैं।

वाग्वैदग्ध्य से हास्योत्पादन करने में विदूषक अधिक चतुर है। यथा संस्कृत पढ़ती हुई स्त्री के लिये वह नवनासिकाछिद्रित गाय के 'सू-सू' शब्द करने की उपमा देता है।[5] वेश्या को जूते में पड़ी हुई कंकड़ी के समान बताता है, जो जूते से शीघ्र बाहर नहीं निकल पाती।[6] वसन्तसेना की माता को देखकर कहता है—अरे इस अपवित्र-पिशाचिनी का पेट कितना बड़ा है। क्या इसे प्रविष्ट कराकर शिवजी के समान इस घर की द्वार-शोभा का निर्माण हुआ है ?[7] चेटी के द्वारा यह बताये जाने पर कि वृद्धा माता चातुर्थिक से पीड़ित है, मैत्रेय परिहास के साथ कहता है—हे भगवान् चातुर्थिक। इसी उपचार से मुझ ब्राह्मण की ओर भी दृष्टि

---

१ शकार —(सखेदम्) भावे ! भावे ! मं पवलपुलिश मणुश्शं वाशेदेवकं ?
संस्कृत छाया—भाव ! भाव ! मा प्रवरपुरुषं मनुष्य वासुदेवकम्।
अष्टम अंक, पृ० ४०३

२. द्रष्टव्य १/२३

३ (क) मम वशमणुजादा लावणश्शेव कुन्ती। १।२१
संस्कृत छाया—मम वशमनुजाता रावणस्येव कुन्ती। १।२१
(ख) किं दोवदी विअ पलाअशि लामभीदा।
संस्कृतछाया—किं द्रौपदीव पलायसे रामभीता। १।२५

४. केशविन्दे पलामिट्ठा चाणक्केणेव्व द्रौपदी।
संस्कृतछाया—केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी। १।३६

५ ''' इत्थिआ दाव सक्कदं पठन्ती, दिण्ण-णवणस्स विअ गिट्ठी, अहिअं सुसुआ-आदि।
संस्कृतछाया—स्त्री तावत् संस्कृतं पठन्ती दत्त-नव-नास्या इव गृष्टि:, अधिकं सुसूयते। तृतीय अंक, पृ० १४८

६ गणिआ णाम, पादुअन्तर-प्पविट्ठा विअ लट्ठुआ दुक्खेण उण णिराकरीअदि।
संस्कृतछाया—गणिका नाम, पादुकान्तर प्रविष्टा इव लेष्टुका, दुःखेन पुनर्निराक्रियते। पंचम अंक, पृ० १६३

७. अहो ! से अपवित्तडाइणीए पोट्टवित्थारो। ता किं पवेसिअ महादेवं विअ दुआर-सोहा इध घरे णिम्मिदा।
संस्कृत छाया—अहो अपवित्रडाकिन्या उदरविस्तार। तत् किं एता प्रवेश्य महादेवमिव द्वारशोभा इह गृहे निर्मिता। चतुर्थ अंक, पृ० २४४

इसलिये।[1] फिर कहता है कि शुभ्र एवं विशाल उदर वाले का मर जाना ही उत्तम है। यदि यहाँ इनकी मृत्यु हो जाए तो हजारों शृगालों का भोजनोत्सव हो जाए।[2] वसन्तसेना के भाई को रेशमी वस्त्र तथा चमकीले आभूषणों से सुसज्जित तथा सानन्द घूमते देखकर विदूषक कहता है—अहो कितना तप करने से यह वसन्तसेना का भाई हुआ है।[3] मैत्रेय का परिहास वेश्याओं और उनके परिजनों के विषय में कटु व्यंग्योक्ति का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

इस प्रकार मृच्छकटिक प्रकरण में चरित्रगत, परिस्थितिगत तथा शाब्दिक वैदग्ध्य एवं व्यंग्योक्तिगत हास्य की व्यञ्जना की गई है। वस्तुत मृच्छकटिक संस्कृत के उन सर्वोत्तम रूपकों में अन्यतम है, जिसमें हास्यरस की अत्यधिक अभिव्यञ्जना हुई है। सभवत मृच्छकटिककार को हास्य-रस विशेष प्रिय है, इसीलिये प्रस्तावना में भी हास्य का पुट दिखाई देता है।

अन्य रस—मृच्छकटिक की कथावस्तु इस प्रकार की है कि इसमें शृंगार, हास्य और करुण रसों के अतिरिक्त यथास्थान अन्य रसों की भी झलक मिलती है। खुण्टमोटक हाथी की भगदड में भयानक रस उपस्थित हो जाता है। अष्टम अंक के प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षु की उक्तियों में शान्त रस प्रवाहित होने लगता है। शर्विलक की उक्तियों में युद्धवीर की तथा चारुदत्त के वर्णन में दानवीर की झलक मिलती है। मतवाले गजराज से कर्णपूरक द्वारा भिक्षु की रक्षा किये जाने

---

१. (क) (सपरिहासम्) भअवं! चाउव्विअ! एदिणा उवआरेण म वि बम्हणं आलोएहि।

संस्कृत छाया—भगवन्! चातुर्वेदिक! एतेनोपचारेण मामपि ब्राह्मणमालोकय।

(ख) वरं ईदिसो सूण-पीण-जठरो मुदो ज्जेव।

संस्कृत छाया—वरं ईदृश सूनपीनजठरो मृत एव। चतुर्थ अंक, पृ० २४५

२. जइ मरइ एत्थ अनिआ भोदि सिआल-सहस्स जत्तिआ।

संस्कृत छाया—यदि म्रियते अत्र माता भवति शृगालसहस्रयात्रा। ४/२६

३. (क) (प्रविश्यालोक्य च) भोदि! को एसो पट्टपावारअपाउदो अधिअदरं अच्चब्भुद पुणरुत्तालङ्कारालङ्किदो अङ्गभङ्गेहि परिक्खलन्तो इदो तदो परिब्भमदि।

संस्कृत छाया—भवति! क एष पट्टप्रावारकप्रावृत्त. अधिकतरमत्यद्भुतपुनरुक्तालङ्कारालंकृत अङ्गभङ्गैः परिस्खलन्नितस्ततः परिभ्रमति।

चतुर्थ अंक, पृ० २४३

(ख) केत्तिअं तवच्चरणं करिअ वसन्तसेणाए भादा भोदि। अधवा मा दाव, जइ वि एसो उज्जलो सिणिद्धो सुअन्धोह, तह वि समाणजीधीए जादो विअ चम्पअरुक्खो अणहिगमणीओ लोअस्स।

संस्कृत छाया—कियत् तपश्चरणं कृत्वा वसन्तसेनाया भ्राता भवति। अथवा मा तावत्, यद्यपि एष उज्ज्वल स्निग्धश्च, सुगन्धश्च तथापि श्मशानवीथ्या जात इव चम्पकवृक्ष अनभिगमनीयो लोकस्य। चतुर्थ अंक, पृ० २४३-२४४

के वर्णन मे अद्भुत रस देखने को मिलता है। इस प्रकार मृच्छकटिक मे प्राय: सभी रसो का सुन्दर सन्निवेश हुआ है।

मृच्छकटिक मे प्रयुक्त वृत्तियाँ—

नाटकादि मे नायक-नायिका आदि की जो रसानुरूप चेष्टा (व्यापार) होती है, वही नाट्यशास्त्र मे वृत्ति कही जाती है। यह वृत्ति चार प्रकार की होती है— भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी। भारती वृत्ति का वाचिक व्यापार से ही सम्बन्ध है, अतः श्रव्य-काव्य इसी मे अन्तर्भूत होते हैं। इसके चार अंग हैं— प्ररोचना, वीथि, प्रहसन और आमुख।

सात्वती, कैशिकी और आरभटी तीनों वृत्तियाँ नायक-नायिका आदि की कायिक और मानसिक चेष्टाओं से सम्बन्ध रखती हैं तथा अर्थवृत्ति कहलाती हैं। शृंगार रस मे कैशिकी, वीर मे सात्वती और रौद्र तथा बीभत्स रस मे आरभटी वृत्ति का प्रयोग किया जाता है। भारती वृत्ति का सभी रसों के साथ प्रयोग होता है।[1]

मृच्छकटिक शृगार-रस-प्रधान प्रकरण है, अत. यहाँ मुख्य रूप से कैशिकी वृत्ति का प्रयोग किया गया है। यह कोमल वृत्ति है। इसमे नृत्य, गीत, विलास आदि शृगारिक चेष्टाएँ हुआ करती हैं। इसमें माधुर्यगुण का पुट रहता है। मृच्छकटिक के प्रथम अक मे नायक-नायिका की विलासपूर्ण चेष्टाओ का वर्णन किया गया है। तृतीय अंक मे संगीत का रोचक वर्णन है। चतुर्थ अंक मे चित्र-आलेखन तथा पञ्चम अंक मे कामोपभोग से सम्बद्ध बहुविध क्रिया-कलापों का वर्णन किया गया है। अन्तिम अंकों मे वर्णित क्रिया-कलापो मे भी काम-फल की प्राप्ति ही प्रदर्शित की गई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ कैशिकी वृत्ति की प्रधानता है।

शर्विलक की वीर-रस प्रधान चेष्टाओ मे सात्वती वृत्ति है और शकारकृत वसन्तसेना-कण्ठ-निपीडन अथवा मोटन मे आरभटी वृत्ति स्वीकार की जा सकती है। आरभटी वृत्ति मे ओजगुण प्रधान होता है। शकारकृत चेष्टायें तथा उग्र-आगिक अभिनय सर्वथा इस वृत्ति के अनुरूप हैं।

मृच्छकटिक मे भावचित्रण और वर्णन-वैशिष्ट्य—

संस्कृत रूपकों मे रमणीय प्रदर्शनीयता के साथ-साथ ऐसे चित्र भी सजाये जाते रहे हैं जो काव्यात्मक सौंदर्य से अनुप्राणित हों। क्योंकि रूपक प्रारम्भ से ही एक प्रकार का काव्य माना जाता रहा है।

---

१ शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुन.।
रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्ति सर्वत्र भारती ॥ साहित्यदर्पण ६/१२२
चतस्रो वृत्तयो ह्येता: सर्वनाट्यस्य मातृका.।
स्युर्नायिकादिव्यापारविशेषा नाटकादिषु ॥ वही, ६/१२३

भावों की सुन्दर वर्णना ने मृच्छकटिक प्रकरण के काव्यात्मक-सौंदर्य में अभूतपूर्व वृद्धि की है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कवि शूद्रक ने इसमें मानवीय-भावों का स्वाभाविक चित्रण किया है। चारुदत्त जैसा अत्यन्त उदारहृदय व्यक्ति अपने वैभव और सम्पत्ति के नष्ट हो जाने के कारण चिन्ताकुल नहीं है, उसे तो केवल इस बात का सन्ताप है कि वैभव नष्ट हो जाने से मित्रों की मित्रता तथा समागम भी शिथिल हो जाते है।[1]

शर्विलक चौर्य-कार्य के सम्बन्ध में सोचता है कि चोरी को लोग भले ही निन्दनीय कहें किन्तु यह तो स्वतन्त्र व्यवसाय है, इसमें दासता का अभाव है और द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा जैसे महारथी ने भी चोरी का मार्ग हमें दिखाया है।[2]

कवि ने चोर के संदेहग्रस्त मनोगतभाव का बड़ा स्वाभाविक एवं सुन्दर वर्णन भी किया है कि तीव्रगति वाला जो कोई मुझे देख लेता है या घबराकर खड़े हुए मेरे पास शीघ्रता से आ जाता है, मेरा यह सशङ्कित हृदय उन सबको संदिग्ध दृष्टि से देखने लगता है। वस्तुत मनुष्य अपने दोषों के कारण शङ्कित हो जाता है।[3]

नारी के हृदयगत भावों के चित्रण में तो मृच्छकटिककार को अत्यधिक सफलता मिली है। दुर्दिन में अभिसरण करने वाली वसन्तसेना को निशा सपत्नी के समान प्रिय-समागम में बाधक प्रतीत होती है अतः वह उसे बड़े मधुर ढंग से उपालम्भ देती है।[4] बगुलों की बोली उसे घाव पर नमक छिड़कने के समान

---

१. (क) सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता, भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य, यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति॥ १/१३
(ख) निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम्।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात्परिभवो हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च॥ १/१५

२. काम नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद् वर्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलि-
र्मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना॥ ३/११

३. यः कश्चित्त्वरितगतिर्निरीक्षते मां संभ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति स्थितं वा।
तं सर्वं तुलयति दूषितोऽन्तरात्मा स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः॥ ४/२

४. मूढे! निरन्तरपयोधरया मयैव कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र।
मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी॥ ५/१५

प्रतीत होती है ।[1]

वसन्तसेना विद्युत् को उपालम्भ देती हुई कहती है—'यदि बादल गरजता है, तो वह भले ही गरजे, क्योंकि पुरुष तो स्वभावतः कठोर होता है, वह नारी के हृदय की वेदना को क्या जाने, किन्तु क्या तुम भी कोमल-हृदय प्रमदाओं के दुःख को नहीं जानती हो ?'[2]

इस प्रकार मृच्छकटिक मे अनेक स्थलों पर मानव-भावनाओं का मनोरम एवं स्वाभाविक चित्रण किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है मानों मृच्छकटिककार ने अपनी अनुभूति द्वारा मानव-हृदय मे प्रविष्ट होकर अनेक सूक्ष्म भावों की हृदय-स्पर्शी अभिव्यञ्जना की है । वस्तुतः कवि मानव-प्रकृति का सफल चित्रण करने मे पूर्ण सक्षम प्रतीत होता है ।

मृच्छकटिक मे मानव-जीवन की विविध दशाओं का भी मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है । यदि कही चारुदत्त की दरिद्रता का चित्रण अपनी चरम सीमा पर है,[3] तो कही वसन्तसेना की कुबेर-सदृश सम्पदा का वर्णन है ।[4] सेंध के स्वरूप तथा इसके भेदों का वर्णन भी मन मे जिज्ञासा उत्पन्न करता है ।[5] द्यूतकर्म का विशद वर्णन भी कवि के सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचायक है । मानव के रूप-वर्णन मे भी कवि सफल सिद्ध हुआ है । उदाहरणार्थ चारुदत्त संवाहक के शब्दो मे यदि प्रिय-

१ एतैरेव यदा गजेन्द्रमलिनैराध्मातलम्बोदरै—
गर्जद्भि सतडिद्वलाकशबलैर्मेघैः सशल्यं मनः ।
तत्कि प्रोषितभर्तृवध्यपटहो हा हा हताशो बकः
प्रावृट् प्रावृडिति ब्रवीति शठधीः क्षारं क्षते प्रक्षिपन् ॥ ५/१८

२ यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः ।
अपि विद्युत् प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥ ५/३२

३- १/६, ११, १२, १३, १४, १५, ५/४१

४ (क) चतुर्थ अंक, पृ० २२६–२४७

(ख) एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्ठप्पओट्ठं भवणं पेक्खिअ, जं सच्चं जाणामि एकत्थं विअ तिविट्ठअ दिट्ठं । पसंसिदुं णत्थि मे वाआविहवो । किं दाव गणिआघरो ? अधवा कुबेरभवणपरिच्छेदो त्ति ।

सस्कृतछाया—एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तं अष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य, यत् सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम् । प्रशंसितुं नास्ति मे वाग्विभवः । किं तावत् गणिकागृहम् ? अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः ? इति ।

चतुर्थ अंक, पृ० २४७

५. ३।१३, १४ तथा तृ० अंक, पृ० १६०

दर्शन प्रियवादी है, तो आर्यक के विचारानुसार वह दृष्टिरमणीय है।[1] न्यायाधीश ने भी उसके सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि वह ऊँची नासिका से युक्त तथा विशाल कोनों वाले नेत्रों से युक्त मुख को धारण करता है।[2] वसन्तसेना उसके रूप-सौंदर्य पर मोहित हो जाती है।

विट ने वसन्तसेना की सुन्दर गति का यथार्थ चित्रण करते हुए कहा है—'वायु के द्वारा चचल अचल वाले रेशमी वस्त्र को धारण करती हुई तथा रक्त कमलों की कलियों को पृथिवी पर बिखेरती हुई वेग-गति से कहाँ जा रही हो ?'[3]

शर्विलक के स्वगत कथन मे प्रगाढ़ निद्रा मे लीन व्यक्ति का स्वाभाविक चित्र भी अत्यन्त मनोज्ञ है—प्रगाढ़ निद्रा के कारण नेत्र भली प्रकार बन्द है, शरीर के अंग भी शैय्या के नीचे लटक रहे है। यदि निद्रा छलपूर्ण होती तो सामने दीपक का प्रकाश उसे सह्य नही होता।[4]

कवि ने न्यायालय का भी मनोरम एव अलङ्कृत वर्णन किया है कि न्यायाधिकरण विभिन्न प्रकार के लोगो से घिरे होने के कारण विभिन्न प्रकार के जानवरो से व्याप्त समुद्र के समान प्रतीत हो रहा है।[5]

---

१ (क) जे नासिके पिअदंसणे पिअवादी।
संस्कृतछाया—यस्मादसि प्रियदर्शन प्रियवादी। द्वितीय अंक, पृ० १२८
(ख) न केवल श्रुतिरमणीयो दृष्टिरमणीयोऽपि। वही, सप्तम अक, पृ० ३६४

२. अधिकरणिक:—
घोणोन्नतं मुखमपाङ्गविशालनेत्रं नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्॥ ९।१६

३. किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती टङ्कैर्मनःशिलगुहेव विदार्यमाणा॥ १/२०

४. निःश्वासोऽस्य न शंकितः सुविशदस्तुल्यान्तरं वर्तते
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे चञ्चला।
गात्रं स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शय्याप्रमाणाधिकं
दीपं चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि॥ ३/१८

५. चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशङ्खाकुलं
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्राश्रयम्।
नानावाशककङ्कपक्षिरुचिरं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटञ्च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते॥ ९/१४

प्रकृति-चित्रण

मृच्छकटिक मे कुछ स्थानो पर विशेषत पञ्चम अक मे बाह्य प्रकृति का चित्रण भी किया गया है। कुछ समीक्षको का कथन है कि अष्टम अक मे पुष्पकरण्डक उद्यान का सुन्दर चित्रण किया जा सकता था किन्तु कवि द्वारा उसकी उपेक्षा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूपको मे घटनाओ की *गत्यात्मकता की अपेक्षा होने के कारण इस ओर ध्यान नही दिया गया है।* रूपको मे कवि का ध्यान प्रधान रूप मे कथावस्तु की अभिनेयता पर रहता है। विस्तृत प्रकृतिवर्णन से घटनाओ की स्वाभाविक गति मे बाधा ही नही पडती, अपितु कथावस्तु का स्वरूप भी गौण प्रतीत होने लगता है। इसलिये रूपको मे प्रकृति-वर्णन की उपेक्षा करना युक्तिसगत प्रतीत होता है। पञ्चम अक मे वर्षा का वर्णन नाटकीय दृष्टि से अधिक विस्तृत हो गया है, यद्यपि काव्य की दृष्टि से यह अत्यन्त सुन्दर कहा जा सकता है।

मृच्छकटिककार ने अधिकाश प्रकृति-वर्णन को उद्दीपन विभाव के रूप मे अपनाया है, तथापि एक-दो स्थलो पर कवि ने प्रकृति का आलम्बन रूप मे भी सुन्दर चित्रण किया है। प्रथम अक मे चन्द्रोदय का वर्णन दर्शनीय है—

'तरुणी की कपोलस्थली के समान गौरवर्ण, नक्षत्र-समुदाय रूपी परिवार वाला राजमार्ग का दीपक चन्द्रमा उदित हो रहा है। घोर अन्धकार-समूह के बीच मे जिसकी उज्ज्वल किरणें जलरहित पक मे दुग्ध की धाराओ के समान पड रही है।'[1]

इसी प्रकार घनान्धकार मे मेघो से गिरती हुई रजतद्रव जैसी श्वेत जलधारा का वर्णन भी बडा स्वाभाविक है। वह जलधारा विद्युत् की चमक से क्षण भर को दिखाई देती है और फिर दृष्टि से ओझल हो जाती है। पिघलते हुए चाँदी के द्रव जैसी मेघ के उदर से वेगपूर्वक गिरती हुई, बिजली रूपी दीपक की लौ के द्वारा क्षणभर दिखाई देकर अदृश्य हो जाने वाली ये जल-धारायें आकाश रूपी वस्त्र के विच्छिन्न हुए छोर के समान गिर रही है।'[2]

---

१. उदयति हि शशाङ्क कामिनीगण्डपाण्डुर्ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीप:।
निमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौरा: स्रुतजल इव पङ्के क्षीरधारा: पतन्ति ॥
१।५७

२. एता निषिक्तरजतद्रवसनिकाशा
धारा जवेन पतिता जलोदरेभ्य:।
विद्युत्प्रदीपशिखया क्षणदृष्टनष्टा—
छिन्ना इवाम्बरपटस्य दशा पतन्ति ॥५।४

कवि ने विविध आकार धारण करने वाले मेघों से आच्छादित आकाश का बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है—परस्पर मिले हुए चक्रवाक के जोड़े के समान, उड़ते हुए हंसों जैसे, समुद्र-मंथन के वेग से फेंके हुए मत्स्यसमुदाय और मगरों के सदृश, उन्नमित अट्टालिकाओं के तुल्य ऊँचे, विभिन्न विस्तृत आकारों को प्राप्त करने वाले, वायु द्वारा छिन्न-भिन्न, उमड़ते हुए बादलों के द्वारा आकाश पत्रच्छेद-विधि द्वारा चित्रित-सा सुशोभित हो रहा है।[1]

अन्धकार की गहनता का भी चित्र अत्यंत मनोज्ञ है—अन्धकार अंगों को लिप्त सा कर रहा है, आकाश मानों काजल बरसा रहा है। दुष्टों की सेवा की भाँति मेरी दृष्टि निष्फलता को प्राप्त हो रही है।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त स्वाभाविक प्रकृति-चित्रण के आधार पर यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं प्रतीत होता कि मृच्छकटिककार के हृदय में प्रकृति के प्रति प्रेम अवश्य था, यद्यपि ऐसे स्थलों की संख्या अत्यल्प है। अन्यत्र अधिकांश स्थलों में मृच्छकटिक का प्रकृति-चित्रण अलंकारों के बोझ से इतना बोझिल हो गया है कि उसकी स्वाभाविक छटा समाप्तप्राय हो गयी है। पंचम अंक में इस सम्बन्ध में अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं।

पंचम अंक के प्रारम्भ में ही साङ्गरूपक अलंकार के द्वारा मेघ की केशव से समानता दिखलाई गई है—जल से गीले भैंसे के पेट के समान तथा भ्रमर के सदृश कृष्णवर्ण, विद्युत् की प्रभा से निर्मित पीताम्बर तुल्य 'उत्तरीय धारण किये हुए, बकपंक्ति रूपी शंख धारण किये हुए [वामन-रूप-धारी दूसरे विष्णु के सदृश यह मेघ आकाश में व्याप्त होने को प्रवृत्त हो गया है।[3]

अन्यत्र मेघाच्छादित आकाश को धृतराष्ट्र के मुख के समान बतलाया गया है। धृतराष्ट्र का मुख भी आँखें न होने से अन्धकारपूर्ण था और आकाश में भी सूर्य और चन्द्रमा के बादलों में छिप जाने के कारण अन्धकार है।[4]

---

१. संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः ।
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना ॥ ५।५

२. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥ १।३४

३. मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः ।
आभाति संहतबलाकगृहीतशङ्खः खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः ॥ ५।२

४. एतद्धि धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं मेघान्धकारं नभो
दृप्तो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी ।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः ॥ ५।६

इन अलंकारों में शिक्षाप्रद कल्पनायें भी हैं। यथा—प्रथम बार सम्पत्ति प्राप्त किये हुए पुरुष के समान बादल अनेक रूप धारण कर रहा है। कभी ऊपर उमड़ता है, कभी झुकता है, कभी बरसता है, कभी गरजता है, और कभी घोर अन्धकार उपस्थित कर देता है।[1] इस प्रकार काव्यत्व की दृष्टि से अलंकारपूर्ण प्रकृति-वर्णन त्याज्य नहीं कहे जा सकते।

जहाँ प्रकृति-चित्रण उद्दीपन के रूप में हुआ है, वहाँ मानव-हृदय के साथ उसका सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है। दुर्दिन में अभिसरण करती हुई वसन्तसेना का हृदय एक तो मेघों ने विदीर्ण कर दिया है, उस पर बगुला शब्द करता हुआ घाव पर नमक छिड़क रहा है।[2]

वसन्तसेना जलधर की भर्त्सना करती हुई कहती है कि तुम बड़े निर्लज्ज हो, जो प्रियतम के घर जाती हुई मुझको धारा रूपी हाथों से स्पर्श करते हो।[3]

इसी प्रकार वसन्तसेना अहल्या-प्रेमी इन्द्र को उपालम्भ देती हुई कहती है—हे इन्द्र ! जिस प्रकार गौतम की पत्नी अहल्या पर अनुरक्त होकर आपने झूठ कहा था कि मैं गौतम हूँ, उसी प्रकार चारुदत्त के लिए कामातुर मेरे दुःख को समझ कर इस बाधक मेघ को मना कर लीजिए।[4]

वसन्तसेना इन्द्र को चेतावनी सी देती हुई कहती है—हे इन्द्र ! चाहे तुम सिंहनाद करो या वृष्टिपात करो अथवा सैकड़ों वज्र ही क्यों न गिरा दो, किन्तु प्रियतम के प्रति जाती हुई स्त्रियों को तुम रोकने में समर्थ नहीं हो सकते हो।[5] वसन्तसेना को सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का है कि विद्युत् नारी होकर भी कामिनियों की प्रेम-वेदना को अनुभव नहीं करती है।[6]

कहीं कहीं तो प्रकृति-वर्णन श्लेष एवं रूपकालंकार से पुष्ट उपमालंकार की घटा से चमत्कृत हो उठा है—वायु के तुल्य चञ्चल वेग वाला, बाण-समूह रूपी

---

१ उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति तिमिरौघम् ।
प्रथमश्रीरिव पुरुषः करोति रूपाण्यनेकानि ॥ ५।२६

२ द्रष्टव्य ५।१८

३. जलधर निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम् ।
स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तैः परामृशसि ॥ ५।२८

४ (क) किं ते ह्यहं पूर्वरतिप्रसक्ता यत्त्वं नदस्यम्बुद सिंहनादैः ।
न युक्तमेतत् प्रियकाङ्क्षिताया मार्गं निरोद्धुं मम वर्षपातैः ॥ ५।२९

(ख) यद्वद् अहल्याहेतोर्मृषा वदसि शक्र ! गौतमोऽस्मीति ।
तद्वन्ममापि दुःखं निरवेक्ष्य निवार्यतां जलदः ॥ ५।३०

५. गर्ज वा वर्ष वा शक्र ! मुञ्च वा शतशोऽशनिम् ।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ ५।३१

६ यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः ।
अयि विद्युत् ! प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥ ५।३२

स्थूल जलधारा वाला, युद्ध के नगाड़ों के समान घोर गर्जन करने वाला, स्पष्ट पताका रूपी बिजली वाला मेघ आकाश में मन्द तेज वाले चन्द्रमा की किरणों को उसी प्रकार ढक लेता है, जिस प्रकार वायु के तुल्य वेगवान्, जलधारा के समान बाण-वृष्टि करने वाला, मेघ-गर्जन के तुल्य युद्ध के नगाड़ों के शब्द से युक्त तथा सुस्पष्ट बिजली के समान पताका से युक्त राजा नगर के बीच मन्द पराक्रम वाले शत्रु का सर्वस्व अपहरण कर लेता है।[1] वर्षा की धाराओं के गिरने तथा बिजली चमकने के दृश्य की पूरी कल्पना मनोरम एवं व्यञ्जक बन गई है—'सजल तमाल-पत्रों के तुल्य मलिन (नीलवर्ण) इन मेघों के द्वारा आकाश में सूर्य ढक दिया गया है। जल-धाराओं से ताड़ित वल्मीक (बमी) ऐसे पीड़ित हो रहे हैं, जैसे बाणों की बौछार से हाथी पीड़ित हो जाता है। अट्टालिकाओं पर सचरण करने वाली बिजली ऐसी शोभा दे रही है, मानो स्वर्ण-निर्मित दीपक जगमगा रहा हो। मेघों द्वारा बलपूर्वक हटाई गई ज्योत्स्ना का वैसे ही अपहरण कर लिया गया है, जैसे निर्बल पति की स्त्री दूसरों के द्वारा बलात् अपहृत कर ली जाती है।'[2]

प्रस्तुत पद्य में एक-एक चित्र की छटा अवलोकनीय है। यथा—सूर्यास्त का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि सूर्य को आकाश पी गया है। वर्षा की धाराओं तथा बाणों में सादृश्य अत्यन्त वास्तविक है। हाथियों के बाण-वर्षा से पीड़ित होने के समान वल्मीकों का वृष्टि-धारा से पीड़ित होना दिखाकर कवि ने मानवीकरण की सुन्दर योजना की है। विद्युत् का आँखमिचौनी करना तथा कंचनदीपिका का जगमगाना:—दोनों दृश्यों में कितना साम्य है। ज्योत्स्ना को वनिता बताना और फिर उसको मेघों द्वारा बलपूर्वक वैसे ही अपहृत वर्णित करना जैसे दुर्बलपति की पत्नी बलात् हर ली जाती है। ज्योत्स्ना का पति चन्द्रमा मेघों के सामने कितना निर्बल है—इस तथ्य की सुन्दर व्यञ्जना होती है।

धारासार वर्षा के होने का एक सुन्दर दृश्य इस प्रकार चित्रित है—विद्युत् रूपी चमकीली रस्सी से आबद्ध कटि वाले वृष्टिपात करते हुए परस्पर आक्रमण करने वाले हाथियों के समान ये बादल मानो मेघपति इन्द्र की आज्ञा से रजत की रज्जुओं के द्वारा पृथ्वी को ऊपर उठा रहे हैं।[3]

---

1. पवन-चपल-वेग स्थूलधारा शरौघः स्तनित-पटह-नाद स्पष्ट-विद्युत्पताकः।
   हरति करसमूहं मे शशाङ्कस्य मेघो नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रो. ॥ ५।१७
2. सजलार्द्र-तमाल-पत्र-मलिनैरापीतसूर्यं नभो
   वल्मीकाः शरताडिता इव गजाः सीदन्ति धाराहताः।
   विद्युत्काञ्चनदीपिकेव रचिता प्रासादसञ्चारिणी
   ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता ॥ ५।२०
3. एते हि विद्युद्गुण-बद्ध-कक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।
   शक्राज्ञया वारिधरा सधारा गां रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति। ५।२१

प्रस्तुत पद्य मे चित्र की मनोज्ञता दर्शनीय है। इसमे काले उमडते बादल काले मतवाले हाथी हैं। बिजली की चमकती लकीरें ऐसी लगती है जैसे चमकीली रज्जुओं से बादलो की कमर कसी गई हो, हाथियो की बगल मे सोने की जंजीरें अवलम्बित हृ, यह बिजली की चमकती लकीरो सी प्रतीत होती है। जल की गिरती हुई स्वच्छ धाराएँ मानो रजत की रस्सियाँ है और ये जल-धाराएँ इतनी द्रुतगति से भूमि पर गिर ही हैं कि उनका क्रम भग होता हुआ नहीं प्रतीत होता। इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये जलधारा रूप रजत की रस्सियाँ नीचे *आकर पुनः पृथ्वी को ऊपर खींच रही हैं। पृथ्वी को ऊपर खींचने की कल्पना से* यह बात स्पष्टतया व्यञ्जित होती है कि जल की धाराओं का सम्पात क्षण भर के *लिये भी भग नहीं होता, इससे दर्शक को इसका आभास ही नहीं हो पाता कि* ये धाराएँ आकाश से कब विलग होती हैं और पृथ्वी से कब सयुक्त होती हैं।

एक अन्य चित्र मे वर्षा मे पूर्ण आकाश का उसके समस्त तत्त्वो सहित बडा सटीक वर्णन किया गया है—आकाश मानो बिजलियों से जल रहा है, सैंकडो बगुलों की पंक्तियों से हँस-सा रहा है, वृष्टिधारा रूपी बाणों को बरसाने वाले इन्द्रधनुष के द्वारा युद्ध-सा कर रहा है, वज्र के स्पष्ट घोष से गर्जन-सा कर रहा है, वायु के द्वारा घूम-सा रहा है और सर्प के सदृश श्याम तथा सघन बादलों के द्वारा कृष्ण-धूम का सेवन कर रहा है।[1]

प्रस्तुत पद्य में अंकित दृश्य में वर्षाकालीन आकाश के समस्त तत्त्वों—बिजली, *बगुले, इन्द्रचाप, वारिधारा, वज्रघोष, पवन का प्रवाह तथा कृष्ण मेघ का सुन्दर* चित्रण किया गया है।

एक अन्य चित्र मे रूपकालंकार के माध्यम से आकाश जमाई लेते हुए वर्णित किया गया है। यथा—बिजली रूपी जिह्वा वाले, इन्द्रधनुष रूपी उन्नत एवं विशाल भुजाओं वाले और मेघ रूपी विशद ठोडी वाले आकाश ने मानो मुँह खोलकर जमाई ली है।[2]

कवि-कल्पना का लालित्य कतिपय श्लोकों मे बडी आकर्षक रीति से प्रस्फुट हुआ है। कवि ने वर्षा की धाराओं के लिये संगीत-जगत् मे भी उपमा ली है। उदाहरणार्थ —

जिस प्रकार संगीत-वीणा भिन्न-भिन्न तालों मे बजाई जाने पर भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकालती है, उसी प्रकार वर्षा की धाराएँ ताल-वन मे उच्च

---

१. *विद्युद्भिर्ज्वलतीव संविहसतीवोच्चैर्बलाकाशतैः*
माहेन्द्रेण विवल्गतीव धनुषा धाराशरोद्गारिणा।
विस्पष्टाशनिनिस्वनेन रसतीवाघूर्णतीवानिलै
नीलैः सान्द्रमिवाहिभिर्जलधरैर्धूपायतीवाम्बरम्॥ ५।२७

२. विद्युज्जिह्वेनेदं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन।
जलधर-विवृद्ध-हनुना विजृम्भितमिवान्तरीक्षेण॥ ५।५१

स्वर से, वृक्षों पर गम्भीर ध्वनि से, पर्वतों पर कर्कश ध्वनि से तथा जल में तुमुल ध्वनि (प्रचण्ड ध्वनि) से ताल के अनुसार नीचे गिर रही है।[1]

प्रस्तुत वर्णन कवि के सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का प्रतीक है क्योंकि कवि ने वर्षा की धाराओं से भिन्न-भिन्न वस्तुओं के ऊपर गिरने से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों का सूक्ष्म कथन किया है।

एक स्थल पर ग्रीष्म के भयंकर उत्ताप का यथार्थवादी चित्रण द्रष्टव्य है—गो-वृन्द घास छोड़कर छाया में नींद ले रहे हैं, प्यास से व्याकुल वन-पशु नदी का गर्म जल पी रहे हैं। अत मैं (विट) समझता हूँ कि संतप्त भूमि को छोड़कर गाड़ी कहीं छाया में ठहरी हुई है।[2]

इस प्रकार काव्यत्व की दृष्टि से सालङ्कार प्रकृति-वर्णन त्याज्य नहीं कहे जा सकते। संस्कृत के कवियों ने प्रकृति-वर्णन जहाँ-जहाँ भी किया है, वहाँ-वहाँ या तो श्लिष्ट वर्णन है अथवा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का आश्रय लिया गया है। आदि कवि वाल्मीकि ने भी रामायण में प्रकृति-वर्णन करते समय उपमा, रूपक आदि अलंकारों का आश्रय लिया है। अन्य संस्कृत रूपकों की तुलना में मृच्छकटिक में प्राकृतिक चित्रणों में विविधता का अभाव है क्योंकि इसमें आकाशयात्राएँ नहीं हैं, पर्वत, वन अथवा सरिताएँ नहीं हैं। इसमें केवल वर्षाकाल का ही वर्णन होने से अन्धकार, ज्योत्स्ना, बादल, वर्षा आदि के चित्र सन्निविष्ट हुए हैं। यद्यपि मृच्छकटिक के प्रकृति-वर्णन में अभिज्ञानशाकुन्तल के समान बाह्य-प्रकृति का मानव-प्रकृति के साथ सच्चा तादात्म्य तो दिखाई नहीं पड़ता, तथापि कवि-कृत प्रकृति-वर्णन सुन्दर एवं मनोरम है।

---

१. तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं शिलासु रूक्षं सलिलेषु चण्डम्।
सङ्गीतवीणा इव ताड्यमानास्तालानुसारेण पतन्ति धाराः॥ ५।५२

२. छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते गोकुलं
तृष्णार्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्णं पयः सारसम्।
संतापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरैः सेव्यते
तप्तां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित्संस्थितम्। ८।११

सांस्कृतिक अध्ययन

सामाजिक परिस्थितियाँ

मृच्छकटिक वस्तुत तत्कालीन समाज का एक वास्तविक शब्दचित्र है। शूद्रक का प्रयास इस सम्बन्ध मे स्तुत्य है, जिसने कालदर्शी कथानक के रूप मे वास्तविकता को प्रस्तुत करने का अदम्य साहस दिखाया है।

मृच्छकटिक काल मे भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार भागो मे विभक्त था। वर्णव्यवस्था जाति से एवं कर्म से दो प्रकार की मानी गई है। आरम्भ मे कर्म से यह व्यवस्था प्रचलित थी, किन्तु बाद मे जातिगत व्यवस्था दृढ होती गई। शूद्रक के समय जन्म से जाति मानी जाती थी और जातिगत अभिमान भी उत्पन्न हो गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो के अतिरिक्त चाण्डालों का भी एक वर्ण था, जिसको पचम वर्ण माना जाता था। ब्राह्मणो का कार्य अध्ययन-अध्यापन करना था। ये अपने ज्ञान और उज्ज्वल चरित्र के कारण सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। उस समय का समाज उन्हे सम्मान की दृष्टि से देखता था। निमन्त्रण पर जाना, दान-दक्षिणा लेना और पौरोहित्य करना भी ब्राह्मणों का कार्य था। नटी सूत्रधार से किसी ब्राह्मण को भोजनार्थ निमंत्रित करने को कहती है।[1] सूत्रधार मैत्रेय को भोजनार्थ निमंत्रण देता है, मैत्रेय के अस्वीकार करने पर पुनः दक्षिणा देने के लिए भी निवेदन करता है।[2] वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति प्रेम देखकर द्वितीय अंक में मदनिका वसन्तसेना से पूछती है—'विज्जाविसेसालङ्किदो कि कोवि वम्हणजुआ कामीअदि।'[3] इस पर वसन्तसेना उत्तर देती है—'पूअणीओ मे बम्हणजणो'।[4] तृतीय अंक मे चारुदत्त की धर्मपत्नी धूता

---

१. अम्हारिसजणजोग्गेण बम्हणेण उवणिमन्तिदेण।

संस्कृतछाया—अस्मादृशजनयोग्येन ब्राह्मणेन उपनिमन्त्रितेन।

प्रथम अंक, पृ० १८

२. (क) अज्ज मित्तेअ ! अम्हाणं गेहे अगिदुं अग्गणी भोदु अज्जो।

संस्कृतछाया—आर्य ! मैत्रेय ! अस्माकं गेहे अशितुमग्रणीर्भवतु आर्य।

प्रथम अंक, पृ० १८–१९

(ख) अज्जं सम्पण्ण भोअणं णीमवरं अ। अविअ दक्खिणा कावि दे भविस्सदि।

संस्कृतछाया—आर्य ! सम्पन्नं भोजनं निःसपत्नश्च।

अपि च दक्षिणा कापि ते भविष्यति॥ प्रथम अंक, पृ० १९

३. संस्कृतछाया—विद्याविशेषालङ्कृतः किं कोऽपि ब्राह्मणयुवा काम्यते।

द्वितीय अंक, पृ० ६७

४. संस्कृतछाया—पूजनीयो मे ब्राह्मणजन। द्वितीय अंक, पृ० ६७

ब्राह्मण विदूषक को रत्नावली देती है।[1] दशम अंक में विदूषक धूता से कहता है कि संकल्पित सिद्धि के लिये ब्राह्मण को आगे करना चाहिये।[2] ब्राह्मण निम्न जाति मे प्रतिग्रह नहीं ले सकते थे।[3]

शर्विलक जब चारुदत्त के यहाँ अपने चौर-कर्म की बात मदनिका को सुनाता है, तब मदनिका उससे पूछती है कि तुमने वहाँ किसी को मारा अथवा घायल तो नहीं किया। इस पर उसके अन्दर अपने ब्राह्मणत्व का स्वाभिमान जाग उठता है और वह कहता है कि ब्राह्मण परिस्थितिवश पतित होकर भी अपनी मान-मर्यादा की उपेक्षा नहीं करता है। मैंने चारुदत्त के घर मे न तो किसी को मारा है और न हि घायल किया है।[4]

ब्राह्मणों को समाज मे विशेष सम्मान तथा अधिकार प्राप्त था। अधिकरणिक ने राजा पालक से निवेदन करते हुए कहा है कि मनु के अनुसार पातकी ब्राह्मण भी वध के योग्य नही होता।[5] नवम अंक के अन्त मे शकार की योजनाओं में अधिकरणिक के द्वारा प्राणदण्ड का आदेश मिलने पर ब्राह्मण चारुदत्त तिलमिला कर कह उठता है कि हे राजन्! यदि निर्दोष तथा निरपराध ब्राह्मण का वध किया जाता है, तो पुत्र-पौत्रों सहित तुम भी नरक के भागी बनोगे।[6] दुष्ट

---

१. अज्ज! पडिच्छ इमं। अहं खु रअणछट्ठिं उववसिदा आसि। तहिं जधा विहवाणुसारेण बम्हणो पडिग्गाहिदव्वो, सो अ ण पडिग्गाहिदो, ता तस्स किदे पडिच्छ इम रअणमालिअं।

संस्कृत छाया—आर्य! प्रतीच्छ इमाम्। अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता आसम्। तस्मिन् यथाविभवानुसारेण ब्राह्मणः प्रतिग्राहयितव्यः, स च न प्रतिग्राहितः, तद् तस्य कृते प्रतीच्छ इमां रत्नमालिकाम्। तृतीय अंक, पृ० १८४

२. (सावेगम्) समीहिद-सिद्धिए पउत्तेण बम्हणो अग्गदो कादव्वो।

संस्कृतछाया—समीहितसिद्धये प्रवृत्तेन ब्राह्मणः अग्रत कर्तव्य।

दशम अंक, पृ० ५६४

३. भोः स्वजातिमहत्तर! इच्छाम्यहं भवत सकाशात् प्रतिग्रहं कर्तुम्!

दशम अंक, पृ० ५३२

४. (क) मदनिके! भीते सुप्ते न शर्विलक प्रहरति। तन्मया न कश्चिद् व्यापादितो नापि परिक्षत.। चतुर्थ अंक, पृ० २०५

(ख) त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं
सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः।
रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं
मित्रञ्च मा व्यपदिशस्यपरञ्च यामि॥ ४/६

५. अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह॥ १०/३६

६. विषसलिलतुलाग्नि-प्रार्थिते मे विचारे क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य।
अथ रिपुवचनाद्वा ब्राह्मणं मां निहंसि पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः॥ ६।४३

शकार ने भी स्वीकार किया था कि वह देवताओं तथा ब्राह्मणों के सामने पैदल पहुँचेगा। शकार के विट का मैत्रेय के चरणों पर गिरकर क्षमायाचना करना ब्राह्मण के प्रति सम्मान का द्योतक है।[1] विदूषक में ब्राह्मणत्व की जागृत हुई भावना भी विचारणीय है। चेट ने जब विदूषक से चारुदत्त के पैर धोने के लिये कहा, तब वह क्रोधाभिभूत होकर कहता है कि यह चेट दासी का पुत्र होकर अब पानी ग्रहण करता है और मुझ ब्राह्मण से पैर धुलवाता है।[2] वेदों के अध्ययन का अधिकार उस समय केवल ब्राह्मणों को ही था, प्राकृत जनों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। नवम अंक में अधिकरणिक ने चारुदत्त के विरुद्ध बोलते हुए अपने प्रति यह कहते हुए कि यह व्यवहार पक्षपात पूर्ण है, शकार को यह कहकर डाँटा है कि नीच होकर तू वेद का अर्थबोध करता है, तथापि तेरी जिह्वा गिर नहीं जाती।[3] स्त्रियों को संस्कृत पढ़ने का अधिकार नहीं था। स्त्रियों के संस्कृत पढ़ने के प्रति विरोध करते हुए मैत्रेय विदूषक ने चारुदत्त से कहा है कि मुझे तो दोनों से ही हँसी उत्पन्न होती है—संस्कृत पढ़ती हुई स्त्री से, मधुर एवं सूक्ष्म ध्वनि में गाते हुए पुरुष से। संस्कृत पढ़ती हुई स्त्री तो नवीन रज्जु डाली हुई एक बार प्रसूता गाय की भाँति अधिक सू सू शब्द करती है। मनुष्य भी मधुर एवं सूक्ष्म ध्वनि में गाता हुआ, शुष्कपुष्पमाला पहने हुए, मन्त्र जपते हुए वृद्ध पुरोहित की भाँति सर्वथा अच्छा नहीं लगता है।[4]

शर्विलक वैसे तो चौर्य-कर्म अपनाने के कारण कुपथगामी हो गया था किन्तु उसने अपने पिता के ब्राह्मणत्व के विषय में कहा है कि मैं चारों वेदों के ज्ञाता, दान-दक्षिणा न लेने वाले ब्राह्मण का पुत्र शर्विलक गणिका मदनिका के लिये

---

१. महाब्राह्मण ! मर्षय मर्षय।...सर्वथा इदमनुनयसर्वस्व गृह्यताम् (इति खड्गमुत्सृज्य कृताञ्जलि पादयोः पतति। प्रथम अङ्क, पृ० ६६

२. विदूषक—(सक्रोधम्) भो वअस्स, एसो दाणि दासीए पुत्तो भविअ पाणिअं गेण्हेदि मं उण बम्हणं पादाइं धोवावेदि।
संस्कृतच्छाया—भो वयस्य एष इदानीं दास्याः पुत्रो भूत्वा पानीयं गृह्णाति, मां पुनर्ब्राह्मणं पादौ धावयति। तृतीय अङ्क, पृ० १५३

३. वेदार्थान्प्राकृतस्त्वं वदसि न च ते जिह्वा निपतिता॥ ९/२१

४ मम दाव दुवेहिं ज्जेव्व हस्सं जाअदि, इत्थिआए सक्कदं पठन्तीए, मणुस्सेण अ काअली गाअन्तेण। इत्थिआ दाव सक्कदं पठन्ती, दिण्ण-णवणस्सा विअ गिट्ठी, अहिअं सुसुआअदि। मणुस्सो वि काअली गाअन्तो सुक्खसुमणो-दाम-वेट्ठिदो वुड्ढ-पुरोहिदो विअ मन्त जवन्तो, दिढं मे ण रोअदि।
संस्कृत छाया—मम तावत् द्वाभ्यामेव हास्यं जायते, स्त्रिया संस्कृतं पठन्त्या, मनुष्येण च काकलीं गायता। स्त्री तावत् संस्कृतं पठन्ती, दत्त-नव-नास्या इव गृष्टिः अधिकं सुसूयते, मनुष्योऽपि काकलीं गायन् शुष्क-सुमनो-दाम-वेष्टितो वृद्धपुरोहित इव मन्त्रं जपन्, दृढं मे न रोचते। तृतीय अंक, पृ० १४८–१४९

अनुचित कार्य कर रहा हूं। अब मै ब्राह्मण का प्रणय करता हूं।[1]

ब्राह्मण अपने कार्यों के अतिरिक्त अन्य जातियो के कार्य करने मे भी अपने को स्वच्छन्द समझते थे। कुछ ब्राह्मण व्यापार कार्य भी करते थे। चारुदत्त के पिता सार्थवाह थे और चारुदत्त स्वयं भी सार्थवाह था। कुछ ब्राह्मण ऐसे भी थे जो चोरी करना, जुआ खेलना और राजनैतिक कार्यों मे फँसे रहना बुरा नही समझते थे। चौर्य-कार्य को करने मे ब्राह्मण शर्विलक प्रमाण है।

मृच्छकटिक मे क्षत्रियो का उल्लेख नही है। सम्भवतः सैनिक कार्यों मे भाग लेने वाले व्यक्ति रहे हो और उपराज्यो के शासक भी रहे हो। वैश्य व्यापार मे बढ़े-चढ़े थे। ये लोग व्यापारिक कार्यों के सम्बन्ध मे न केवल स्वदेश मे अपितु विदेशो मे भी भ्रमण करते थे। रेभिल नामक पात्र उज्जयिनी का एक व्यापारी था। उस समय के कुलीन ब्राह्मण केवल आध्यात्मिक ही नही थे, अपितु कोई-कोई बड़े व्यापारी भी थे। चारुदत्त के पितामह तथा पिता बड़े व्यापारी होने के कारण श्रेष्ठी कहलाते थे। व्यापार उस समय समुन्नत अवस्था मे था। सम्पत्ति-शाली देशों से व्यापार की झलक मदनिका की वसन्तसेना के प्रति कही हुई उक्ति से ज्ञात होती है कि क्या अनेक नगरो मे गमन से प्रचुर सम्पत्ति अर्जित करने वाले व्यापारी की कामना की जा रही है ?[2] इसके उत्तर मे वसन्तसेना कहती है—हे चेटी ! व्यापारी पुरुष प्रवृद्ध प्रेम वाले प्रेमी जन को छोडकर विदेश जाने मे वियोग-जनित महान् दुःख को उत्पन्न करता है।[3] स्पष्ट है कि वणिक्-वर्ग व्यापार के सिलसिले मे दूर दूर की यात्रा करता था। व्यापारियो के अपने जहाज थे। जहाजों मे समुद्र पार तक व्यापार किया जाता था। चतुर्थ अंक मे चेटी से सम्भाषण करते हुए विदूषक ने कहा है कि आपके यानपात्र (जहाज) चलते हैं ?[4]

---

१ अहं हि चतुर्वेदविदोऽप्रतिग्राहकस्य पुत्रः शर्विलको नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिका-र्थमकार्यमनुतिष्ठामि। इदानीं करोमि ब्राह्मणस्य प्रणयम्। तृतीय अंक पृ० १६६

२. किं अणेअ णअराहिगमण-जणित-विहव-वित्थारो वाणिअजुआ या कामीअदि।
द्वितीय अंक, पृ० ६७

संस्कृत छाया—किं अनेक नगराभिगमन-जनित-विभवविस्तारो वाणिजयुवा वा काम्यते ?

३. हञ्जे ! उवारूढसिणेहं पिअजणं परिच्चइअ देसंतरगमणेण वाणिअजणो महन्तं विओअजं दुक्खं उप्पादेदि।

संस्कृत छाया—हञ्जे ! उपारूढस्नेहमपि प्रणयिजनं परित्यज्य देशान्तरगमनेन वाणिजजनो महद् वियोगजं दुःखमुत्पादयति। द्वितीय अंक, पृ० ६८

४. भोदि ! किं तुम्हाणं जाणवत्ता वहन्ति।

संस्कृत छाया—भवति किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति। चतुर्थ अंक, पृ० २४६

विभिन्न वस्तुओं के विक्रय से तत्कालीन व्यापारी पर्याप्त धनसग्रह करते थे और उसे व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद मे व्यय करने के अतिरिक्त उदारतापूर्वक सामाजिक कार्यों मे और दूसरो के सेवा-कार्यों मे व्यय करते थे। विदूषक ने सार्थवाह पुत्र श्रेष्ठी चारुदत्त के विषय मे इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है—हे आर्यजनो ! जिसने निर्धनो के लिये भवन-निर्माण, बौद्धभवन (विहार), उपवन, देवालय, तालाब, कूप एवं यज्ञस्तम्भो से उज्जयिनी नगरी को विभूषित किया, वह निर्धन क्षणस्थायी धन के लोभ मे पडकर क्या ऐसा दुष्कार्य कर सकता है।[1]

वणिक् व्यापार-कुशल थे और देश की समृद्धिशीलता उनके कारण बढी हुई थी। फिर भी जनसाधारण की धारणा उनके प्रति सम्मानजनक नही थी।[2] विदूषक की उक्ति से भी इस बात की पुष्टि होती है कि बिना जड के उत्पन्न हुई कमलिनी, न ठगने वाला बनिया, न चुराने वाला सुनार, जिसमे झगडा न हो ऐसा ग्राम-सम्मेलन और न लोभ करने वाली वेश्या—इनकी सम्भावना करना कठिन है।[3] चारुदत्त ने पुष्पकरण्डक उद्यान के वर्णन के समय वाणिज्य का कितना स्वाभाविक रूप चित्रित किया है कि इस वाटिका के वृक्ष वाणिज्य के समान सुशोभित हो रहे हैं, पुष्प विक्रेय वस्तु के समान वर्तमान हैं और भ्रमर राजपुरुष के समान् राजभाग लेते हुए परिभ्रमण कर रहे हैं।[4]

वैश्यो का कार्य व्यापार के साथ-साथ कृषि भी था। मृच्छकटिक मे उसके आधार पर तत्सम्बन्धी उपमाएँ यत्र-तत्र सम्भाषण मे अभिव्यक्त हुई हैं। जब चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों ही झुककर प्रणाम करते है, तब विदूषक कह उठता है कि सुखपूर्वक प्रणाम करके धान की दो क्यारियो के समान आप दोनो के सिर

१. भो भो अज्जा ! जेण दाव पुरट्ठावण-विहारारामदेउल-तड़ाग-कूव-जूवेहिं अलङ्किदा णअरी उज्जइणी, सो अणीसो अत्थकल्लवत्तकारणादो एरिस अकज्जं अणुचिट्ठदि त्ति ?
संस्कृत छाया—भो भो आर्या ! येन तावत् पुरस्थापन-विहाराराम-देवकुल-तडागकूपयूपैरलंकृता नगरी उज्जयिनी, स: अनीश: अर्थकल्यवर्तकारणादीदृशम-कार्यमनुतिष्ठतीति ? नवम अक, पृ० ५०३-५०४

२. कायस्थ-सर्पास्पदम्। ६/१४

३. सुट्ठु क्खु वुच्चदि—अकन्दसमुत्थिदा पउमिणी, अवञ्चओ वाणिओ, अचोरो सुवण्णआरो, अकलहो गामसमागमो, अलुद्धा गणिआ त्ति दुक्करं एदे संभावीअन्ति।
संस्कृतछाया—सुष्ठु खलु उच्यते—अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अवञ्चको वणिक्, अचौर: सुवर्णकार, अकलहो ग्रामसमागम:, अलुब्धा गणिका इति दुष्करमेते सम्भाव्यन्ते। पञ्चम अंक, पृ० २६१

४ वणिज इव भान्ति तरव: पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर-पुरुषा प्रविचरन्ति॥ ७/१

में सिर मिल गये।[1] चारुदत्त ने असंभव बातों के सम्बन्ध के लिये जो और धान की चर्चा की है कि खेत में बिखरे हुए जो धान नहीं हो जाते हैं।[2]

प्रवहण-विपर्यय के कारण धोखे से शकार की गाड़ी में बैठ जाने पर वसन्तसेना को जब सहसा ज्ञात होता है तो वह कह उठती है कि इस समय मुझ मन्दभागिनी का यहाँ आना ऊसर खेत में पड़े हुए बीज की मुट्ठी के समान निष्फल हो गया।[3]

इसी प्रकार दो चाण्डालों के बीच स्थित चारुदत्त के वध के समय स्थावरक के द्वारा चाण्डालों से अवकाश माँगने पर चारुदत्त कह उठता है कि वर्षा के न होने से मूखते हुए धान्य पर द्रोण नामक मेघ के समान इस प्रकार के आपत्ति-काल में मेरे काल के पाश में स्थित होने पर यह कौन आ गया है।[4]

इस प्रकार वाणिज्य के समान कृषि भी समाज में जीवन-निर्वाह का उत्तम साधन माना जाता था।

शूद्रों के कार्य सेवा के अनेक रूपों में प्रचलित रहे हैं। नाई, बढ़ई, धोबी, जुलाहे, चमार आदि के कार्य इन्हीं सेवाओं के अन्तर्गत आते हैं। राज्य की ओर से सेवा-कार्यों में नियुक्तियाँ कार्य-कुशलता देखकर होती थी। जातिगतहीनता उसमें बाधक नहीं होती थी। अर्थात् जाति के आधार पर राज्य के ऊँचे पदों से कोई व्यक्ति वंचित नहीं किया जाता था। नापित और चर्मकार वीरक और चन्दनक जो नगर-रक्षक थे, इसके प्रमाण हैं। बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण कभी-कभी जातीयता की अपेक्षा मानव-गुणों को वरीयता दी जाती थी। दशम अंक में चाण्डालों की उक्ति से ज्ञात होता है कि वे चाण्डाल का कर्म करते हुए भी स्वयं को चाण्डाल नहीं मानते।[5] चाण्डाल शूद्रवर्ण के प्रतिनिधि हैं। फाँसी देने का

---

१. भो दुवेवि तुम्हे सुव पणमिअ कलमकेदारा अण्णोण्ण सीसेण सीसं समाअदा।
संस्कृत छाया—भो! द्वावपि युवां सुप्तं प्रणम्य कलमकेदारौ अन्योन्यं शीर्षेण शीर्षं समागतौ। प्रथमांक, पृ० ८७

२. न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।
यवा: प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथाऽङ्गनाः॥ ४/१७

३. एसो दाणि मम मन्दभाइणीए ऊसरक्खेत्तपाडिदो विअ बीअमुट्ठी णिप्फलो इध आगमणो संवुत्तो।
संस्कृत छाया—एतदिदानीं मन्दभागिन्या ऊषरक्षेत्रपतितः इव बीजमुष्टिः निष्फलमिहागमनं संवृत्तम्। अष्टम अंक, पृ० ३६८

४. कोऽयमेवंविधे काले कालपाशस्थिते मयि।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदित॥ १०/२६

५. ण हु अम्हे चाण्डाला चाण्डालउलम्मि जादपुव्वावि।
जे अहिभवन्ति साहुं ते पावा ते अ चाण्डाला॥
संस्कृत छाया—न खलु वयं चाण्डालाः चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि।
ये अभिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डाला॥ १०/२२

कार्य चाण्डालों का माना जाता था। वे समाज में निम्नकोटि के माने जाते थे।

मृच्छकटिक के समय नगरों में एक जाति अथवा एक पेशे के लोग अलग-अलग मोहल्लों में रहते थे और जातियों के या पेशे के नाम पर मोहल्लों के नाम थे। द्वितीय अंक में चारुदत्त का परिचय देते हुए संवाहक कहता है 'शो क्खु शेट्ठिचत्तले पडिवशदि।'[1] उस युग में अस्पृश्यता अथवा छुआछूत की भावना के अभाव में भी सामाजिक भेदभाव बने हुए थे। चारुदत्त चाण्डाल से कोई वस्तु दानस्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता था। चेट शकार का दास है, इसलिये उसे कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। अपने स्वामी का अपराध छिपाने से इन्कार करने पर उसे बन्दी बना दिया जाता है और जब वह वसन्तसेना की हत्या के सम्बन्ध में सत्य का उद्घाटन करता है, तब चाण्डालों को भी विश्वास नहीं होता कि दास सत्यभाषण करता होगा।[2] वसन्तसेना पवित्र तथा उत्तम विचारों की तरुणी होती हुई भी, समाज में वेश्या-दारिका होने के कारण सम्मान का पात्र नहीं थी।

उज्जयिनी नगरी में सड़कें चौड़ी तथा बड़ी-बड़ी थीं। रात्रि में सड़कों पर अन्धकार रहता था। सड़कों पर रोशनी का सार्वजनिक प्रबन्ध नहीं था। रात को रोशनी के लिए प्रदीपिकाएँ प्रयोग में लाई जाती थीं। अन्धकार के कारण चोरों का निरन्तर भय बना रहता था। मैत्रेय विदूषक ने रात को सड़कों पर गणिकाओं, विट-चेटों तथा राजवल्लभ-पुरुषों के संचरण के कारण भय का कथन किया है।[3] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आवारों, लम्पटों एवं विलासियों तथा चोरों के द्वारा संचरण के लिए रात्रि का समय उचित समझा जाता था। रात में पहरा देने के लिए पहरेदार रखे जाते थे।[4] लोग सड़कों पर खुलेआम मारपीट करते थे।[5] अबलाओं एवं दुर्बलों के लिए सड़कों पर रात्रि को निकलना

---

१. स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति। द्वितीय अंक, पृ० १२६

२. हीमादिके ! ईदिशे दाशभावे, ज शच्च कं पि ण पत्तिआअदि। (सकरुणम्) अज्जचालुदत्त ! एत्तिके मे विहवे। (इति पादयोः पतति)

संस्कृतछाया—हन्त ! ईदृशोदासभावः, यत् सत्यं कमपि न प्रत्यायति। आर्य-चारुदत्त ! एतावान् मे विभवः। पृ० ५५२

३. एदाये पदोसवेलाए इध राअमग्गे गणिआ विडा चेडा राअवल्लहाअ, पुरिसा सञ्चरन्ति।

संस्कृतछाया—एतस्यां प्रदोषवेलायां इह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राज-वल्लभाश्च पुरुषाः सञ्चरन्ति। प्रथम अंक, पृ० ३४

४. राजमार्गो हि शून्योऽयं रक्षिणः सञ्चरन्ति च।
वञ्चना परिहर्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी॥ १/५८

५. पृ० १०१, १२२

खतरनाक समझा जाता था।[1] सम्भ्रान्त एवं शिष्ट व्यक्ति रात्रि में नृत्य-सङ्गीत आदि का अभ्यास करते थे। गायक रेभिल का गाना सुनकर चारुदत्त के बड़ी देर से घर वापिस आने का वर्णन मिलता है।

सवारी के रूप में बैलगाड़ियों का अधिक प्रचलन था। कभी कभी अश्व का भी प्रयोग किया जाता था। नवम अंक में अधिकरणिक वीरक को घोड़े पर जीर्णोद्यान जाने को कहता है।[2] धनाढ्य लोग सवारी के लिए बैलगाड़ियों के अतिरिक्त हाथी भी रखते थे। वसन्तसेना के पास भी एक हाथी था जिसका नाम खुण्टमोडक था।[3] धनीमानी व्यक्ति पक्षियों को पालने का भी शौक रखते थे।[4]

मृच्छकटिक से तत्कालीन विवाहपद्धति का भी स्पष्ट आभास मिलता है। वैवाहिक सम्बन्धों में जाति का कोई प्रतिबन्ध दिखाई नहीं पड़ता। बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। उस समय लोग प्रायः सवर्ण विवाह करते थे किन्तु असवर्ण स्त्री से विवाह करना भी निषिद्ध नहीं था। पुरुष वैध विवाह के अतिरिक्त भी यौन-सम्बन्ध रखते थे। ब्राह्मण चारुदत्त और ब्राह्मण शर्विलक दोनों ने क्रमश. वसन्तसेना और मदनिका वेश्याओं को अपनी वधू बनाया था। गणिका भी अपना पेशा छोड़ने पर वधू पद से विभूषित हो सकती थी, परन्तु समाज की दृष्टि से यह अच्छा नहीं समझा जाता था। दशम अंक में जब अधिकरणिक चारुदत्त से वसन्तसेना के साथ प्रणय-सम्बन्ध की जानकारी करना चाहता है, तो चारुदत्त

---

१. (क) वसन्तसेना—अज्ज ! इच्छे अहं इमिणा अज्जेण अणुगच्छिअन्ती सकं गेहं गन्तुं।
संस्कृतछाया—आर्य ! इच्छाम्यहम् अनेनार्येण अनुगम्यमाना स्वकं गेहं गन्तुम्।
प्रथम अंक, पृ० ६०

(ख) अहं उण बह्मणो जहिं तहिं जणेहिं चउप्पहोवणीदो उवहारो कुक्कुरेहिं विअ खज्जमाणो विवज्जिस्स।
संस्कृतछाया—अहं पुनर्ब्राह्मणः यस्मिन् तस्मिन् जनैः चतुष्पथोपनीत उपहार. कुक्कुरैरिव खाद्यमानो विपत्स्ये। प्रथम अंक, पृ० ६०

२. वीरक ! य एषोऽधिकरणद्वारि अश्वस्तिष्ठति तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यानं दृश्यताम्—अस्ति तत्र काचिद्विपन्ना स्त्री न वेति। नवम अंक, पृ० ४६३

३. (क) एसो क्खु वसन्तसेणाआए खुण्टमोडके णाम दुट्ठहत्थी विअलेदि त्ति।
संस्कृत छाया—एष खलु वसन्तसेनाया खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती विकलयतीति। द्वितीय अंक, पृ० १३७

(ख) ······जो सो अज्जआए खुण्टमोडओ णाम दुट्ठहत्थी······।
संस्कृतछाया—य. स आर्यायाः खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती।
द्वितीय अंक, पृ० १३८

४. ही ही भो ! पत्तारअं किद गणिआए णाणापक्खिसमूहेहिं।
संस्कृत छाया—ही ही भो ! प्रस्तारणं कृतं। गणिकया नानापक्षिसमूहैः।
चतुर्थ अंक, पृ० २४१–२४२

समाज के भय से स्पष्ट उत्तर देने में लज्जा का अनुभव करता है।[1] रखैल की प्रथा भी प्रचलित थी। शकार के लिये 'काणेलीमात' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त शकार को राजा पालक का स्यालक बताया गया है। सामान्य रीति से वैध एवं धार्मिक विवाह होते थे जिसका संकेत वैवाहिक अग्नि के उल्लेख से तथा वर की सजावट एवं विवाह के समय के बाजों की ध्वनियों के उल्लेख में प्रकट होता है।[2] मृत्यु से सम्बन्धित रीतियों का संकेत धूता के चिता-प्रवेश की योजना से मिलता है, साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि अन्त्येष्टि में तिलोदक का प्रयोग होता था।[3]

स्त्रियों की दशा—मृच्छकटिक काल की स्त्रियों की प्रवृत्ति विलासितापूर्ण थी। वे आभूषण प्रिय थीं। वे नूपुर, हस्ताभरण, करधनी, कण्ठहार और स्वर्णाभूषण धारण करती थीं। पुष्पों से वेणी को अलङ्कृत करने की भी प्रथा थी।

नारियों की प्रमुखतः दो श्रेणियाँ थीं यथा प्रकाशनारी अथवा गणिका और अप्रकाशनारी अथवा कुलवधू।[4] तीसरी श्रेणी नारियों की एक और थी जो भुजिष्या कहलाती थीं। वे दासियाँ होती थीं। वे अपनी मुक्ति का मूल्य चुका कर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती थीं। मदनिका ऐसी ही नारी थी जिसे वसन्तसेना ने दासता से मुक्त कर दिया और ब्राह्मण शर्विलक ने उसे अपनी 'वधू' बना लिया।[5] राजाज्ञा से भी दासों को मुक्त कर दिया जाता था। स्थावरक को

---

१. अधिकरणिक—गणिका तव मित्रम् ?
चारुदत्त—(सलज्जम्) भो अधिकृताः ! मया कथमीदृशं वक्तव्यम्, यथा गणिका मम मित्रमिति। अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्रम्।
दशम अंक, पृ० ४८२–४८३

२. रक्त तदेव वरवस्त्रमियं च माला कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव जाता विवाहपटहध्वनिभिः समाना ॥ १०/४४

३. जाद ! तुमं ज्जेव पज्जवट्ठावेहि अत्ताणं तिलोदअदाणाअ।
संस्कृतछाया—जात ! त्वमेव पर्यवस्थापय आत्मानं अस्माकं तिलोदकदानाय।
दशम अंक, पृ० ५१४

४. अस्य चतु शालमिमं प्रवेदय प्रकाशनारीधृत एष यस्मात्।
तस्मात् स्वयं धारय विप्र तावत् यावन्न तस्याः खलु भो समर्प्यते ॥ ३/७

५. (क)……तदा तर्कयामि, एसो सो जणो एदं इच्छदि अभुजिस्सं कादुं।
संस्कृत छाया—तदा तर्कयामि—एष स जन एतामिच्छति अभुजिष्यां कर्तुम्।
चतुर्थ अंक, पृ० १९८

(ख) मदनिके ! किं वसन्तसेना मोक्ष्यति त्वां निष्क्रयेण ?
सखिलअ ! भणिदा मए अज्जआ- तदो भणादि, जइं मम सच्छन्दो, तदा विणा अत्थं सव्वं परिजणं अभुजिस्सं करइस्सं।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

ा की आज्ञा से ही दासत्व से मुक्त किया गया था।[1]

मृच्छकटिक मे वेश्याओं का विस्तृत वर्णन है। इसकी नायिका वसन्तसेना जन्म से गणिका है किन्तु उसका आचरण कुलजावत् है। उस युग मे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी वेश्याओं मे सम्बन्ध रखते थे। वसन्तसेना जैसी गणिकाएँ अपनी स्थिति से असन्तुष्ट थी, वे उस कर्म से घृणा करती थी, इसलिए वे पवित्र वधू-पद पाने के लिए प्रयत्नशील रहती थी। वसन्तसेना और मदनिका इसके निदर्शन हैं। सामान्यत गणिकाओं से सम्बन्ध समाज की दृष्टि मे अच्छा नही माना जाता था। विदूषक ने एक स्थल पर कहा भी है कि गणिका जूते मे पडी हुई कंकडी के समान है, जो बडी कठिनाई से निकाली जाती है।[2]

मृच्छकटिक-काल मे गणिकाएँ बडी समृद्धिशालिनी थी। उनके अपने भव्य प्रासाद भी थे। वे हाथी भी रखती थी। विदूषक ने वसन्तसेना के दूसरे प्रकोष्ठ को देखते हुए कहा है कि इधर महावतो द्वारा भात मे बहते हुए तेल से मिश्रित अन्नपिण्ड हाथी को खिलाया जा रहा है।[3]

८ विदूषक ने वसन्तसेना के आठो प्रकोष्ठों को देखा और उनमे एक से एक सुन्दर तथा अद्भुत वस्तुओं को देखकर आश्चर्य-चकित रह गया और सहसा कह उठा कि वसन्तसेना के बहुवृत्तान्त वाले आठ प्रकोष्ठो को देखकर मुझे सचमुच विश्वास हो गया कि मैने एक ही स्थान पर स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल-लोकमय

(पिछले पृष्ठ का शेष)

संस्कृत छाया—शर्विलक भणिता मया आर्य्याः, ततो भणति—यदि मम स्वच्छन्द. तदा विना अर्थं सर्वं परिजनमभुजिष्य करिष्यामि। चतुर्थ अंक, पृ० १९९-२००

(ग) सम्पदं तुमं ज्जेव वन्दणीआ सवुत्ता। ता गच्छ, आरह पवहणं। सुमरेसि मं।

संस्कृतछाया—साम्प्रतं त्वमेव वन्दनीया सवृत्ता। तद् गच्छ, आरोह प्रवहणम्। स्मरसि माम्॥ चतुर्थ अक, पृ० २२३

(घ) सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यता जनः।
यत्र ते दुर्लभ प्राप्त वधूशब्दावगुण्ठनम्॥ ४/२४

१. स्थावरकस्य कि क्रियताम्।
सुवृत्त ! अदासो भवतु। दशम अंक, पृ० ६००

२. गणिका णाम पादुअन्तर-पविट्ठा विअ लेट्टुआ दुक्खेण उण णिराकरीअदि।
संस्कृतछाया—गणिका नाम पादुकान्तर प्रविष्टा इव लेष्टुका दुःखेन पुनर्निराक्रियते। पंचम अंक, पृ० २६३

३. इदो अ कूरच्चुअतेल्लमिस्स पिण्डं हत्थी पडिच्छावीअदि मत्तपुरिसेहिं।
संस्कृतछाया—इतश्च कूरच्युत-तैलमिश्रं पिण्डं हस्ती प्रतिग्राह्यते मात्रपुरुषैः।
चतुर्थ अंक, पृ० २३३

त्रिभुवन को देख लिया है ।[1]

वेश्यावर्ग को सारा धन कामुक एवं विलासी धनियों द्वारा प्राप्त होता था। कामुक धनी व्यक्तियों का सारे धन का अपहरण करके ये उनसे अपना सम्बन्ध समाप्त कर देती थी। विदूषक ने कहा भी है कि निर्धन कामुकों को अपमानित करने वाली वेश्या जैसी स्त्रियाँ निन्द्य हैं।[2] विट ने भी वसन्तसेना से बातचीत करते हुए अपने मनोभाव व्यक्त किये हैं कि बाजार में धन देकर खरीदी जाने वाली वस्तु के समान तुम देह धारण करती हो, अतः रसिक और अरसिक दोनों के साथ समान व्यवहार करो। तुम वेश्या हो और तालाब, लता तथा नौका के तुल्य हो, अतः प्रत्येक मनुष्य का तुम समान आदर करो।[3] चारुदत्त ने भी कहा है कि जिसके पास धन है, उसी की वह कामिनी है, क्योंकि यह गणिका समुदाय तो धन के वशीभूत है।[4] प्रतिष्ठित एवं सभ्य व्यक्तियों के घरों में वेश्याओं को प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी। प्रमादवश चारुदत्त द्वारा रदनिका समझी जाने वाली वसन्तसेना ने स्वयं कहा है कि तुम्हारे अन्तःपुर में प्रवेश के लिये मैं मन्दभागिनी हूँ।[5] अन्यत्र चारुदत्त ने गणिकाओं के पुरुषों के समाने अधिक बोलने की निन्दा करते हुए वसन्तसेना के विषय में कहा है कि यद्यपि यह गणिका है, अधिक बोलने वाली है तथापि मेरे जैसे पुरुषों की उपस्थिति में धृष्टता से नहीं बोलती है।[6] वसन्तसेना ने वेश्याओं के सम्बन्ध में अपने मनोभावप्रकट करते हुए कहा है कि विभिन्न पुरुषों के सम्पर्क के कारण वेश्यायें असत्यपटु हो जाती हैं।[7]

वेश्याओं के सम्बन्ध में जन-सामान्य की उपर्युक्त धारणाएँ अवश्य थी, किन्तु गणिका वसन्तसेना इसका अपवाद थी। धन का उसकी दृष्टि में कोई महत्त्व

१. एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्ठपओट्ठं भवणं पेक्खिअ, जं सच्चं जाणामि एकत्थं विअ तिविट्ठअं दिट्ठं। किं दाव गणिआघरो। अथवा कुवेरभवणपरिच्छेदो त्ति ?
संस्कृत छाया—एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तं अष्ट-प्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य, यत् सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम् ।······किं तावत् गणिकागृहम्। अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः इति। चतुर्थ अंक, पृ० २४७

२. अवमाणिद णिद्धण कामुआ विअ गणिआ।
संस्कृत छाया—अवमानिता निर्धनकामुका इव गणिकाः। प्रथम अंक पृ० ६१

३. १/३१-३२

४. यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता धनहार्यो ह्यसौ जनः। ५/६ (पूर्वार्ध)

५. मन्दभाइणी क्खु अहं तुम्हें अब्भन्तरस्स।
संस्कृत छाया—मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य। प्रथम अंक, पृ० ८३

६. पुरुषपरिचयेन च प्रगल्भ न वदति यद्यपि भाषते बहूनि। १/५६

७. हञ्जे! णाणापुरिससंगेण वेसाजणो अलीअदक्खिणो भोदी। (हञ्जे! नानापुरुषसंगेन वेश्याजनोऽलीकदक्षिणो भवति)। चतुर्थ अंक, पृ० १६१

नहीं था, वह धन की अपेक्षा गुणों का मूल्यांकन करती थी। विट द्वारा वेश्यावृत्ति का वर्णन सुनकर वसन्तसेना ने कहा है कि प्रेम का वास्तविक कारण गुण है, न कि बलात्कार।[1] चारुदत्त ने भी वसन्तसेना की प्रशंसा में कहा है कि यह वसन्तसेना गुणों द्वारा वश में करने योग्य है। वसन्तसेना ने अपनी वृद्धा माता के आदेश का न पालन करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यदि मुझे जीवित चाहती हो तो फिर संस्थानक के साथ (धन के लोभ में) जाने की आज्ञा मुझे माता के द्वारा नहीं मिलनी चाहिये।[2] वेश्यावृत्ति से वसन्तसेना को कितनी घृणा थी, इससे स्पष्ट हो जाता है। उसकी कुलवधू होने की महती आकांक्षा उस समय उभरकर दिखाई देती है जब वह मदनिका को शर्विलक के साथ सानन्द विदा करते हुए कहती है अब तुम वन्दनीय हो गई हो।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में वेश्यायें यदि किसी सम्भ्रान्त नागरिक से विवाह कर लेती थी, तो उन्हें कुलवधू का गौरव प्राप्त हो जाता था। वसन्तसेना को राजा आर्यक ने कुलवधू की उपाधि प्रदान की थी।[4]

मृच्छकटिक-कालीन वेश्यावर्ग समाज की दृष्टि में अपमानित जीवन-यापन की अपेक्षा विवाहित जीवन बिताकर कुलवधू के रूप को महत्त्व देता था। तत्कालीन राजा किसी वेश्या को उसके पवित्र आचरण की स्वीकृति में वधू की पदवी प्रदान कर सकता था और तब गणिका होने का उसका कलंक प्रक्षालित हो जाता था। वसन्तसेना इसका निदर्शन है। उसने धन के लोभ में फँसकर किसी धनी को अपना प्रियतम नहीं चुना अपितु उसने तो धार्मिक किन्तु निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त को चुना और उससे विवाह कर अपनी कुलवधू होने की इच्छा को पूर्ण किया। वसन्तसेना त्याग और उदारता की जीती-जागती मूर्ति थी और गणिका होते हुए भी उत्तम विचारों वाली थी।

कुलवधू अन्तःपुर में निवास करती थी। विशिष्ट अवसरों पर घर से बाहर निकलने पर मुँह पर घूँघट कर लेती थी। आर्थिक दृष्टि से वह पति पर आश्रित

---

१. गुणो क्खु अणुराअस्स कालणं, न उण बलक्कारो।
संस्कृत छाया—गुणः खलु अनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः।
प्रथम अंक, पृ० ५२

२. जइ मा जीअन्तीं इच्छसि ता एव्वं ण पुणो अहं अत्ताए आण्णाविदव्वा।
संस्कृतछाया—यदि मां जीवन्तीमिच्छसि तदा एवं न पुनरहं मात्रा आज्ञापयितव्या। चतुर्थ अंक, पृ० १६४

३. सम्पदं तुमं ज्जेव वन्दणीआ संवुत्ता।
संस्कृत छाया—साम्प्रतं त्वमेव वन्दनीया संवृत्ता। चतुर्थ अंक, पृ० २२३

४. आर्ये! वसन्तसेने! परितुष्टो राजा भवती वधूशब्देनानुगृह्णाति।
दशम अंक, पृ० ६६८

रहती थी।[1] पति ही उसके लिये आभूषण होता था। आभूषणों के बदले वसन्तसेना को चेटी द्वारा अपनी रत्नावली लौटाते हुए चारुदत्त की पत्नी धूता ने कितने सुन्दर विचार व्यक्त किये है कि आर्यपुत्र ने आपको यह रत्नावली प्रसन्न होकर प्रदान की है। मेरा इसको लेना उचित नही है। आर्यपुत्र ही मेरे विशेष आभूषण है।[2] कुलवधू अपने पति की मृत्यु पर आग मे जलकर सती हो जाना पसन्द करती थी। धूता इसका प्रत्यक्ष निदर्शन है। वह अपने पति चारुदत्त के शोक मे चरणो से लिपटते हुए और आंचल को खीचते हुए अपने पुत्र रोहसेन को हटाती हुई उसकी चिन्ता नही करती, अपितु अपने पति की मृत्यु का अशुभ समाचार सुनने से पूर्व चिता की ओर बढती है। वह पुत्र से कहती है—मुझे छोड दो, मैं आर्यपुत्र के मरण-रूप अमगल को सुनने से डरती हूं।[3] विदूषक के यह कहने पर कि आप जैसी के द्वारा चितारोहण को ऋषिगण पाप समझते है] यह सुनकर भी सती-साध्वी धूता कह उठती है कि यह पापाचरण अच्छा है, किन्तु अमंगल का श्रवण अच्छा नही।[4] गृहिणी धूता वस्तुत भारतीय नारी का ज्वलंत उदाहरण है। पतिपरायण धूता गणिका वसन्तसेना से भी ईर्ष्या नही करती अपितु बहिन का सा व्यवहार करती है। वसन्तसेना को प्रत्यक्ष देखकर वह कहती है भाग्य से बहिन कुशलपूर्वक है।[5] धूता जैसी नारी का सामाजिक दृष्टि से बहुत महत्व था। इसी

---

१. आत्मभाग्यक्षतद्रव्य स्त्रीद्रव्येणानुकम्पित ।
   अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थत पुमान् ।। ३/२७

२ अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा। ण जुत्तं मम एदं गेण्हिदुम्। अज्जउत्तो ज्जेव मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी ?
   सस्कृत छाया—आर्यपुत्रेण युष्माक प्रसादीकृता। न युक्तं मम ता गृहीतुम्। आर्यपुत्र एव मम आभरणविशेष इति जानातु भवती। षष्ठ अंक, पृ० ३१७

३. धूता (सास्रम्) जाद ! मुंचेहि म। मा विग्धं करेहि। भीआमि अज्जउत्तस्स अमंगलाकण्णणादो।
   सस्कृतछाया—जात ! मुंच माम्। मा विघ्नं कुरु। बिभेम्यार्यपुत्रस्यामंगलाकर्णनात्। दशम अंक, पृ० ३६३

४. (क) भोदीए दाव बम्हणीए भिण्णतणेण चिदाधिरोहण पाव उदाहरन्ति रिसीओ।
   सस्कृत छाया—भवत्यास्तावद्ब्राह्मण्या भिन्नत्वेन चिताधिरोहण पापमुदाहरन्ति ऋषय। दशम अंक, पृ० ५६३
   (ख) वर पावाचरणं ण उण अज्जउत्तस्स अमगलाकण्णणम्।
   संस्कृत छाया—वरं पापाचरणं, न पुनरार्यपुत्रामंगलाकर्णनम्।
   दशम अक, पृ० ५६३

५. दिट्ठिआ कुसलिणी बहिणिआ।
   संस्कृतछाया—दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी। दशम अंक, पृ० ५६८

कारण प्रकाशनारी (वेश्या) दुर्लभ वधू रूप सौभाग्य पाने के लिए बड़ी लालायित रहती थीं और इसके लिये वे सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत रहती थीं।

सामान्य स्त्रियाँ अपने पति में आस्था रखती थीं। किन्तु दुर्बल पति वाली स्त्रियों का अपहरण कर लिया जाता था। वसन्तसेना ने विट से सम्भाषण करते हुए एक रूपक के द्वारा इस भाव को व्यक्त किया है कि निर्बल पति वाली स्त्री के समान चाँदनी को मेघों ने बलपूर्वक हरण कर लिया है।[1]

इस प्रकार सामान्य दृष्टि से नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण सम्मानजनक कहा जा सकता है। धूता और वसन्तसेना का सौत का सम्बन्ध परस्पर प्रीति, त्याग एवं विनम्रता का प्रतीक है। धूता कुशल गृहिणी, पतिपरायणा तथा पतिभाग्यशालिनी है, जिसका उदाहरण मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। वसन्तसेना त्याग की जीती-जागती प्रतिमूर्ति है और गणिका होते हुए उत्तम आचरण वाली है। क्रीतदासी नारी के रूप में मदनिका प्रमाण है जिसने अपनी कुशलता से शर्विलक को अपनी ओर आकृष्ट किया और अन्ततः दासता से मुक्ति पाकर कुलवधू बन गई।

द्यूत-कर्म—

मृच्छकटिक से प्रतीत होता है कि उस समय जुए की प्रथा थी। निम्न वर्ग के लोग आम जुआ खेलते थे। जुआरियों के अपने नियम तथा अपनी मण्डली थी। नियमों का पालन करना प्रत्येक जुआरी के लिये आवश्यक था। जुए में हारे रुपयों का हिसाब रखने के लिए बहीखाते होते थे। हिसाब लिखने वाले को लेखक कहा जाता था।[2] जुआरियों का मुखिया सभिक कहा जाता था। जुए का खेल वैध माना जाता था। यदि कोई जुए में हार जाने पर देय धन नहीं देता था, तो उस पर न्यायालय में मुकदमा करके रुपया वसूल किया जाता था।[3] जुआरियों की अवस्था अच्छी नहीं थी। कभी-कभी कुत्ते से कटवाये जाने तथा सिर नीचे और पैर ऊपर करके लटकाये जाने जैसी यन्त्रणाएँ उन्हें भोगनी पड़ती थी।[4] तथापि

---

१. ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्साह्य मेघैर्हृता। ५/२०

२. लेहअवावुडहिअअं सहिअं दट्ठूण झत्ति पब्भट्ठो।
एण्हिं मग्गणिवडिदो कं णु क्खु सरणं पवज्जे॥
संस्कृतछाया—लेखकव्यापृतहृदयं सभिकं दृष्ट्वा झटिति प्रभ्रष्टः।
इदानीं मार्गनिपतितः कं नु खलु शरणं प्रपद्ये॥ २/२

३. लाअउलं गदुअ णिवेदेम्ह।
संस्कृतछाया—राजकुलं गत्वा निवेदयामः। द्वितीय अंक, पृ० १०६

४. यः स्तब्धं दिवसान्तमानतशिरा नास्ते समुद्विग्नवान्
यस्योद्घर्षणलोष्टकैरपि सदा पृष्ठे न जातः किणः।
यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहर्जङ्घान्तरं चर्व्यते
तस्यात्यन्तनिरन्तरं नरवरं द्यूतप्रमत्तेन किम्॥ २/१२

जुआ खेलना कोई बुरा व्यसन नही माना जाता था। चारुदत्त जैसे सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति को वसन्तसेना के पास यह सदेश भेजने मे जरा भी संकोच नही हुआ कि वह धरोहर वाले आभूषण जुए मे हार गया है।[१] जुए की कतिपय शैलियो—जिन्हे लाक्षणिक कहा जाता था, का भी पता चलता है। उदाहरणार्थ गर्दभी शैली वह शैली थी, जिसमे जुआरी गधे के समान कौडी से मारा जाता था और शक्ति वह शैली थी जिसमे जुआरी मन्त्र अथवा किसी सिद्धि से छोडे गये बाण के समान मारा जाता था।[२] त्रेता, नर्दित तथा कट नामक जुए के दाँवों का भी वर्णन मिलता है।[३] कुछ लोग जुए से ही अपनी आजीविका चलाते थे। संवाहक ने वसन्तसेना से स्वय कहा है कि चारुदत्त के निर्धन हो जाने पर मैं जुआरी हो गया।[४] दर्दुरक ने द्यूत का परिचय देते हुए कहा है कि जुआ मनुष्यों का बिना सिंहासन का राज्य है।[५] यह जुआ किसी के द्वारा किये गये अनादर को तुच्छ समझता है, प्रत्येक दिन धन उपार्जित करता है और यथेच्छ धन भी देता है। सम्पत्तिशाली राजा के समान यह धनवान् मनुष्यो द्वारा सेवित होता है। जुए से ही मैंने धन और जुए के प्रभाव से ही स्त्री तथा मित्र की प्राप्ति की है। इसी भाँति जुए से ही किसी को कुछ दिया है और उपभोग भी किया है, यहाँ तक कि जुए से ही मैंने अपना सर्वनाश भी कर डाला है।[६] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि द्यूत मे स्त्री भी दाव पर लगा दी जाती थी। द्यूत-अध्यक्ष सभिक पराजित जुआरी को केवल पकडता और झकझोरता ही नही था, अपितु उसे मारता भी था और कभी-कभी तो उससे पैसा वसूलने के लिये उसे अपने को बेचने तक के

१. यत्खल्वस्माभिः सुवर्णभाण्डमात्मीयमिति कृत्वा विश्रम्भाद् द्यूते हारितम्।
तृतीय अक, पृ० १८७

२. णव-बन्धण-मुक्काए विअ गद्दहीए हा। ताडिदोम्हि गद्दहीए।
अङ्गलाअमुक्काए विअ शत्तीए घडुक्को विअ घादिदो म्हि शत्तीए॥
सस्कृत छाया—नव-बन्धन-मुक्तयेव गर्दभ्या हा ताडितोऽस्मि गर्दभ्या।
अङ्गराजमुक्तयेव शक्त्या घटोत्कच इव घातितोऽस्मि शक्त्या॥ २/१

३ त्रेता हृतसर्वस्वः पावर-पतनाच्च शोषितशरीरः।
नर्दितदर्शितमार्गः कटेन विनिपातितो यामि॥ २/६

४. चालित्ताशेशे अ तस्सि जूदोवजीवि म्हि संवुत्तो।

सस्कृतछाया—चारित्र्यावशेषे च तस्मिन् द्यूतोपजीवी अस्मि सवृत्त।
द्वितीय अंक, पृ० १३१–१३२

५. भो.! द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासन राज्यम्। द्वितीय अंक, पृ० ११३

६. (क) न गणयति पराभवं कुतश्चिद् हरति ददाति च नित्यमर्थजातम्।
नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन॥ २/७
(ख) द्रव्य लब्ध द्यूतेनैव दारा मित्रं द्यूतेनैव।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव॥ २/८

लिये विवश कर देता था।[1] द्यूत में हारा हुआ जुआरी पुनः खेलने के लिए बुलाया जाता था। संवाहक को द्यूत ऋण से मुक्त करने के लिये वसन्तसेना द्वारा दिये गये स्वर्ण-कंकण को उनकी चेटी से प्राप्त करके सभिक माथुर कहता है—अरे! उस कुलपुत्र से कहना तुम्हारी शर्त पूरी हो गई, आओ पुनः जुआ खेलो।[2] जुए जैसे व्यसन से पीछा छुड़ाना सुगम नहीं होता। संवाहक की उक्ति इस तथ्य की पुष्टि करती है—मैं जानता हूँ कि सुमेरु पर्वत के शिखर पर से गिरने के समान जुआ अनिष्टकर है, अतः मैं जुआ नहीं खेलूँगा, फिर भी कोकिल की मधुर कूक के समान कत्ता-शब्द से मेरा मन आकृष्ट हो रहा है। कत्ता-शब्द सुनकर निर्धन व्यक्ति का मन उसी ओर खिंच जाता है और चिंतित हो जाता है।[3] द्यूत के लिये पासे हाथी-दाँत के बने हुए होते थे। वसन्तसेना के पास हीरों के निर्मित पासे थे। इस प्रकार उस समय द्यूत-विज्ञान अपने में परिपूर्ण था।

चौर्य-कर्म :—

जुए के अतिरिक्त समाज में अन्य उल्लेखनीय बुराई चोरी करने की थी। चौर्य-कला अत्यन्त विकसित रूप में थी। ब्राह्मण शर्विलक चौर्य-कार्य में कुशल था। वह वसन्तसेना की क्रीतदासी मदनिका में अनुरक्त था और उसको अपनी वधू बनाना चाहता था। उस समय की व्यवस्था के अनुसार धन देकर ही वह मदनिका को दासत्व से मुक्त करवा सकता था किन्तु वह निर्धन था। अतः

---

१. (क) पिदरं विक्किणिअ पअच्छ, मादरं विक्किणिअ पअच्छ, अत्ताणं विक्किणिअ पअच्छ। द्वितीय अंक, पृ० १११-११२

संस्कृत छाया—पितरं विक्रीय प्रयच्छ, मातरं विक्रीय प्रयच्छ, आत्मानं विक्रीय प्रयच्छ। द्वितीय अंक, पृ० १११-११२

(ख) आर्या: ! क्रीणीध्वं माम् अस्मात् सभिकस्य हस्तात् दशभिः सुवर्णैः।

द्वितीय अंक, पृ० ११२

२. अरे ! भणेसि तं कुलपुत्तं—पूदं तुए गाड्ढे। आअच्छ, पुणो जूदं रमअ।

संस्कृतछाया—अरे, भणिष्यसि तं कुलपुत्रम्—'पूतस्तव गाढ, आगच्छ पुनर्द्यूतं रमय। द्वितीय अंक, पृ० १३७

३. (क) जाणामि ण कीलिस्सं सुमेलु-शिहल-पडण-शण्णिहं जूदं।
तह वि हु कोइलमहुले कत्ताशद्दे मणं हलदि॥

संस्कृत छाया:—जानामि न क्रीडिष्यामि सुमेरु-शिखर पतन-सन्निभं द्यूतम्।
तथापि खलु कोकिलमधुरः कत्ताशब्दो मनो हरति॥ २/६

(ख) कत्ताशद्दे णिण्णाणअस्स हलइ हडक्कं मणुश्शश्श।
ढक्काशद्देव्व णलाधिवश्श पब्भट्टलज्जश्श॥

संस्कृत छाया—कत्ताशब्दो निर्नाणकस्य हरति हृदयं मनुष्यस्य।
ढक्काशब्द इव नराधिपस्य प्रभ्रष्टराज्यस्य॥ २/८

उसने चारुदत्त के यहाँ चोरी करके धन प्राप्त करने की योजना बनाई, जिससे मदनिका को मुक्त करा सके। चौर्य व्यसन को अपनाने वाले कार्तिकेय कनक शक्ति और भास्करनन्दी को अपना अभीष्ट देवता मानते थे। शर्विलक ने अपने संधि-कौशल की प्रशंसा में अपनी गुरु-परम्परा को स्मरण करते हुए कहा है कि कुमार कार्तिकेय को, ब्राह्मण्यदेवरूप देवपरायण कनकशक्ति, भास्करनन्दी तथा योगाचार्य को नमस्कार है।[1]

सबके निश्चिन्त सोते हुए सामान्यतः किसी की चोरी करना वीरता का कार्य नहीं समझा जाता था, तथापि चौर्यवृत्ति को न्यायसंगत मानते हुए शर्विलक ने कहा है कि—मनुष्य चौर्य-कर्म को अधम भले ही कहें, क्योंकि यह चोरी मनुष्यों के सो जाने पर होती है और इसमें विश्वस्त जनों का द्रव्यापहरण रूप अपमान होता है, अतः यह चोरी पराक्रम नहीं है। चोरी रूपी धूर्तता स्वतन्त्र होने के कारण उत्तम है। इस कार्य में किसी का दास बनकर हाथ नहीं जोड़ना पड़ता और यह कार्य बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने सोते हुए युधिष्ठिर के पुत्रों को धोखे से मारा था। अतः इसमें कोई दोष नहीं है।[2]

शर्विलक ने चारुदत्त के यहाँ चोरी की जिस विधि को अपनाया, निश्चय ही वह अत्यन्त कलात्मक तथा वैज्ञानिक मानी जा सकती है। सेंध लगाने का मानो शास्त्र ही बन गया था क्योंकि शर्विलक द्वारा सेंध लगाने के नियमों का सूक्ष्म विवरण मृच्छकटिक में प्रस्तुत किया गया है।[3] शर्विलक ने जो चोर-कर्म किया, वह अत्यन्त मर्यादित रूप से किया है। इससे यह स्वीकार किया जा सकता है कि चोरों की भी एक आचार-संहिता थी। शर्विलक ने कहा है कि धन का लोभी मैं विकसित लता के समान अलंकार धारण करने वाली नारी का अपहरण नहीं करता हूँ। ब्राह्मण के लिए सुरक्षित सुवर्ण भी नहीं चुराता हूँ और न यज्ञ के लिए आयोजित सामग्रियों को ही लेता हूँ। धात्री की गोद में स्थित बालक का भी कभी अपहरण नहीं करता। इस प्रकार चोरी करने में भी मेरी बुद्धि कर्तव्य और

---

१. नमो वरदाय कुमारकार्तिकेयाय नम. कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय नमो भास्करनन्दिने, नमो योगाचार्याय, यस्याहं प्रथमः शिष्यः। तेन च परितुष्टेन योगरोचना मे दत्ता। तृतीय अंक, पृ० १६२

(ख) अनया हि समालब्धं न मां द्रक्ष्यन्ति रक्षिणः।
शस्त्रञ्च पतितं गात्रे रुजं नोत्पादयिष्यति॥ ३/१५

२. कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद् वर्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलि—
र्मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना॥ ३/११

३. ३/१२, १३, १४

अकर्तव्य का सदा पूर्ण विवेक कर लेती है।[1] शर्विलक के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस घर में नारियाँ होती थी, उस घर में चोरी के लिए सेंध नही लगाई जाती थी। अलंकृत सुकुमार नारी तथा धात्री की गोद में से बालक का अपहरण नही किया जाता था। ब्राह्मण के लिये सुरक्षित सुवर्ण और यज्ञार्थ प्रस्तुत सामग्री की चोरी नही की जाती थी। चौर्य-कार्य में धैर्य, शारीरिक बल और निर्भीकता की अपेक्षा होती है। शर्विलक ने अपने सम्बन्ध में कहा है कि चुपचाप भागने में मैं बिल्ली हूँ, शीघ्र भागने में हिरण, माया परिवर्तन में मूर्तिमती वाणी, रात्रि के लिये दीपक, संकट के समय भेड़िया, भूमि के लिये घोडा और जल के लिये नौका के तुल्य हूँ। दौड़ने में सर्प के समान, धैर्य में पर्वत के समान, शीघ्र-गमन में गरुड़ के समान, पराक्रम में साक्षात् सिंह के समान हूँ।[2] सेंध लगाने के सम्बन्ध में बताये गये उपायों का भी शर्विलक ने सूक्ष्म एवं सम्यक् विवेचन किया है जैसे पक्की ईंट वाले भवनों में ईंटों का खींचना, कच्ची ईंटों के घरों में ईंटों का छेदना, मिट्टी के ढेलों से निर्मित घरों में भित्ति का सिंचन करना और काष्ठ-निर्मित घरों में काष्ठ को उखाड़ना।[3] सेंध के सात प्रकार के आकारों का भी शर्विलक ने सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया है कि विकसित कमल के समान, सूर्य-मण्डल के समान, बालचन्द्र के समान, विस्तीर्ण तालाब के समान, त्रिकोण स्वस्तिक के समान या पूर्ण घट के समान सेंध किस स्थान पर फोड़कर मैं अपना कौशल दिखलाऊँ, जिसे देखकर नागरिक आश्चर्यचकित हो जाएँ।[4] सेंध नापने के लिये प्रमाण-सूत्र के अभाव में यज्ञोपवीत का प्रयोग करता है।[5] चोरी करने के लिये

---

१. नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां
 विप्रस्वं न हरामि काञ्चनमयो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम्।
 धात्र्युत्सङ्गगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्
 कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता॥ ४/६

२. (क) मार्जारः क्रमणे मृगः प्रसरणे, श्येनो ग्रहालुञ्चने
 सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने श्वा सर्पणे पन्नगः।
 माया-रूप-शरीर-वेशरचने वाग् देशभाषान्तरे
 दीपो रात्रिषु सङ्कटेषु डुडुभो वाजी स्थले, नौर्जले॥ ३/२०
 (ख) भुजग इव गतौ गिरिः स्थिरत्वे पतगपतेः परिसर्पणे च तुल्यः।
 शश इव भुवनावलोकनेऽहं वृक इव च ग्रहणे बले च सिंहः॥ ३/२१

३. अत्र कर्मारम्भे कीदृशमिदानीं सन्धिमुत्पादयामि। तद्यथा पक्वेष्टकानामाकर्षणम्, आमेष्टकानां छेदनम्, पिण्डमयानां सेचनम्, काष्ठमयानां पाटनमिति।
 तृतीय अंक, पृ० १६०

४. पद्मव्याकोशं भास्करं बालचन्द्रं वापी-विस्तीर्णं स्वस्तिकं पूर्णकुम्भम्।
 तस्मिन् देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पं दृष्ट्वा श्वो यद्विस्मयं यान्ति पौराः॥ ३।१३

५. द्रष्टव्य ४।१६

प्रायः रात्रि का घोर अंधकार अच्छा समझा जाता था। शर्विलक के कथन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पहरेदारों की शंका का स्थान तथा दूसरे के घर को दूषित करने में निपुण मुझे घोर अन्धकार से सम्पूर्ण पदार्थों को आच्छन्न करने वाली यह रात्रि माता के समान स्नेह के आवरण में ढकती है।[1]

प्राचीन काल में चोरी स्वार्थपूर्ति के लिए की जाती थी। मृच्छकटिक में शर्विलक की चौर्यकर्म में प्रवृत्ति मदनिका की प्राप्ति के लिये दिखाई गई है। यद्यपि चौर्यकर्म निकृष्ट माना जाता है, तथापि मृच्छकटिक में इसे वैज्ञानिक रूप देकर चित्रित किया गया है।

दास-प्रथा—मृच्छकटिक में दासप्रथा बढ़ी-चढ़ी थी। उस समय स्वामी को धन देकर *दासों को स्वतन्त्र नागरिक बनाया जा सकता था। कभी-कभी राजाज्ञा* से भी दास मुक्त कर दिये जाते थे। दशम अंक के अन्त में चारुदत्त स्थावरक चेट के विषय में कहता है कि सद्व्यवहारी यह स्थावरक दासत्व से मुक्त हो जाए।[2]

दास का जीवन अत्यंत शोचनीय था। उसको सारा समय स्वामी की सेवा-शुश्रूषा में व्यतीत करना पड़ता था। धन की प्राप्ति के कारण जो पुरुष और *स्त्रियाँ बेच दिये जाते थे या स्वयं बिक जाते थे, उन्हीं का जीवन दास रूप में* व्यतीत होता था। इस रूप में बिकने वाले दास-दासियों का सम्बन्ध अपने परिवार से बिल्कुल समाप्त हो जाता था। स्वामी इनको अपनी सम्पत्ति के रूप में मानते थे। जिस व्यक्ति के पास जितने अधिक दास-दासी होते थे, वह उतना ही धनाढ्य माना जाता था। प्रायः दास-दासियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। कभी *कभी उनको उच्छिष्ट भोजन पर भी निर्वाह करना पड़ता था। शकार के कथन* से इस तथ्य की पुष्टि होती है, जब वह चेट को सारा उच्छिष्ट भोजन देने की बात करता है।[3] चेट के कथन से दासों की शोचनीय स्थिति का स्पष्ट आभास प्राप्त होता है—खेद है, दासता ऐसी बुरी चीज है कि वह सत्य का भी विश्वास नहीं करा पाती।[4] स्वामी अपने अधिकार के बल पर दासों से अभीष्ट किन्तु *निन्दनीय कार्य भी कराते थे। शकार अपने दास चेट से वसन्तसेना के वध रूप* निन्दनीय कार्य को करने के लिये हर प्रकार का प्रलोभन देता है। किन्तु वह उसे

---

१. नृपति-पुरुषशङ्कित-प्रचारं परगृह-दूषणनिश्चितैकवीरम्।
घन-तिमिर-निरुद्ध-सर्वभावा रजनिरियं जननीव संवृणोति॥ ३।१०

२. सुवृत्त, अदासो भवतु। दशम अंक, पृ० ६००

३. सव्वं दे उच्छिट्ठं दइश्शम्।
संस्कृत छाया—सर्वं ते उच्छिष्टं दास्यामि। अष्टम अंक, पृ० ४१३

४. हीमादिके ! ईदिशे दासभावे, जं शच्चं कं पि ण पत्तिआअदि। (सकरुणम्)
अज्जचालुदत्त ! एत्तिके मे विहवे।
संस्कृत छाया—हन्त ! ईदृशो दासभावः, यत् सत्यं कमपि न प्रत्याययति। आर्य-चारुदत्त ! एतावान् मे विभवः। दशम अंक, पृ० ५५२

करने से इंकार कर देता है।[1] दासों को अपने स्वामियों के अनुकूल ही चलना पड़ता था, क्योंकि उनकी बात के विरोध मे उन्हे यातनायें सहन करनी पड़ती थीं।[2]

मद्यपान—मृच्छकटिक-काल मे मदिरापान की प्रथा थी। शराब पीने के स्थान मदिरालय, आपानक अथवा पानगोष्ठी कहलाते थे। चतुर्थ अंक मे वसन्तसेना के छठे प्रकोष्ठ मे प्रवेश करने पर विदूषक मदिरा-सेवन की चर्चा करते हुए कहता है कि लोग कटाक्षपूर्वक देख रहे है, हँसी हो रही है, सी-सी करते हुए निरन्तर मदिरा का पान हो रहा है। ये चेट है और ये दूसरे पुत्र, कलत्र एवं धन का तिरस्कार कर यहाँ आये हुए मनुष्य उस बर्फ वाले मद्य को पी रहे हैं, जिसे वेश्याओं ने पीकर छोड़ दिया है।[3]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मद्यपान मनोरंजन के समय होता था, गर्मियों के दिनों मे बर्फ मिलाकर मदिरा-सेवन किया जाता था। वेश्यानुरागी व्यक्ति बर्फ मे मिली मदिरा को वेश्याओं को भेंट करते थे और उनसे अवशिष्ट पेय को पीकर आनन्दानुभव करते थे। अन्यत्र अष्टम प्रकोष्ठ मे वसन्तसेना की माता को देखकर विदूषक परिहास के साथ कहता है कि सीधु, सुरा और आसव इन तीन प्रकार के मद्यपान से मतवाली वसन्तसेना की माता इस प्रकार स्थूलकाय

---

१ (क) पहवदि भट्टके शरीलाह, ण चालित्ताह। ता पसीददु पसीददु भट्टके।
संस्कृत छाया—प्रभवति भट्टकः शरीरस्य, न चारित्रस्य। तत् प्रसीदतु प्रसीदतु भट्टकः। अष्टम अंक, पृ० ४१४

(ख) पिट्टदु भट्टके, मालेदु भट्टके, अकज्जं ण कलइश्शं।
संस्कृत छाया—पीडयतु भट्टकः मारयतु भट्टकः, अकार्यं न करिष्यामि।
अष्टम अंक, पृ० ४१६

(ग) द्रष्टव्य, ८/२५

२. चेडं वि पासाद-वालग्ग-पदोलिआए णिगलपूरिदं कदुअ थावइस्सं। एव्वं मन्ते रक्खिदे भोदि।
संस्कृत छाया—चेटमपि प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां निगडपूरितं कृत्वा स्थापयिष्यामि। एवं मन्त्रो रक्षितो भवति अष्टम अंक, पृ० ४४२

३. अवलोईअदि सकडक्खअं, पवट्टदि हासो, पिवीअदि अ अनवरअं ससिक्कारं मइरा। इमे चेड़ा, इमा चेड़िआओ, इमे अवरे अवधीरिद-पुत्त-दार-वित्ता मणुस्सा करआ-सहिद-सीद-मदिरेहिं गणिआ जणेहिं जे मुक्का आसआ ताइं पिअन्ति।
संस्कृत छाया—अवलोक्यते सकटाक्षम्, प्रवर्तते हासः पीयते च अनवरतं ससीत्कारं मदिरा। इमे चेटा, इमाश्चेटिका, इमे अपरे अवधीरितपुत्रदारवित्ता मनुष्या: करका-सहितशीत-मदिरैर्गणिकाजनैर्ये मुक्ता आसवा तान् पिबन्ति।
चतुर्थ अंक, पृ० २४०

हो गई है, यदि यहाँ इनकी मृत्यु हो जाये तो हजारों शृगालों का भोजनोत्सव हो जाए।[1]

मृच्छकटिक में मद्यपान करने का प्रचार द्यूत-प्रेमी और वेश्यानुरक्त पुरुषों और वेश्याओं तथा निम्नवर्ग के उच्छृंखल व्यक्तियों में था, उच्चवर्ग में कहीं इसकी चर्चा नहीं है। सम्भवतः तत्कालीन समाज में मद्यपान हेय समझा जाता था।

वेश्यालय—वेश्यालय तत्कालीन समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। सभी वर्ग के व्यक्ति वहाँ जा सकते थे। उज्जयिनी नगरी में गणिका वसन्तसेना का अष्ट प्रकोष्ठों वाला भव्य प्रासाद था, जिसे देखकर मैत्रेय विदूषक ने आश्चर्यान्वित होकर कहा था कि वह कुबेर के भवन में आ गया है।[2]

अस्पृश्यता—अस्पृश्यता की भावना के अभाव का भी आभास मिलता है। यथा कुछ कुएँ ऐसे थे जिनसे निम्न जाति के लोग ब्राह्मणों के साथ पानी भरते थे और कुछ तालाब ऐसे थे जिनमें विद्वान् ब्राह्मण और नीच मूर्ख साथ-साथ स्नान करते थे।[3] अस्पृश्यता के अभाव की यत्र-तत्र झलक प्राप्त होने के बावजूद भी सामाजिक भेदभाव की सत्ता थी। चारुदत्त चाण्डाल से कोई वस्तु दान-स्वरूप ग्रहण नहीं कर सकता था। शकार का चेट दास है, इस कारण उसको कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। अपने स्वामी का वसन्तसेना-वध रूप जघन्य अपराध न छिपाने पर उसे बन्दी बनना पड़ता है। जब वह जिस किसी प्रकार अपने प्राणों की बाजी लगाकर वसन्तसेना की हत्या के सम्बन्ध में सत्य का उद्घाटन चाण्डालों के सम्मुख पहुँचकर करता है, तब चाण्डालों को भी विश्वास नहीं होता कि दास भी सत्य-कथन कर सकता है।[4]

---

१. सीहु-सुरासवमत्तिआ एआवत्थ गदा हि अत्तिआ।
   जइ मरइ एत्थ अत्तिआ भोदि सिआल-सहस्स-जत्तिआ॥
   संस्कृत छाया—सीधुसुरासवमत्ता एतावदवस्था गता हि माता।
   यदि म्रियते अत्र माता भवति शृगालसहस्रयात्रा॥ ४/२९

२. अधवा कुबेरभवणपरिच्छेदो त्ति?
   संस्कृतछाया—अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः इति। चतुर्थ अंक, पृ० २६७

३. वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधम
   फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
   ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
   त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज॥ १/३२

४. (क) वितत्तो चेड़े किं ण प्पलवदि?
   संस्कृतछाया—वित्रस्तश्चेटः किं न प्रलपति? दशम अंक, पृ० ५५१
   (ख) चेट—हीमादिके! ईदिशे दाशभावे, ज सच्चं क वि ण पत्तिआअदि
   संस्कृत छाया—हन्त! ईदृशो दासभावः, यत् सत्यं कमपि न प्रत्याययति।
   दशम अंक, पृ० ५५१-५५२

जाति-प्रथा—

मृच्छकटिक काल में वर्ण-व्यवस्था सुदृढ़ नही थी किन्तु इस सम्बन्ध मे यह निश्चित है कि बाह्य रूप से प्रत्येक वर्ण एक जातिगत रूप को धारण कर चुका था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अन्य जातियों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। दान-दक्षिणा न लेने वाले चतुर्वेदी ब्राह्मण-पुत्र होते हुए भी शर्विलक ने चौर-कर्म करना प्रारम्भ कर दिया था। इससे स्पष्ट होता है कि जाति अथवा वर्ण के बंधन शिथिल पड़ गये थे। चारुदत्त तथा शर्विलक दोनों ब्राह्मणों ने वेश्याओं से विवाह किया था। इससे ज्ञात होता है कि जाति प्रथा की मर्यादा का अंकुश ढीला पड गया था। जाति के आधार पर राज्य के ऊँचे पदों से कोई व्यक्ति वंचित नही किया जाता था। नापित, वीरक और चर्मकार चन्दनक भी उत्तरदायी पदो—सेनापति—पर आसीन थे।

कलायें—

मृच्छकटिक-काल में कलायें समुन्नत अवस्था मे थी। यथा सगीत-कला, चित्रकला वास्तुकला आदि। सगीत अपने गायन और वादन दोनों रूपो में उत्कृष्ट कोटि का था। संगीत मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन माना जाता था। रेभिल नगर का एक प्रसिद्ध गायक था। चारुदत्त रेभिल के घर से गाना सुनकर अर्धरात्रि मे अपने घर लौटता है। चारुदत्त रेभिल के गाये हुए सुन्दर संगीत के सम्बन्ध मे विदूषक से कहता है कि रेभिल का वह गीत कितना अनुरागवर्द्धक, मधुर, सुसंगत, स्पष्ट, भावमय, कोमल और चित्ताकर्षक था। हमारे अधिक प्रशंसा करने से क्या लाभ ? यदि रेभिल कही से छिपकर गाता, तो अवश्य अनुमान किया जाता कि कोई रमणी गा रही है।[1] यद्यपि गाना समाप्त हो चुका है, फिर भी उसकी वह स्वर-परम्परा, कोमल-वाक्य, सुन्दर वीणा की ध्वनि, वर्णों के आरोहावरोह के समय उसकी उच्चता तथा अवसान के समय उसकी कोमलता, लीलापूर्वक आवाज का संयमन तथा पुन. मनोहर राग का दो-दो बार उच्चारण इस समय तक हमारे हृदय मे गूँज रहा है।[2]

वसन्तसेना सम्बन्धी शकार और विट की बातचीत मे विट की वसन्तसेना के प्रति उक्ति संगीत का परिचय देती है कि विट लोगों के नख से घर्षित वीणा के समान शीघ्र भागने के कारण हिलते हुए कुण्डलो के बार-बार स्पर्श से घर्षित कपोलो वाली तुम मेघ-गर्जन से भयभीत सारसी के समान भयातुर होकर क्यों

---

१. *चारुदत्त.—वयस्य ! सुष्ठु खल्वद्य गीतं भाव-रेभिलेन।*
रक्तञ्च प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तैः अन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये ॥ ३।४

२. तं तस्य स्वरसंक्रमं मृदुगिरः श्लिष्टञ्च तन्त्रीस्वनं
वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरगतं तारं विरामे मृदुम्।
हेलासंयमितं पुनश्च ललितं रागद्विरुच्चारितं
यत्सत्यं विरतेऽपि गीतसमये गच्छामि शृण्वन्निव ॥ ३।५

भागी जा रही हो ।[1]

संगीत-विषयक स्वर-नैपुण्य की चर्चा करते हुए विट वसन्तसेना के सम्बन्ध मे कहता है कि वसन्तसेना ने नाट्यशाला मे प्रवेश और कलाओं की शिक्षा के द्वारा दूसरो को ठगने मे कुशल हो जाने के कारण स्वर-परिवर्तन मे निपुणता प्राप्त कर ली है ।[2]

वसन्तसेना-विषयक सम्भाषण मे चेट चारुदत्त से अपनी वीणा और संगीत के विषय मे कहता है कि मैं सप्त-छिद्र वाली बासुरी से मधुर-ध्वनि निकालता हूँ, सात तारों मे बजने वाली वीणा को बजाता हूँ तथा गधे के तुल्य गाना गाता हूँ । मेरे गाने के सामने प्रसिद्ध गन्धर्व तुम्बुरु तथा देवर्षि नारद भी तुच्छ हैं ।[3]

वीणा की प्रशंसा मे चारुदत्त का कथन अवलोकनीय है कि यह वीणा उत्कण्ठित मनुष्य के लिये मनोनुकूल मित्र है, निर्दिष्ट स्थान पर गुप्त-प्रेमी के आने मे विलम्ब होने पर मन बहलाव का अच्छा साधन है, वियोग से उद्विग्न जन की धैर्य-स्थिति के लिये प्रेयसी के तुल्य है और अनुरागियो मे प्रेम बढाने के लिये यह सुखकर वस्तु है ।[4]

वसन्तसेना के चतुर्थ प्रकोष्ठ को देखकर विदूषक कहता है कि इस चतुर्थ प्रकोष्ठ मे भी युवतियो के हाथ से बजाये गये मृदङ्ग मेघ के समान गम्भीर शब्द कर रहे हैं । पुण्य क्षीण होने से आकाश से गिरते हुए नक्षत्रों के समान करताल (मजीरे) गिर रहे हैं । भ्रमर के गुंजन की तरह बाँसुरी मधुरता मे बजाई जा रही है । अन्य स्त्री की ईर्ष्या के कारण प्रणय-कुपित कामिनी के समान गोद मे रखी हुई वीणा नख के स्पर्श मे बजाई जा रही है । दूसरी, ये पुष्प-रस (मकरन्द) से मत्त भ्रमरियों के समान गाती हुई वेश्या-बालिकाएँ नचाई जा रही हैं, और शृंगारयुक्त अभिनय उन्हे सिखाये जा रहे है । खिड़कियो मे लटकते हुए पानी

---

१ प्रसरसि भयविक्लवा किमर्थं प्रचलितकुण्डलघृष्टगण्डपार्श्वा ।
विटजननखघट्टितेव वीणा जलधर-गर्जित-भीतसारसीव ।। १।२४

२ इय रगप्रवेशेन कलाना चोपशिक्षया
वञ्चनापण्डितत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता ।। १।४२

३ वंश वाए सत्तच्छिद्दं सुणद्द वीण वाए सत्ततन्ति णदन्तिं ।
गीअं गाए गद्दहस्साणुलूअ के मे गाणे तुम्बुलू णालदे वा ।।
संस्कृत छाया—वंशं वादयामि सप्तच्छिद्रं सुशब्दम्, वीणां वादयामि सप्ततन्त्रीं नदन्तीम् ।
गीतं गायामि गर्दभस्यानुरूपं को मे गाने तुम्बुरुर्नारदो वा ।। ५।११

४. उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या सकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः ।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः ।। ३।३

के घड़े वायु ग्रहण कर रहे हैं।[1]

शर्विलक चारुदत्त के भवन की दीवार में सेंध लगाने के पश्चात् वहाँ धन न पाकर अन्दर मृदंग, वीणा आदि वाद्य देखकर कहता है—अरे यह मृदंग है, यह दर्दुर है, यह पणव है, यह वीणा है, ये बाँसुरियाँ हैं और ये पुस्तकें हैं। अथवा भवन के विश्वास से प्रविष्ट हुआ हूँ, तो क्या वास्तव में यह निर्धन है? अथवा राजा या चोर के भय से द्रव्य पृथ्वी में गाड़ कर रखता है।[2]

गायन, वादन के साथ-साथ नृत्य की भी चर्चा प्राप्त होती है। विट वसन्तसेना से कहता है कि भय से सुकुमारता को त्याग देने वाली, नृत्य के प्रयोग से चरणों को जल्दी-जल्दी आगे बढ़ाती हुई, व्याकुल एवं चंचल कटाक्षों से दृष्टिपात करती हुई, अनुसरण करते हुए व्याध से चकित हुई हरिणी के समान तुम क्यों जा रही हो?[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मृच्छकटिक-काल में लोग संगीत के शौकीन थे। वीणा लोकप्रिय वाद्य था। इसके अतिरिक्त बाँसुरी, मृदङ्ग, दर्दुर और पणव आदि का भी उल्लेख मिलता है। वाद्य के साथ नृत्य की भी चर्चा होती है। वसन्तसेना गणिका थी और संगीत तथा नृत्य उसका रुचिकर विषय था। तत्कालीन समाज में संगीत और वाद्य मनोरंजन के साधन थे।

---

१. ही ही भोः। इधो वि चउट्ठे पओट्ठे जुवदिकर-ताडिदा जलधरा विअ गम्भीरं णदन्ति मुरङ्गा। हीणपुण्णाओ विअ गअणादो तारआओ णिवडन्ति कंसतालआ। महुअर-विरुअ-महुरं वज्जदि वंसो। इअ अवरा ईसापणअ-कुविद-कामिणी विअ अङ्कारोविदा-कररुह परामरिसेण सारिज्जदि वीणा। इमाओ अवराओ कुसुमरस-मत्ताओ विअ महुअरिओ अदिमहुर पगीदाओ गणिआदारिआओ णच्चीअन्ति, णट्टअं पठीअन्ति ससिङ्गारओ। ओवग्गिदा गवक्खेसु वाद गेण्हन्ति सलिलगग्गरीओ।

संस्कृत छाया—ही ही भो. इतोऽपि चतुर्थे प्रकोष्ठे युवतिकर-ताडिता जलधरा इव गम्भीरं नदन्ति मृदङ्गा। क्षीणपुण्या इव गगनात्तारका निपतन्ति कांस्यताला.। मधुकर-विरुत-मधुरं वाद्यते वंश। इयमपरा ईर्ष्या-प्रणयकुपितकामिनीव अङ्कारोपिता कररुहपरामर्शेन सार्यते वीणा। इमा अपराश्च कुसुमरसमत्ता इव मधुकर्यः अतिमधुरं प्रगीता गणिकादारिकाः नर्त्यन्ते, नाट्यं पाठ्यन्ते सशृङ्गारम्। अपवलिगता गवाक्षेषु वातं गृह्णन्ति सलिलगर्गर्यः। चतुर्थ अंक, पृ० २३५

२. (समन्तादवलोक्य) अये! कथं, मृदंगः, अयं दर्दुरः, अयं पणवः इयमपि वीणा एते वंशाः, अमी पुस्तकाः। कथं नाट्याचार्यस्य गृहमिदम्। अथवा भवन-प्रत्ययात्प्रविष्टोऽस्मि। तत्किं परमार्थदरिद्रोऽयम् उत राजभयाच्चौरभयाद्वा भूमिष्ठं द्रव्यं धारयति। तृतीय अंक, पृ० १६७

३. किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या नृत्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।
उद्विग्न-चञ्चल-कटाक्ष-विसृष्ट-दृष्टि-र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि॥१/१७

संगीत-कला के अतिरिक्त उस समय चित्र-कला का भी बहुत प्रचार था। चतुर्थ अङ्क मे वसन्तसेना स्वनिर्मित चारुदत्त का एक चित्र मदनिका को दिखाती हुई कहती है कि चेटि मदनिके[1] क्या यह चित्रस्थ आकृति आर्य चारुदत्त के अनुरूप है ? मदनिका के अनुरूप बताने पर वसन्तसेना उससे पुनः प्रश्न करती है कि तुम कैसे जानती हो ? इस पर मदनिका उत्तर देती है कि आर्या की स्नेहसिक्त दृष्टि इसमे सलग्न है।[1]

पत्रच्छेद विधि से भी चित्रकार चित्र बनाते होगे। इसका आभास चारुदत्त के मेघाच्छादित-आकाश-विषयक वर्णन से प्राप्त होता है—परस्पर मिले हुए चक्रवाक के जोड़ो के समान, उड़ते हुए हंसों के समान, समुद्र-मंथन के वेग से इधर-उधर फेंके हुए मत्स्य समुदाय और मगरों के सदृश, उन्नमित भवनों के तुल्य, विभिन्न विस्तृत आकार-प्रकारो को प्राप्त करने वाले वायु द्वारा छिन्न-भिन्न, उमड़ते हुए बादलों के द्वारा आकाश पत्रच्छेद-विधि द्वारा चित्रित सा शोभित हो रहा है।[2] पत्रच्छेद के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय चित्रकार पत्र को छेद-छेद कर चित्र बनाया करते थे। इसके अतिरिक्त चित्रभित्ति का भी उस समय प्रचार था। यह बात चारुदत्त के वसन्तसेना से किये गये प्रेम-सम्भाषण-काल मे प्रकट होती है—'हे प्रिये वसन्तसेने ! जिसके स्तम्भो के आधार के लिए बनाये गये वेदी-समूह नीचे तक हिल रहे हैं, ऐसा वितान जर्जरित होने के कारण स्तम्भो पर किसी प्रकार ठहरा हुआ है और यह चित्रित दीवार सुधाद्रव के लेपन के फूट जाने और अधिक जल मे भीगने के कारण (अर्थात् चूने के लेप के गलने के कारण जलवृष्टि के अन्त प्रवेश मे) सिक्त (सीली) हो गई है।'[3]

---

१. (क) हञ्जे मदणिए ! अवि सुसदिसी इअं चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्स ?
संस्कृत छाया—हञ्जे मदनिके ! अपि सुसदृशी इयं चित्राकृतिः आर्यचारुदत्तस्य ?
चतुर्थ अंक, पृ० १६०

(ख) सुसदिसी (सुसदृशी)
कधं तुमं जाणासि (कथं त्वं जानासि ?)
जेण अज्जआए सुसिणिद्धा दिट्ठी अणुलग्गा।
संस्कृत छाया—येन आर्यायाः सुस्निग्धा दृष्टिरनुलग्ना। चतुर्थ अंक, पृ० १६१

२. संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः।
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना॥ ५/५

३. स्तम्भेषु प्रचलित-वेदि-सञ्चयान्तं शीर्णत्वात् कथमपि धार्यते वितानम्।
एषा च स्फुटित-सुधा-द्रवानुलेपात् संक्लिन्ना सलिल-भरेण चित्रभित्तिः॥ ५/५०

मृच्छकटिक में चित्रकला के अतिरिक्त भवन-निर्माण एवं वस्तुकला की भी चर्चा मिलती है। चारुदत्त ने मन्दिरों, झीलों, कुओं, विश्रान्तिभवनों, उद्यानों आदि का निर्माण करवाया था। चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रासाद तत्कालीन भवन-निर्माण के सुन्दर उदाहरण हैं। वसन्तसेना का प्रासाद बहुत बड़ा है जिसमें आठ कक्ष थे। प्रथम प्रकोष्ठ में विविध रत्नों से जड़ी हुई स्वर्णमयी सीढ़ियों से सुशोभित अट्टालिका की श्रेणियाँ स्फटिक-निर्मित झरोखे रूपी मुखचन्द्र से मानो उज्जयिनी को देख रही थीं। दूसरे प्रकोष्ठ में पशुशाला थी जिसमें विविध पशु निवास करते थे। तीसरे प्रकोष्ठ में कुलीन पुत्रों के बैठने के लिये आसन सुसज्जित थे, जहाँ जुआ खेलने की चौकी मणि-निर्मित मैना के आकार की गोटों से युक्त थी और वेश्याएँ एवं विट कार्य में संलग्न दिखाई देते थे। चतुर्थ प्रकोष्ठ संगीतशाला के रूप में था, जहाँ विविध वाद्यों की ध्वनि गूंजती रहती थी। पाँचवा प्रकोष्ठ भोजन-भवन के रूप में था जहाँ विविध व्यञ्जनों की सुगंधि व्याप्त रहती थी। छठा प्रकोष्ठ इन्द्रधनुष की भाँति रंग-बिरंगी मणियों एवं हीरे-जवाहरात से जगमगा रहा था, जहाँ शिल्पकारों का समूह विविध आभूषणों के संघटन में तत्पर था। मदिरालय भी यही था।[1] सातवाँ प्रकोष्ठ पक्षिशाला के रूप में था। इसे देखकर मैत्रेय विदूषक कह उठा था कि सचमुच वेश्या का गृह तो मुझे नन्दनवन के समान लग रहा है।[2] आठवाँ प्रकोष्ठ वसन्तसेना के भाई और माता के रहने का स्थान था।[3] सुगंधित रंगबिरंगे पुष्पों से युक्त वसन्तसेना के कक्ष से संलग्न उसकी वृक्ष-वाटिका थी। उद्यानों में सरोवर भी निर्मित होते थे और युवतियाँ झूला भी झूलती थीं।[4] वसन्तसेना के समृद्ध प्रासाद को देखकर विदूषक सहसा कह उठा कि सचमुच मैंने त्रैलोक्य को एकस्थ देख लिया है। 'यह वेश्याघर है या कुबेर का भवन है।'[5] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वसन्तसेना के भवन के आठों

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अंक, पृ० २३१-२४०

२. ज सच्चं क्खु णन्दणवणं विअ मे गणिआघरं पडिभादि।
संस्कृतच्छाया—यत्सत्यं खलु नन्दनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते।
चतुर्थ अंक, पृ० २४१-२४२

३. द्रष्टव्य पृ० २४३-२४७

४. णिरन्तर पादव-तल-णिम्मिदा जुवदिजण-जहणप्पमाणा पट्टदोला।......इदो अ उदअन्त-सूरमण्डलेहिं कमलरत्तोप्पलेहिं सज्झाअदि विअ दीहिआ।
संस्कृतच्छाया—निरन्तर-पादप-तल-निर्मिता युवति-जन-जघन-प्रमाणा पट्टदोला।......इतश्च उदयमान-सूर्यमण्डलैः कमलरक्तोत्पलैः सन्ध्यायते इव दीर्घिका।
चतुर्थ अंक, पृ० २४७-२४८

५. ज सच्चं जाणामि, एकत्थं विअ तिविट्टअं दिट्ठं। अधवा कुवेरभवणपरिच्छेदो त्ति?
संस्कृतच्छाया—यत् सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम्। अथवा कुबेर-भवनपरिच्छेद इति। चतुर्थ अंक, पृ० २४६-२४७

प्रकोष्ठ तत्सम्बन्धी कला के प्रतीक हैं।

संवाहन कला और मूर्ति-कला की भी परिचर्चा प्राप्त होती है। संवाहक वसन्तसेना से बताता हुआ कहता है कि संवाहक की वृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करता हूँ। इस पर वसन्तसेना कहती है कि आर्य ने वास्तव में बड़ी सुकुमार कला सीखी है। संवाहक पुनः प्रत्युत्तर देता है कि आर्ये ! कला कला के रूप में सीखी थी, किन्तु इस समय तो वह आजीविका का साधन बन गई है।[1] इस प्रकार संवाहन भी मृच्छकटिक-काल में एक कला थी।

द्यूतकर और माथुर के सम्भाषण में मूर्तिकला की झलक मिलती है। जब द्यूतकर माथुर से देवमन्दिर में प्रवेश के समय पूछता है कि क्या यह काष्ठ की मूर्ति है ? माथुर कहता है, अरे नहीं नहीं, पत्थर की मूर्ति है।[2]

मृच्छकटिक-काल में लेखन-कला का भी पर्याप्त विकास हो चुका था। सभिक माथुर द्वारा द्यूतक्रीडा के प्रसंग में गणना-पत्र प्रस्तुत किया गया था।[3] अभियोग सम्बन्धी विवरण भी लेखबद्ध किये जाते थे।[4] न्यायालय में कायस्थ एक प्रकार से लिपिक का ही कार्य करता था। चाण्डाल अपने कार्य की बारी याद रखने के लिए लेखबद्ध पंक्तियों की पहचान करते थे। चारुदत्त के गृह में पुस्तकों

---

१. संवाहअस्स वित्तिं उवजीआमि ।
सुउमारा क्खु कला सिक्खिदा अज्जेण ।
अज्जए, कलेत्ति सिक्खिदा । आजीविआ दाणिं संवुत्ता ॥
संस्कृतछाया—संवाहकस्य वृत्तिमुपजीवामि
सुकुमारा खलु कला शिक्षिता आर्येण ।
आर्ये ! कलेति शिक्षिता, आजीविका इदानीं संवृत्ता । द्वितीय अंक, पृ० १२७

२. कथं कट्ठमयी पडिमा ।
अले णहु णहु ! शैलपडिमा ।
संस्कृतछाया—कथं काष्ठमयी प्रतिमा ?
अरे, न खलु न खलु, शैल प्रतिमा । द्वितीय अंक, पृ० १०६

३. लेक्खअ-वावड-हिअअं सहिअं दट्ठूण झत्ति पब्भट्ठे ।
एण्हिं मग्गणिवडिदो कं णु क्खु शलणं पवज्जे ॥
संस्कृत छाया—लेखक-व्यापृत-हृदयं सभिकं दृष्ट्वा झटिति प्रभ्रष्टः ।
इदानीं मार्गनिपतितः कं नु खलु शरणं प्रपद्ये ॥ २/२

४. सुदं अज्जेहिं ? लिहीअदु एदे अक्खला । चालुदत्तेण शह मम विवादे ।
संस्कृतछाया—श्रुतमार्यैः ? लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि । चारुदत्तेन सह मम विवादः । नवम अंक, पृ० ४७१

का भण्डार था।[1]

मृच्छकटिक में कामकला की भी परिचर्चा है। "समस्त कलाओं से परिचित तुम्हें यहाँ कुछ उपदेश देना नहीं है, फिर भी स्नेह बोलने को प्रेरित कर रहा है। यदि अत्यन्त कोप करोगी, तो रति का आविर्भाव हो ही नहीं सकता अथवा कोप के बिना काम कहाँ जाग्रत होता है? अतएव कुछ स्वयं कुपित होकर प्रिय को कुपित करो। फिर नायक के मनाने पर स्वयं प्रसन्न हो जाओ और प्रियतम को भी प्रसन्न कर लो।"[2]

मृच्छकटिककार ने विट के मुख से वेश्या-व्यवहार का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है कि ,जो दंभ-रहित *माया, कपट और असत्य का जन्मस्थान है, धूर्तता ही* जिसकी आत्मा है, रतिक्रीडा ने जिसको आश्रय बनाया है, जहाँ रमण के सुख का सचय है, ऐसे वेश्या रूपी बाजार को उदारतारूपी विक्रेय-वस्तु के द्वारा ही सुख-पूर्वक मूल्य सिद्धि हो।"[3]

अन्यत्र विट शकार से कहता है कि स्त्रियों के द्वारा तिरस्कृत हुए अधम कायर पुरुषों की कामवासना अधिक बढ़ जाती है किन्तु सज्जनों की कामवासना तो स्त्रियों से अपमानित होने पर कम हो जाती है अथवा रहती ही नहीं है।[4]

इस प्रकार मृच्छकटिक काल में संगीत कला, चित्रकला, स्थापत्यकला, संवाहनकला आदि कलाएँ प्रचलित थीं जिनके द्वारा सामाजिक जीवन परिष्कृत हो चला था। इनके अतिरिक्त चौर्य-कर्म और द्यूत-कर्म भी एक कला माना जाता *था, जिसका विस्तृत विवेचन मृच्छकटिक के क्रमशः द्वितीय अंक तथा तृतीय अंक* में मिलता है।

भोजन-परिधान-प्रसाधन—भारतीय समाज ने प्रादेशिक जलवायु के अनुसार अपने खान-पान और वेशभूषा को अपनाया है। मृच्छकटिककाल में खान-पान और

---

१. (क) *अमी पुस्तकाः —तृतीय अंक*, पृ० १६७

(ख) शकारः—लिहीअदु एदे अक्खला। चालुदत्तेण शह मम विवादे

लिक्खन्तामेतान्यक्षराणि। चारुदत्तेन सह मम विवादः। नवम अंक, पृ० ४७१

(ग) प्रथम—अले लेक्खअं कुर्मः [अरे लेखकं कुर्मः] इति बहुविधं लेखकं कृत्वा।

दशम अंक, पृ० ५५८

२. सकल-कलाभिज्ञाया न किञ्चिदिह तवोपदेष्टव्यमस्ति। तथापि स्नेहः प्रलाप-यति।

यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन विनाऽथवा कुतः कामः।

कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम्॥ ५/३४

३. साटोपकूटकपटानृतजन्मभूमेः शाठ्यात्मकस्य रतिकेलिकृतालयस्य।

वेश्यापणस्य सुरतोत्सवसंग्रहस्य दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धिरस्तु॥ ५/३६

४. स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्द्धते मदनः।

सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुर्नैव वा भवति॥ ८/६

वेशभूषा सामान्यत: सात्त्विक थी। सूत्रधार के घर में अभिरूपपति-व्रत के अवसर पर जो भोजन बना था तथा वसन्तसेना के प्रासाद में जो पक्वान्न बन रहे थे, उनका अनुशीलन करने से भोज्यान्नों के विषय में विशिष्ट जानकारी प्राप्त हो जाती है। चावल का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाता था यथा—तण्डुल भक्त (भात), गुड़-ओदन (गुड़ मिश्रित), कलम-ओदन (दही-मिश्रित), पायस (दूध-मिश्रित—खीर) तथा शालियकूर (शालि-धान का उबाला चावल)। सूत्रधार द्वारा नटी से पूछे जाने पर कि क्या कुछ खाने को है, नटी कहती है गुड़-भात, घी, दही, चावल—आर्य के भोजन-योग्य सभी सरस पदार्थ है, इस प्रकार आपके देवता (उपर्युक्त पदार्थों की प्राप्ति के लिये) आशीर्वाद दें।[1] हाथियों को भी तैल-मिश्रित चावल का पिण्ड खिलाया जाता था।[2] मिष्टान्न में मोदक और अपूपक (पूआ) का प्रयोग होता था। मृच्छकटिक के आरम्भ में आहार-विषयक सूत्रधार के विचार निम्न पंक्तियों से ज्ञात होते हैं—मेरे घर में तो कुछ दूसरा ही आयोजन हो रहा है। धोये गये चावलों के जल से गली व्याप्त है। लोहे की कड़ाही की रगड़ से चितकबरी हुई भूमि काला तिलक लगाये हुई युवती के समान अत्यधिक सुशोभित हो रही है। घी आदि की स्निग्ध गन्ध से उद्दीप्त हुई भूख मुझे अधिक

---

१. (क) अत्थि कि पि अम्हाणं गेहे असिदव्वं ण वेत्ति।
अज्ज, सव्वं अत्थि
किं किं अत्थि ?
त जधा—गुडोदणं घृअं दहि तण्डुलाइं अज्जेण अत्तव्व रसाअणं सव्वं अत्थि त्ति।
एव्वं दे देवा आसासेदु।
संस्कृतछाया—आर्ये ! अस्ति किमप्यस्माकं गेहेऽशितव्य न वेति।
आर्य सर्वमस्ति।
किं किं अस्ति।
तद्यथा—गुडौदनं, घृत, दधि, तण्डुला, आर्येण अत्तव्य रसायन सर्वमस्तीति, एवं ते देवा आशंसन्ताम्। प्रथम अंक, पृ० १३

(ख) गहिणा कलमोदणेण पत्तोह्लिदा ण भक्खन्ति वाअसा बलिं सुधामवण्णदाए।
[गृहिणा कलमोदनेन प्रलोभिता न भक्षयन्ति वायसा बलिं सुधासवर्णतया।]
चतुर्थ अंक, पृ० २३२

(ग) दहिभत्त-पुरिदोदरो बम्हणो विअ सुत्त पढदि पञ्जरसुओ।
[दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्त पठति पञ्जरशुक।]
चतुर्थ अंक, पृ० २४१

२. इदो अ कूरक्खुअतेल्लमिस्स पिण्डं हत्थी पडिच्छावीअदि मेत्थपुरिसेहि।
संस्कृत छाया—इतश्च कूरक्षत-तैलमिश्रं पिण्डं हस्ती प्रतिग्राह्यते मात्रपुरुषैः।
चतुर्थ अंक, पृ० २३३

पीडित कर रही है। तो क्या पूर्वजों द्वारा संचित गुप्तधन मिल गया है। अथवा मैं ही भूख के कारण सारे संसार को भातमय देख रहा हूँ। हमारे घर में तो प्रातः-भोजन (कलेवा) ही नहीं है। भूख के कारण मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। यहाँ तो सब नवीन आयोजन हो रहा है। एक स्त्री सुगन्धित वस्तु (मसाला) पीस रही है, तो दूसरी माला गूँथ रही है।[1]

मोदकों से तृप्त विदूषक की उक्ति भी इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है—जो मैं चारुदत्त की सम्पन्नता के कारण रात-दिन यत्नपूर्वक तैयार किये गये सुगन्धित लड्डुओं के खाने से परितृप्त था, अन्तःपुर के द्वार पर बैठा हुआ खाद्य-पदार्थों से पूर्ण सैकड़ों पात्रों से घिरा हुआ चित्रकार के समान अंगुलियों से छू-छू करके छोड़ देता था, नगर-प्रांगण के सांड की तरह जुगाली करता हुआ बैठा रहता था।[2]

विदूषक वसन्तसेना के पाँचवें कक्ष में पाकशाला को देखकर कहता है—अरे आश्चर्य, इस पंचम प्रकोष्ठ में भी यह निर्धन मनुष्यों को लुब्ध करने वाली हींग

---

१. हीमाणहे ! किं णु क्खु अम्हाण गेहे अवरविअ सविहाणअं वट्टदि। आआमि-तण्डुलोदअप्पवाहा रच्छा लोहकडाहपरिवत्तणकमणसारा किदविसेसआ विअ जुअदीअहि अदरं सोहदि भूमी। णिणिद्धगन्धेण उद्दीविअन्तो विअ अहिअं बाधेदि म बुभुक्खा। ता किं पुव्वज्जिदं णिहाणं उप्पण्णं भवे। आदु अहं ज्जेव बुभुक्खादो अण्णमअं जीअलोअं पेक्खामि। णत्थि किल पादरासो अम्हाणं गेहे। पाणाधिअं बाधेदि मं बुभुक्खा। इध सव्वं णवं सविहाणअं वट्टदि। एक्का वण्णअं पीसेदि अवरा सुमणाइं गुम्फेदि।

संस्कृत छाया—आश्चर्यम्। किं नु खल्वस्माकं गृहेऽन्यदिव सविधानकं वर्तते। आयामितण्डुलोदकप्रवाहा रथ्या लोहकटाहपरिवर्तनकृष्णसारा कृतविशेषकेव युवत्यधिकतरं शोभते भूमिः। स्निग्धगन्धेनोद्दीप्यमानेवाधिकं बाधते मां बुभुक्षा। तत्किं पूर्वार्जितं निधानमुत्पन्नं भवेत्। अथवाहमेव बुभुक्षातोऽन्नमयं जीवलोकं पश्यामि। नास्ति किल प्रातराशोऽस्माकं गृहे। प्राणाधिकं बाधते मां बुभुक्षा। इह सर्वं नवं सविधानकं वर्तते। एका वर्णकं पिनष्टि, अपरा सुमनसो ग्रथ्नाति। प्रथम अंक, पृ० ११–१२

२. जो णाम अहं तत्तभवदो चारुदत्तस्स रिद्धीए अहोरत्तं पअत्तणसिद्धेहिं उग्गारसुरहिगन्धेहिं मोदकेहिं ज्जेव असिदो अब्भन्तरचदुस्सालदुआरउवविट्ठो मल्लकसदपरिवुदो चित्तअरो विअ अंगुलीहिं छिविअ छिविअ अवणेमि णअरचत्तरवुसहो विअ रोमन्थाअमाणो चिट्ठामि।

संस्कृत छाया—यो नामाहं तत्रभवतः चारुदत्तस्य ऋद्धया अहोरात्रं प्रयत्नसिद्धैः उद्गारसुरभिगन्धैः मोदकैरेव अशितः अभ्यन्तरचतुःशालद्वारे उपविष्टः मल्लकशतपरिवृतश्चित्रकर इव अंगुलिभिः स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा अपनयामि, नगरचत्वरवृषभ इव रोमन्थायमानस्तिष्ठामि। प्रथम अंक, पृ० २१–२२

और तेल की सुगन्ध मुझे आकृष्टकर रही है। नित्य सन्तप्त की जाती हुई पाकशाला नाना प्रकार के सुगंधित धुंए को प्रकट करने वाले द्वार रूपी मुखों से निःश्वास ले रही है। बनाये जाते हुए विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों एवं व्यञ्जनों की गन्ध मुझे अत्यधिक उत्सुक बना रही है। दूसरा यह कसाई का लड़का मारे हुए पशु के पेट की पेशी को पुराने वस्त्र की भाँति धो रहा है। रसोइया भाँति-भाँति के आहार बना रहा है। लड्डू बाँधे जा रहे है, पूए पकाये जा रहे हैं।[1]

मांसाहार सम्भवतः उन दिनों विशिष्ट आहार रहा होगा। चेट वसन्तसेना से कहता है—राजा के कृपापात्र शकार के साथ रमण करो, तब मछली और मांस खाओगी। मछली और मांस से परितृप्त शकार के कुत्ते मृत-जीव का मांस-सेवन नहीं करते।[2] तले हुए मांस का भी उस समय प्रचार था। शकार के कथन से यह स्पष्ट होता है कि गोबर में निष्पन्न डंठल वाला काशीफल, सूखा हुआ शाक, तला हुआ मांस, हेमन्त ऋतु की रात्रि में बनाया हुआ भात—ये अधिक काल बीत जाने पर भी विकृत नहीं होते।[3] अन्यत्र शकार ने अपने मध्याह्न भोजन की चर्चा करते हुए कहा है मैंने अपने घर तीखे खट्टे मांस, शाक, मछली, दाल, शालि के

---

१ ही ही भो ! इदो वि पञ्चमे पओट्ठे अअं दलिद्द-जण-लोहुप्पादणअरो आहरदि उवचिदो हिंगुतेल्लगन्धो। विविहसुरहि-धूमुग्गरेहिं णिच्चं सन्ताविज्जमाणं णीससदि विअ महाणसं दुआरमुहेहिं। अधिअं उस्सुआवेदि मं साहिज्जमाण-बहुविह-भक्खभोअण-गन्धो। अअ अवरो पडच्चर विअ पोट्टि धोअदि रुविदारओ। बहुविहा हारविआरं उवसाहेदि सूवआरो। बज्झन्ति मोदआ, पच्चन्ति अ पूवआ। संस्कृत छाया—ही ही भोः ! इतोऽपि पञ्चमे प्रकोष्ठे अयं दरिद्र-जन-लोभोत्पादनकरम् आहरति उपचितो हिंगुतैलगन्धः। विविध-सुरभि-धूमोद्गारैः नित्य सन्ताप्यमानं निःश्वसितीव महानसं द्वारमुखैः। अधिकमुत्सुकायते मा साध्यमान-बहुविध-भक्ष्य-भोजन-गन्धः। अयमपर पटच्चरमिव पेशिं धावति रुविदारकः। बहुविधाहार-विकारमुपसाधयति सूपकारः। बध्यन्ते मोदकाः पच्यन्ते च पूपकाः। चतुर्थ अंक, पृ० २३६–२३७

२. णामेहि अ लाअवल्लहं तो क्खाहिशि मच्छमंशकं।
एदेहिं मच्छमंशकेहिं शुणआ मलअं ण शेवन्ति ॥
संस्कृतछाया—रमय च राजवल्लभं तत खादिष्यसि मत्स्यमांसकम्।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वानो मृतकं न सेवन्ते ॥ १/२६

३ कक्कालुका गोच्छड-नित्तवेण्टा शाके अ शुक्खेतलिदे हु मासे।
भत्ते अ हेमन्तिअ-लत्तिशिद्धे लीणे अ वेले ण हु होदि पूदी ॥
संस्कृतछाया—
कर्कारुको गोमयनिष्पन्नवृन्तः शाकश्च शुष्कं तलितं खलु मांसम्।
भक्तञ्च हैमन्तिकरात्रिसिद्धं लीनायाञ्च वेलायां न खलु भवति पूतिः॥ १/५१

भात तथा गुड मिश्रित चावल के साथ भोजन किया है।[1] शकार विट को अपने घर के भोजन के सम्बन्ध में बताता हुआ कहता है कि यदि तुम सैकड़ों सूतों से बने हुए लम्बी किनारी वाले उत्तरीय को पुरस्कार रूप में लेना, मांस खाना तथा मुझे प्रसन्न करना चाहते हो, तो मेरा प्रिय करो।[2] मांस और घृत को विशिष्ट पदार्थ समझते हुए शकार ने विट से कहा है कि हर समय मांस तथा घृत से मैंने तुम्हें पुष्ट किया है। आज काम आ पड़ने पर तुम मेरे शत्रु कैसे हो गये ?[3]

शकार को स्वर-माधुर्य के लिये विशेष मसालों के मिश्रण (योग) का अच्छा ज्ञान था। अपने स्वर-माधुर्य के सम्बन्ध में उसने विट से कहा है—हींग मिश्रण से सफेद तथा जीरे सहित नागर मोथा, वचा की गाँठ और गुड सहित सोंठ इन सबों के मेल से बने हुए सुगन्धित योग (मिश्रण) का मैंने सेवन किया है, तो मैं मधुर स्वर वाला क्यों न होऊँ ?[4] मैंने हींग से युक्त काली मिर्च के चूर्ण से बघारा हुआ, तथा तेल और घी से मिश्रित कोयल का मांस खाया है, तो फिर मैं मधुर स्वर वाला क्यों न होऊँ ?[5]

---

१. मंशेण तिक्खामिलकेण भत्ते शाकेण शूपेण शमच्छकेण।
भुत्ते मए अत्तणअश्श गेहे शालिश्श कूलेण गुलोदणेण॥
संस्कृत छाया—मांसेन तिक्ताम्लेन भक्तं शाकेन सूपेन समत्स्यकेन।
भुक्तं मया आत्मनो गेहे शालेः कूलेन गुडौदनेन॥ १०/२९

२. जदिच्छसे लम्बदशाविशालं पावालअं शुत्तशदेहि जुत्तम्।
मंशं च खादुं तह तुट्ठि कादुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू त्ति॥
संस्कृतछाया—यदीच्छसि लम्बदशाविशालं प्रावारकं सूत्रशतैर्हि युक्तम्।
मांसं च खादितुं तथा तुष्टिं कर्तुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू इति॥ ८।२२

३. शव्वकालं मए पुट्ठे मंशेण अ घिएण अ।
अज्जे कज्जे शमुप्पण्णे जादे मे वैलिए कधं॥
संस्कृतछाया—सर्वकालं मया पुष्टो मांसेन च घृतेन च।
अद्य कार्ये समुत्पन्ने जातो मे वैरिकः कथम्॥ ८/२८

४. हिङ्गुज्जले जीलक-भद्दमुत्थे वचाह गण्ठी शगुडा अ शुण्ठी।
एशे मए शेविद गन्धजुत्ती कधं ण हग्गे मधुल श्शलेत्ति॥
संस्कृतछाया—हिङ्गूज्ज्वला जीरक-भद्रमुस्ता वचाया ग्रन्थिः सगुडा च शुण्ठी।
एषा मया सेविता गन्धयुक्तिः कथं नाहं मधुरस्वर इति॥ ८/१३

५. हिङ्गुज्जले दिण्ण-मलीच-चुण्णे वग्घलिदे तेल्ल-घिएणमिश्शे।
भुत्ते मए पलहुदीअ-मंशे कधं ण हग्गे मधुलश्शले त्ति॥
संस्कृतछाया—हिङ्गूज्ज्वलं दत्तमरीचचूर्णं व्याघारितं तैलघृतेन मिश्रम्।
भुक्तं मया परभृतीयमांसं कथं नाहं मधुरस्वर इति॥ ८/१४

मद्यपान की भी प्रथा थी। सीधु, सुरा तथा आसव तीन प्रकार के मादक पेय का उल्लेख मिलता है। चेटी के यह कहने पर कि वसन्तसेना की माता चौथिया ज्वर से पीड़ित है, विदूषक कहता है कि यह मदिरापान के कारण मोटी है। यदि यह यहाँ मर जाती है, तो हजारों शृगालों की तृप्ति के लिए पर्याप्त होगी।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुओं को तलने के लिए घृत अथवा तैल का प्रयोग किया जाता था। हींग, जीरा, भद्रमुस्ता, वचा, सोंठ तथा मिर्च के चूर्ण जैसे मसालों का प्रयोग किया जाता था। मछली-मांस सामान्य भोजन का महत्त्वपूर्ण अंश था। मांस को सुस्वादु बनाने के लिए मसालों का उपयोग होता था। सीधु, सुरा तथा आसव मादक पेय का प्रचार था।

वेशभूषा—यद्यपि वेशभूषा के सम्बन्ध में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है, तथापि यथास्थान कुछ वस्त्रों की जानकारी प्राप्त होती है। पुरुष एवं स्त्रियाँ दोनों उत्तरीय (प्रावारक) का प्रयोग करते थे। विवाहित नारियाँ अवगुण्ठन के लिए एक अतिरिक्त वस्त्र का प्रयोग करती थीं। कर्णपूरक तथा शकार के वस्त्र चमकीले-भड़कीले प्रतीत होते हैं, किन्तु जुआरी दर्दुरक का उत्तरीय जीर्ण-शीर्ण था। मैत्रेय विदूषक के स्नानकाल में प्रयोग में आने वाली स्नान-शाटी भी जीर्ण-शीर्ण थी, जिसमें वसन्तसेना के आभूषण लपेटे गये थे। चारुदत्त का प्रावारक (उत्तरीय) चमेली के पुष्पों से सुवासित था। शकार और विट द्वारा जिस समय वसन्तसेना का पीछा किया जा रहा था, उस समय वह लाल रंग का रेशमी वस्त्र पहने हुई थी।[2] वसन्तसेना की माता का दुपट्टा कढ़े हुए पुष्पों से अलंकृत था और उसके भाई का उत्तरीय रेशमी (पट्ट-प्रावारक) था। उत्तरीय सम्भवतः सम्मान का वस्त्र समझा जाता था। किसी पर प्रसन्न होकर उपहार रूप में प्रावारक दिये जाने का यही रहस्य है। चारुदत्त ने कर्णपूरक को उत्तरीय दिया था।[3] शकार ने भी वसन्तसेना की हत्या करने के लिए विट को सैकड़ों सूत्रों से निर्मित विशाल

१. सीधुसुरासवमत्तिआ एआवत्थं गदा हि अत्तिआ।
जइ मरइ एत्थ अत्तिआ भोदि सिआल-सहस्स-पज्जत्तिआ॥
संस्कृतछाया—सीधुसुरासवमत्ता एतावदवस्था गता हि माता।
यदि म्रियतेऽत्र माता भवति शृगालसहस्रपर्याप्तिका। ४/३०

२ किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती टङ्कैर्मनःशिलगुहेव विदार्यमाणा॥ १/२०

३. तदो अज्जए! एक्केण सुण्णाइं आहरणट्ठाणाइं परामसिअ, उद्धं पेक्खिअ, दीहं णीससिअ, अअं पावारओ मम उवरिं खित्तो।
संस्कृतछाया—तत आर्ये! एकेन शून्यानि आभरणस्थानानि परामृश्य, ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य, दीर्घं निःश्वस्य, अयं प्रावारकः ममोपरि क्षिप्तः।
—द्वितीय अङ्क, पृ० १४२

उत्तरीय देने का प्रलोभन दिया था।[1]

भिक्षु चीवर पहनते थे। गाड़ियों को आच्छादित करने के लिए किसी वस्त्र का उपयोग किया जाता था। वर्धमानक यही वस्त्र भूल गया था, इसी को लाने में हुए विलम्ब के कारण गाड़ियों की अदला-बदली हुई और वसन्तसेना शकार की गाड़ी में बैठ जाने के कारण शकार के पास पहुँच गई। महिलाएँ जूते पहनती थी। विदूषक के अनुसार वसन्तसेना की माता तैलसिक्त जूते पहने हुई थी।[2] इस प्रकार वेशभूषा की दृष्टि से तत्कालीन समाज पर्याप्त विकसित हो चुका था।

प्रसाधन के लिए धारण किये जाने वाले कई प्रकार के आभूषणों की चर्चा मृच्छकटिक में आई है। वसन्तसेना जैसी समृद्ध नारियाँ कुण्डल, नूपुर तथा मणि-जटित करधनी का उपयोग करती थी। पुरुष अंगूठी, कटक या कंकण धारण करते थे। वसन्तसेना के प्रासाद का छठा प्रकोष्ठ शृंगारसामग्री के साथ आभूषणों से अलंकृत था। विदूषक ने कहा है कि छठे प्रकोष्ठ में शिल्पीगण वैदूर्य, मोती, मूंगा, पुष्पराग, इन्द्रनील, कर्केतरक, पद्मराग, मरकत आदि रत्नविशेषों का परस्पर विचार कर रहे हैं। सोने के साथ रत्न जड़े जा रहे हैं। स्वर्णाभूषण गढ़े जा रहे हैं। मुक्ताभूषण लाल धागे से गूंथे जा रहे है, वैदूर्य धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे घिसे जा रहे हैं। शंख काटे जा रहे हैं। मूंगे शाण से घिसे जा रहे हैं।[3] गीली केसर की तहें सुखायी जा रही हैं। कस्तूरी गीली की जा रही है। चन्दन

---

१ जदिच्छशे लम्बदशा-विशालं पावालअं सुत्तशदेहि जुत्तम्।
मंशं च खादुं तह तुट्टि कादुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू त्ति।
संस्कृतछाया—यदीच्छसि लम्बदशाविशालं प्रावारकं सूत्रशतैर्हि युक्तम्।
मांसञ्च खादितुं तथा तुष्टिञ्च कर्तुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू इति॥
८/२२

२. भोदि! एसा उण का? फुल्लपावारअ-पाउदा-उवाणह-जुअल-णिक्खित्त-तेल्ल चिक्कणेहिं पादेहिं उच्चासणे उवविट्ठा चिट्ठदि।
भवति! एषा पुनः का फुल्लप्रावारकप्रावृता उपानहयुगलनिक्षिप्त-तैलचिक्कणाभ्यां पादाभ्यामुच्चासनोपविष्टा तिष्ठति। चतुर्थ अङ्क, पृ० २४३-२४४

३. वेदुरिअ मेत्तिए-पवाल-पुप्फराअ-इन्दणील-कक्केतरअ-पद्मराअमरगअ पहुदिआइं, रअणविसेसाइं अण्णोण्णं विचारेन्ति सिप्पिणो। वज्झन्ति जादरूवेहिं माणिक्काइं घडिज्जन्ति सुवण्णालङ्कारा रत्तसुत्तेण, गत्थीअन्ती मोत्तिआभरणाइं, घसीअन्ति धीरं वेदुरिआइं, छेदीअन्ति सङ्खआ, साणिज्जन्ति पवालआ।
संस्कृत छाया—वैदूर्य-मौक्तिक-प्रवाल पुष्परागेन्द्रनील कर्केतरक पद्मराग-मरकतप्रभृतीन् रत्नविशेषान् अन्योन्यं विचारयन्ति शिल्पिनः। बध्यन्ते जातरूपैर्माणिक्यानि, घट्यन्ते सुवर्णालंकारा रक्तसूत्रेण, ग्रथ्यन्ते मौक्तिकाभरणानि, घृष्यन्ते धीरं वैदूर्याणि, छिद्यन्ते शङ्खाः, शाणयन्ते प्रवालकाः। चतुर्थ अङ्क, पृ० २३९-२४०

का रस विशेष रूप से घिसा जा रहा है। विभिन्न गन्धो के मिश्रण किये जा रहे हैं। वेश्या और कामुको को कपूर सहित पान दिया जा रहा है।[1] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उस समय शंख, कुंकुम, कस्तूरी, चन्दनरस तथा सुगंधित लेप का प्रयोग किया जाता था और वैदूर्य, प्रवाल मुक्ता, पुष्पराग, इन्द्रनील, कर्केतरक, पद्मराग, मरकत इत्यादि अनेक रत्नो एव जवाहरात से विविध प्रकार के आभूषण बनाये जाते थे।

शृंगार के प्रसाधनो मे फूलो का उपयोग होता था। रात्रि मे वसन्तसेना फूलों की माला धारण करती थी। शकार के विट ने वसन्तसेना के सम्बन्ध मे कहा है—बादलो के भीतर सन्धिस्थल मे छिपी हुई बिजली के समान तुम भले ही रात्रि के प्रथम भाग मे अधेरे के कारण दिखाई नही देती हो, परन्तु हे भीरु! तुम्हारी माला मे उत्पन्न होने वाली यह गध और शब्द करने वाले नूपुर तुम्हें प्रकट कर देगे।[2] अन्यत्र विट ने कहा है कि कुलीन पुत्र चारुदत्त का अनुगमन करने वाली तुम पुष्प-युक्त बालो से पकड कर खीची जा रही हो।[3]

वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार, चेट और विट के सम्भाषण मे विट कहता है कि कटिप्रान्त मे सुन्दर करधनी को धारण करती हुई, चूर्णाकृत मैनसिल को भी अपने गुलाबी वर्ण वाले मुख से तिरस्कृत करने वाली तुम भयभीत हुई नगरदेवता की भाँति विभिन्न रूप मे क्यो भागी जा रही हो।[4]

उस समय स्वर्णाभूषण रत्नजटित एवं मणिजटित हुआ करते थे। कर्णपूरक वसन्तसेना से कहता है कि नूपुरो का जोडा गिर रहा है। मणिजटित मेखलाएँ तथा लघुरत्न समूह से जडे हुए अति सुन्दर कंगन विचलित होने से परस्पर सघर्ष के

---

१. सुक्खविअन्ति ओलविदकुंकुम पत्थरा, सालीअदि कत्थूरिआ, विसेसेण घिस्सदि चन्दणरसो, संजोईअन्ति गन्धजुत्तीओ, दीअदि गणिआ-कामुआण सकप्पूर ताम्बोलं।

संस्कृत छाया—शोष्यन्ते आर्द्रकुंकुमप्रस्तरा, सार्यते कस्तूरिका, विशेषेण घृष्यते चन्दनरसः, संयोज्यन्ते गन्धयुक्तयः, दीयते गणिका-कामुकयो सकर्पूरं ताम्बूलम्। चतुर्थ अंक, पृ० २३९-२४०

२. कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं सौदामनीव जलदोदरसन्धिलीना।
त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं गन्धश्च भीरु! मुखराणि च नूपुराणि॥
१/३५

३ एषासि वयसो दर्पात् कुलपुत्रानुसारिणी।
केशेषु कुसुमाढ्येषु सेवितव्येषु कर्षिता॥ १/४०

४. किं त्वं कटीतटनिवेशितमुद्वहन्ती, ताराविचित्ररुचिरं रशनाकलापम्।
वक्त्रेण निर्मथितचूर्णमनःशिलेन त्रस्ताद्भुतं नगरदैवतवत्प्रयासि॥ १/२७

शकार अपने केशविन्यास के सम्बन्ध मे स्वयं कहता है कि किसी क्षण बालों को बाँध लेता हूँ, क्षण मे उसका जूड़ा बना लेता हूँ, क्षण में उन्हें स्वाभाविक रूप मे छोड़ देता हूँ। क्षण मे उन्हें बिखरा देता हूँ तथा क्षण भर में ही उन केशपाशों की वेणी बना लेता हूँ। इस प्रकार रंगबिरंगा अद्भुत राजा का साला हूँ।[1]

इस प्रकार मृच्छकटिक मे खान-पान, वेशभूषा एवं प्रसाधन का पर्याप्त विवेचन हुआ है। उस समय चावल का प्रयोग अधिक और विभिन्न प्रकार से होता था। भोजन बनाने मे घी, दही तथा दूध का प्रयोग होता था। चटपटी वस्तुओं को तलने के लिए घी अथवा तेल का प्रयोग किया जाता था। इन वस्तुओं मे मसालों के लिए हींग, जीरा, भद्रमुस्ता, सोंठ तथा मिर्च प्रयोग मे लाई जाती थी। रक्तमूलक (लाल मूली या गाजर) की चटनी बनाई जाती थी, अचारों का प्रयोग होता था। भोजन मे रुचि के अनुसार मछली-मांस का अंश भी पर्याप्त रूप मे रहता था। मांस को स्वादिष्ट बनाने के लिये मसालों का प्रयोग होता था। कपूर के साथ पान खाने की प्रथा थी। मद्यपान भी किया जाता था। स्त्री और पुरुष दोनों उत्तरीय का प्रयोग करते थे। स्त्री तथा पुरुष मणिरत्न आभूषण धारण करते थे। स्त्रियाँ कुंडल, नूपुर, करधनी आदि का तथा पुरुष अंगूठी और कङ्कण का प्रयोग करते थे। प्रसाधन के लिये पुष्पमालाएँ धारण की जाती थीं। केशविन्यास भी अनेक प्रकार से होता था।

धार्मिक अवस्था—मृच्छकटिक प्रकरण मे देश की धार्मिक स्थिति पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उस समय देश मे वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म दोनों धर्मों का प्रचार था। वैदिक धर्म उन्नतावस्था मे था। सम्भवतः वही राजधर्म भी था किन्तु बौद्ध धर्म ह्रासोन्मुख था। वैदिक यज्ञों, पूजा-पाठ, पशु-बलि तथा तर्पण आदि क्रियाएँ प्रचलित थीं। देवपूजा, बलि और तप मे चारुदत्त का अटल विश्वास दिखाई देता है।[2] वह उनकी पूजा करना अपना नित्य कर्तव्य समझता है। चारुदत्त ने अपने परिवार के वैदिक मंत्रों के उच्चारण तथा यज्ञादि मे पवित्र होने

---

१. विचलइ णेउरजुअलं छिज्जन्ति अ मेहला मणिरवइआ।
वलआ अ सुन्दरदरा रअंकुर-जाल-पडिवद्धा॥
संस्कृत छाया—विचलति नूपुरयुगलं छिद्यन्ते च मेखला मणिखचिता।
वलयाश्च सुन्दरतरा रत्नांकुरजालप्रतिबद्धा॥ ७/१६

२. खणेण गण्ठी खणजूडके मे खणेण वाला खणकुन्तला वा।
खणेण मुक्के खण उद्धजूडे चित्ते विचित्ते हगे लाअशाले॥
संस्कृत छाया—क्षणेन ग्रन्थिः क्षणजूटको मे क्षणेन बाला क्षणकुन्तला वा।
क्षणेन मुक्ताः क्षण ऊर्ध्वचूडा चित्रो विचित्रोऽहं राजस्याल॥ ८/२

३. तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभिः।
तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किं विचारितैः॥ १।१६

का कथन किया है ।[1] नागरिकजन भाँति-भाँति के व्रत, उपवास आदि करते थे और ऐसे अवसरों पर ब्राह्मणों को दान देते थे तथा भोजन कराते थे । जैसे सूत्रधार की पत्नी नटी ने अभिरूपपति नामक तथा चारुदत्त की पत्नी धूता ने रत्नषष्ठी नामक व्रत किया था ।[2] निम्न वर्ग के लोग भी धर्मभीरु थे, जैसा कि नवम अंक में स्थावरक विट आदि के कथन से ज्ञात होता है ।[3] चोर भी अपने कार्यारम्भ काल में अपने पेशे के देवता का स्मरण करते थे ।[4] चाण्डालों का भी अपने देवताओं के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा थी । चारुदत्त को मारते समय हाथ से खड्ग के छूट जाने पर चाण्डाल कहता है कि देवी सह्यवासिनि ! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो ।[5]

वैदिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म का भी जनता में प्रचार था, किन्तु देश में बौद्ध धर्मानुयायी अल्पसंख्या में थे । सांसारिक जीवन से विरक्त होने वाले व्यक्ति बौद्धभिक्षु हो जाते थे ।[6] भिक्षु कषायवस्त्र पहनते थे । भिक्षु प्रायः

---

१. मखशत-परिपूतं गोत्रमुद्भासितं मे सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।
मम मरणदशाया वर्तमानस्य पापैस्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ॥ १०।१२

२ (क) अज्ज उववासो गहिदो । अहिरूववदी णाम ।
संस्कृतछाया—आर्य ! उपवासो गृहीत । अभिरूपपतिर्नाम ।
प्रथम अंक, पृ० १५-१६

(ख) अहं क्खु रअणछ्ट्ठिं उववसिदा आसि ।
संस्कृतछाया—अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता आसम् । तृतीय अंक, पृ० १८४

३. (क) जेण म्हि गब्भदासे विणिम्मिदे भाअधेअदोसेहिं ।
अहिअं च ण कीणिस्सं तेण अकज्जं परिहलामि ॥
संस्कृतछाया—येनास्मि गर्भदासः विनिर्मितो भागधेयदोषैः ।
अधिकञ्च न क्रेष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि ॥ ८।२५

(ख) अपेप नाम परिभूतदशो दरिद्रः प्रेष्यः परत्र फलमिच्छति नास्य भर्ता ।
तस्मादमी कथमिवाद्य न यान्ति नाशं ये वर्द्धयन्त्यसदृशं सदृशं त्यजन्ति ॥ ८।२६

४. नमो वरदाय कुमारकार्तिकेयाय, नमः कनकशक्तये, ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय, नमो भास्करनन्दिने, नमो योगाचार्याय, यस्याहं प्रथमः शिष्यः । तृतीय अंक, पृ० १६२

५. भअवदि शज्झवाशिणि ! पशीद पशीद । अवि णाम चालुदत्तश्श मोक्खे भवे, तदो अणुगहीदं तुए चाण्डालउलं भवे । (भगवति सह्यवासिनि ! प्रसीद प्रसीद । अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्, तदानुगृहीतं त्वया चाण्डालकुलं भवेत् ।)
दशम अंक, पृ० ५६०

६. जूदेण तं कदं मे जं वीहत्थं जणश्श शव्वश्श ।
एण्हिं पाअडशीशो णलिन्दमग्गेण विहलिश्शं ॥
संस्कृत छाया—द्यूतेन तत् कृतं मे यद्विहस्तं जनस्य सर्वस्य ।
इदानीं प्रकटशीर्षो नरेन्द्रमार्गेण विहरिष्यामि ॥ २/१७

इन्द्रियसंयमी और लोकसेवक होने थे।[1] तथापि समाज में उनका विशेष आदर नहीं था। बौद्धभिक्षु का दर्शन अशुभ एवं अपशकुन समझा जाता था। आर्यक को मुक्त करके जीर्णोद्यान से जाते समय चारुदत्त के सम्मुख भिक्षु आता है, तब वह कह उठता है—'क्यों यह सामने ही अमाङ्गलिक मुण्डित बौद्धसन्यासी का दर्शन हुआ है।'[2] कुछ भिक्षु सिर मुँडाकर भी सांसारिक वासनाओं से अपने मन को मुक्त नहीं रख पाते थे, कदाचित् ऐसे ही भिक्षुओं को लक्ष्य करके कहा गया है—शिल मुण्डिद तुण्ड मुण्डिदे चित्त ण मुण्डिद कोशमुण्डिदे।[3] सम्भवतः उस समय लोग भिक्षुओं के कार्यों को शङ्का की दृष्टि से देखते थे, उन्हें लम्पट समझते थे। इसीलिए भिक्षु वसन्तसेना को होश में लाकर अपने साथ ले जाते समय कहता है—'ओशलध ! एशा तलुणी इत्थिआ एशो भिक्खु त्ति शुद्धे मम एशे धम्मे।'[4] उस समय बौद्धभिक्षु विहारों में रहते थे, वहाँ कुछ भिक्षुणियाँ भी रहती थी।[5] उस समय देश में बौद्धों के बहुत से विहार थे, उनका एक कुलपति होता था। दशम अङ्क में चारुदत्त एक बौद्ध भिक्षु के विषय में कहता है—"हे सखे ! इसका संकल्प दृढ है। अतः संसार के सारे मठों का इसे अधिपति बना दो"।[6]

देव-मूर्तियों की पूजा का भी प्रचलन था। देवमूर्तियाँ काष्ठ अथवा पत्थर की बनाई जाती थी। नगर में कामदेव का मन्दिर था जहाँ वसन्तसेना शकार तथा चारुदत्त का प्रथम मिलन हुआ था। वसन्तसेना के भवन में भी मन्दिर का होना वर्णित है। चारुदत्त ने अनेक मन्दिरों के निर्माण में सहायता की थी। घर की देहली अथवा चौराहे पर मातृदेवियों तथा अन्य देवी-देवताओं को बलि चढ़ाने की प्रथा थी।[7] वसन्तसेना के प्रासाद में भी दैनिक पूजा हेतु एक ब्राह्मण नियुक्त

---

१. हत्थशञ्जदो मुहशञ्जदो इन्द्रिअशञ्जदो शे क्खु माणुशे।
कि कलेदि लाअउले तश्श पललोऐ हत्थे णिच्चले॥
संस्कृत छाया—हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मानुषः।
कि करोति राजकुलं तस्य परलोको हस्ते निश्चलः॥ ८/४७

२. कथमभिमुखमनाभ्युदयिकं श्रमणकदर्शनम्। सप्तम अंक, पृ० ३७१

३. शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किं मुण्डितम्। ८/३

४. अपसरत। एषा तरुणी स्त्री, एष भिक्षुरिति शुद्धो मम एष धर्मः।
अष्टम अंक, पृ० ४४६

५. एदश्शिं विहाले मम धम्मबहिणिआ चिट्ठदि।
संस्कृत छाया— एतस्मिन् विहारे मम धर्मभगिनी तिष्ठति।
अष्टम अंक, पृ० ४४६

६. सखे ! दृढोऽस्य निश्चयः। तदृथिव्यां सर्वविहारेषु कुलपतिरयं क्रियताम्।
दशम अंक, पृ० ५६६

७ (क) एसो चारुदत्तो गिहिकिदेवकज्जो गिहदेवताए बलि हरन्तो इदो ज्जेव आअच्छदि। (शेष अगले पृष्ठ पर)

था।[1]

ब्राह्मण के लिये यज्ञोपवीत का अत्यधिक महत्त्व था। उसे धारण करना ब्राह्मण के लिये एक धार्मिक लक्षण माना गया है। चारुदत्त ने इस यज्ञोपवीत को ब्राह्मण का आभूषण स्वीकार किया है। अपने को वध्यस्थल में देखकर वह अपने पुत्र को अपना यज्ञोपवीत ही देना उचित समझता है।[3] शर्विलक भी ब्राह्मण था किन्तु उसने चौर्य-कर्म-काल में आवश्यकता पड़ने पर यज्ञोपवीत का उपयोग मानसूत्र के रूप में किया है।[4] उसने यज्ञोपवीत का उपयोग एक फीते के रूप में, आभूषणों के जोड़ खोलने के कार्य में, किवाड़ की सिटकनी अलग करने में तथा सर्पों के द्वारा काटने पर बंध लगाने में बताया है।[4] इस प्रकार पथभ्रष्ट ब्राह्मण शर्विलक चोरी इत्यादि नीच कार्यों में यज्ञोपवीत का उपयोग करने में नहीं हिचकिचाते थे।

मृच्छकटिक-काल में अन्धविश्वास धर्म का अंग बन गये थे। सिद्धों की

(पिछले पृष्ठ का शेष)

संस्कृत छाया—एष चारुदत्तः सिद्धीकृतदेवकार्यो गृहदेवतानां बलिं हरन् इत एवागच्छति। प्रथम अंक पृ० २२-२३,

(ख) यासां बलिः सपदि मद्गृहदेहलीनां हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः। १/९

(ग) तद् वयस्य ! कृतो मया गृहदेवताभ्यो बलिः। गच्छ त्वमपि चतुष्पथे मातृभ्यो बलिमुपहर। प्रथम अंक, पृ० ३२

(घ) सर्वथा देवताः स्वस्ति करिष्यन्ति। नवम अङ्क, पृ० ४७७

(ङ) गृहस्थस्य नित्योऽयं विधि।
तपसा मनसा वाग्भि. पूजिता बलिकर्मभिः।
तुष्यन्ति शमिनां देवता किं विचारितैः ॥, १/१६

१. अज्जए ! अत्ता आदिसदि ण्हादा भविअ देवदाणं पूअं णिव्वत्तेहि त्ति। हञ्जे ! विण्णवेहि अत्तं, अज्ज ण ण्हाइस्सं, ता बम्हणो ज्जेव पूअं णिव्वत्तेदु त्ति। संस्कृतछाया—आर्ये ! माता आदिशति स्नाता भूत्वा देवतानां पूजां निर्वर्त्तयेति। हञ्जे ! विज्ञापय मातरम्, अद्य न स्नास्यामि। तद् ब्राह्मण एव पूजां निर्वर्तयतु इति। द्वितीय अङ्क, पृ० ९५

२. अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।
देवतानां पितॄणां च भागो येन प्रदीयते ॥ १०/१८

३ आ, इदं यज्ञोपवीतं प्रमाणसूत्रं भविष्यति। यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्, विशेषतोऽस्मद्विधस्य। तृतीय अंक, पृ० १६३

४. एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगान्।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च ॥ ३/१६

भविष्यवाणी पर ही राजा पालक ने आर्यक को कारागार में डाल दिया था। आँखों का प्रतिकूल स्थिति में फड़कना, कौवे का बोलना, साँप को देखना आदि, अपशकुन माने जाते थे।[1] चाण्डालों का कथन है कि इन्द्रध्वज का पतन, गाय का प्रसव, नक्षत्रों का पतन तथा सज्जन मनुष्य की मृत्यु नहीं देखनी चाहिये।[2] चारुदत्त जिस समय न्यायालय में प्रवेश करता है, सामने कौओं और सर्प को देखता है, द्वार की चौखट से उसका सिर टकरा जाता है और पैर फिसल जाता है। ये सब अपशकुन उसके दुर्भाग्य का लक्षण समझे जाते है।[3]

ज्योतिष के अनुसार ग्रहों के मनुष्यजीवन को प्रभावित करने का विश्वास भी प्रचलित था। घबराया हुआ चन्दनक कहता है कि सूर्य किसके आठवें स्थान

---

१. (क) सव्ये मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा।
पन्था सर्पेण रुद्धोऽयं स्वस्ति चास्मासु दैवतः ॥ ६/१५

(ख) अये! शस्त्रं मया प्राप्तं स्पन्दते दक्षिणो भुजः।
अनुकूलश्च सकलं हन्त संरक्षितो ह्यहम् ॥ ६/२४, पृ० ३५४

(ग) वसन्तसेना—फुरदि दाहिणं लोअणं, वेवदि मे हिअअं, सुण्णाओ दिसाओ, सव्वं ज्जेव विसंठुलं पेक्खामि।
संस्कृत छाया—स्फुरति दक्षिणं लोचनम्, वेपते मे हृदयम्, शून्या दिशः, सर्वमेव विसंष्ठुलं पश्यामि। अष्टम अंक, पृ० ३६२

२. इन्देप्पवाहिअन्ते गोप्पसवे संकमं च तालाणं।
सुपुलिश-पाण-विपत्ती चत्तालि इमे ण दट्ठव्वा ॥
संस्कृतछाया—इन्द्रः प्रवाह्यमाणो गोप्रसवः संक्रमश्च ताराणाम्।
सत्पुरुषप्राणविपत्तिः चत्वारः इमे न द्रष्टव्याः ॥ १०/७

३. (क) रूक्षस्वरं वाशति वायसोऽयममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति ॥
सव्यञ्च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति ॥ ६/१०

(ख) शुष्कवृक्षस्थितो ध्वाङ्क्ष आदित्याभिमुखस्तथा।
मयि चोदयते वामं चक्षुर्घोरमसंशयम् ॥ ९/११

(ग) मयि विनिहितदृष्टिर्भिन्ननीलाञ्जनाभः स्फुरति विततजिह्वः शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः।
अभिपतति सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षिर्भुजगपतिरयं मे मार्गमाक्रम्य सुप्तः ॥ ९/१२

(घ) स्खलति चरणं भूमौ न्यस्तं न चार्द्रतमा मही
स्फुरति नयनं वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते।
शकुनिरपरश्चायं तावद् विरौति हि नैकशः
कथयति महाघोरं मृत्युं न चात्र विचारणा ॥ वही, ९।१३

(ङ) सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा।
पन्था सर्पेण रुद्धोऽयं स्वस्ति चास्मासु दैवत ॥ वही ६।१५

पर है, चन्द्रमा किसके चतुर्थ स्थान पर, शुक्र किसके षष्ठ स्थान पर और मंगल किसके पचम स्थान पर है, बृहस्पति किसकी जन्मराशि के छठे स्थान पर है और शनि नवम स्थान पर है।[1]

नवम अंक मे विदूषक की कुक्षि से गिरते हुए वसन्तसेना के आभूषणों की ओर सकेत करके शकार जब अधिकरणिक के सामने चारुदत्त के विरोध मे अपना प्रमाण प्रस्तुत करता है, तब अधिकरणिक कह उठता है—मंगल के विरुद्ध होने पर क्षीण बृहस्पति की बगल मे यह दूसरा धूमकेतु ग्रह उदित हो गया है। आशय यह है कि शकार तो चारुदत्त के विरुद्ध था ही, अब विदूषक की कुक्षि से गिरते हुए आभूषणों ने उसके दोष को और भी पुष्ट कर दिया है।[2] इसके अतिरिक्त अधिकरणिक ने अन्यत्र भी कहा है कि सूर्योदय के समय सूर्यग्रहण किसी प्रधान पुरुष के विनाश की सूचना देता है।[3]

धर्म के स्वाभाविक अग रूप मे लोगों की आस्था भाग्य मे थी। चाण्डालो के हाथ की तलवार को कापुरुष का शस्त्र कहा गया है। भाग्य के अनियन्त्रित खेल का निरूपण सम्पूर्ण प्रकरण मे प्रतिध्वनित है। चारुदत्त को भाग्यवादी दिखाया गया है। उसने कहा है कि भाग्यक्रम से धनागम होता है तथा धन का नाश होता है।[4] आर्यक से चारुदत्त ने कहा है कि तुम अपने भाग्य से ही रक्षित हुए हो।[5] इसी तथ्य की झलक शकार और चेट के सम्भाषण मे चेट द्वारा व्यक्त की गई है—कि पूर्व जन्मकृत पापों के कारण जन्म से ही मुझे दास बनना पड़ा है, अब वसन्तसेना को मारकर अधिक पाप नही कमाऊँगा। इसलिए मैं दुष्कर्म या

---

१. कस्स ट्ठमो दिणअरो कस्स चउत्थो अवट्ठए चन्दो
छट्ठो अ भग्गवग्गहो भूमिसुओ पचमो कस्स
भण कस्स जन्म-छट्ठो जीवो णवमो तहेअ सूरसुओ।
जीअन्ते चंदणए को सो गोवालदारअं हरइ॥

संस्कृत छाया—कस्याष्टमो दिनकर कस्य चतुर्थश्च वर्तते चन्द्र।
षष्ठश्च भार्गवग्रहो भूमिसुत पञ्चम कस्य॥ ६।६
भण कस्य जन्मषष्ठो जीवो नवमस्तथैव सूरसुत।
जीवति चन्दनके क ग गोपालदारकं हरति॥ ६।१०

२. अङ्गारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः। ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः॥ ६।३३

३. सूर्योदये उपरागो महापुरुषविनिपातमेव कथयति। नवम अंक, पृष्ठ ४६०

४. (क) भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। १।१३
(ख) पुरुषभाग्यानामचिन्त्यत्वात् खलु व्यापाराः, यदहमीदृशीं दशामनुप्राप्त। दशम अंक, पृ० ५२३

५. स्वैर्भाग्यै परिरक्षितोऽसि। ७।७

परित्याग करता हूं।[1] प्रकरण के अन्त में भी विधि के विधान की दुहाई दी गई है कि भाग्य रहट की घटिकाओं के समान मनुष्य के साथ खिलवाड़ किया करता है। किसी की उन्नति करता है और किसी का पतन करता है।[2]

इस प्रकार मृच्छकटिककार की ज्योतिषशास्त्र के प्रति, भाग्य के प्रति, पुनर्जन्म तथा कर्म-सामान्य के प्रति आस्था स्पष्ट प्रतीत होती है। उस समय जनसामान्य में यह विश्वास बद्धमूल था कि उत्तमकार्यों का परिणाम अन्त में उत्तम होता है और दुष्कर्मों का परिणाम बुरा होता है।

आर्थिक-अवस्था :—मृच्छकटिक प्रकरण के अध्ययन से साधारणतः समृद्धि का ही आभास होता है, यद्यपि निर्धनता तथा दुर्भिक्ष का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[3] कुछ लोग इतने धनी होते थे कि वे अपने बच्चों को खेलने के लिए सोने के खिलौने देते थे। चारुदत्त के पड़ोसी का लड़का सोने की गाड़ी से खेलता है।[4] चारुदत्त की अत्यन्त दरिद्रावस्था में भी चोरी गये धरोहर रूप स्वर्णाभूषणों के

---

१. जेण म्हि गब्भदासे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं।
अहिअं च ण कीणिस्सं तेण अकज्जं पलिहलामि॥
संस्कृत छाया—येनास्मि गर्भदासः विनिर्मितो भागधेयदोषैः।
अधिकञ्च न क्रेष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि॥ ८।२५

२. काश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा काश्चिन्नयत्युन्नतिं
काश्चित् पातविधौ करोति च पुनः काश्चिन्नयत्याकुलाम्।
अन्योन्यप्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय—
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः॥ १०।५९

३. (क) किं दाणि दासीए पुत्ता! दुब्भिक्खकाले वुड्ढरङ्को विअ उद्धरं सासाअसि एसा सा सा त्ति।
संस्कृत छाया—किमिदानीं दास्याः पुत्र! दुर्भिक्षकाले वृद्धरङ्क इव श्वासायसे एषा सा सा इति। पंचम अङ्क, पृ० २६६
(ख) निर्धनता सर्वापदामास्पदम्। १।१४
(ग) अयं पटः सूत्रदरिद्रतां गतो ह्ययं पटश्छिद्रशतैरलङ्कृतः।
अयं पटः प्रावरितुं न शक्यते ह्ययं पटः संवृत एव शोभते॥ २।१०

४. एदिणा पडिवेसिअ गहवइ-दारअ-केरिआए सुवण्णसअडिआए कीलिदं, तेण अ सा णीदा, तदो उण तं मग्गन्तस्स मए इअं मट्टिआ-सअडिआ कदुअ दिण्णा। तदो भणादि—रदणिए! किं मम एदाए मट्टिआ सअडिआए, तं ज्जेव सोवण्ण सअडिअं देहि त्ति।
संस्कृत छाया—एतेन प्रतिवेशिक-गृहपति-दारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्, तेन च सा नीता, ततः पुनस्तां मार्गयतो मया इयं मृत्तिका-शकटिका कृत्वा दत्ता। ततोभणति—रदनिके! किं मम एतया मृत्तिका-शकटिकया, तामेव सौवर्णशकटिकां देहि इति। षष्ठ अंक, पृ० ३१६–३२०

बदले में देने के लिए उसकी पतिव्रता स्त्री धूता चतुःसमुद्र-सारभूता रत्नमाला अपने गले से उतार कर दे देती है।[1] वसन्तसेना के अष्टप्रकोष्ठों वाले भव्य प्रासाद के वैभव का वर्णन भी देश की अच्छी आर्थिक स्थिति का समर्थन करता है।[2]

कृषि भारत का बड़ा पुराना उद्योग है, इसी पर भारत की समृद्धि निर्भर है किंतु इससे भारत के कृषकों का जीवन सुखमय नहीं रहा है। एक ओर जौ तथा धान की लहलहाती फसलों का उल्लेख मिलता है तो दूसरी ओर ऊसर भूमि में बीजों के व्यर्थ जाने[3] और वर्षा के अभाव में सूखते हुए धान के मेघ के आगमन से लहलहा उठने[4] की उपमाएँ मिलती हैं जिनसे आभास होता है कि कृषकों का जीवन चिन्तामुक्त नहीं था। वाणिज्य-व्यवसाय उन्नतावस्था में था। चारुदत्त ने पुष्पकरण्डक उद्यान में उगने वाले वृक्षों को व्यापारी तथा उनमें शोभित फूलों को विक्रेय द्रव्य से उपमित किया है, जिससे वाणिज्य की समृद्धि का आभास होता है।[5]

---

१. (क) अहं खु रअणछ्ट्ठिं उववसिदा आसि। तहिं जधा विहवाणुसारेण बम्हणो पडिग्गाहिदव्वो, सो अ ण पडिग्गाहिदो, ता तस्स किदे पडिच्छ इमं रअणमालिअं।

संस्कृतच्छाया—अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता आसम्। तस्मिन् यथाविभवानुसारेण ब्राह्मणः प्रतिग्राहयितव्य, स च न प्रतिग्राहितः, तद् तस्य कृते प्रतीच्छ इमां रत्नमालिकाम्। तृतीय अंक, पृ० १८४

(ख) य समालम्ब्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु तथा कृतः।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्यैव दीयते ॥ ३।२६

२. एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्टपओट्ठं भवणं पेक्खिअ, जं सच्चं जाणामि, एकत्थं विअ तिविट्टअं दिट्टं। पसंसिदुं णत्थि मे वाआविहवो। किं दाव गणिआघरो अधवा कुवेरभवणपरिच्छेदो त्ति।

संस्कृत छाया—एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तं अष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य, यत् सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम्। प्रशंसितुं नास्ति मे वाचाविभवः। अथवा कुवेरभवनपरिच्छेदः ? इति। चतुर्थ अंक, पृ० २४६–२४७

३. एसो दाणिं मम मन्दभाइणीए ऊसरक्खेत्तपडिदो विअ बीअमुट्ठी णिप्फलो इह आगमणो संवुत्तो।

संस्कृत छाया—एतदिदानीं मन्दभागिन्या ऊषरक्षेत्रपतित इव बीजमुष्टि निष्फलमिहागमनं संवृत्तम्। अष्टम अंक, पृ० ३६८

४. कोऽयमेवविधे काले कालपाशस्थिते मयि।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदितः ॥ १०।२६

५. वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर-पुरुषाः प्रविचरन्ति। ७।१

उज्जयिनी नगरी के एक मुहल्ले का नाम श्रेष्ठिचत्वर था जिसमें चारुदत्त जैसे सम्भ्रान्त व्यापारी निवास करते थे। उनका अपना एक समुदाय था और उन्हीं में से एक व्यक्ति प्रतिनिधि रूप से न्यायाधीश की सहायता के लिए न्याय-मंडप में बैठता था और न्याय-कार्य में भाग लेता था। धनी-मानी व्यापारियों ने नगर की सुख-समृद्धि के लिये तथा सार्वजनिक हित के लिए देवालय, तालाब, कूप तथा उद्यान आदि का निर्माण करवाया था। सार्थवाह के समान गृहपति भी धनाढ्य लोगों का एक महत्त्वपूर्ण समुदाय था, इन्हें जमींदारों का वर्ग स्वीकार किया जा सकता है। संवाहक गृहपति का पुत्र था।[1] सेवक भी दो प्रकार के थे यथा सवृत्ति सेवक[2] और गर्भदास या गर्भदासी।[3] सवृत्ति परिचारक अपनी सेवाओं के लिए वेतन पाते थे। दूसरी कोटि उन दासों की थी जो आजन्म अपने स्वामी की सेवा में संलग्न रहते थे जब तक कि उन्हें शुल्क लेकर मुक्त न किया जाए। मदनिका इसका प्रमाण है जिसे वसन्तसेना ने दास्यभाव से शुल्क लेकर मुक्ति दे दी थी। सरकारी नौकरों तथा अधिकारियों में अधिकरणिक, लिपिक, सेनापति, पुलिस आदि के साथ साथ नाई, चमार, बढ़ई, वास्तुकार आदि का भी उल्लेख हुआ है, ये लोग अपनी-अपनी सेवावृत्ति से धनोपार्जन करते थे। विदूषक ने सुवर्णकारों की कारीगरी और धूर्तता का वैसे ही वर्णन किया है जैसे वणिक् और वेश्या के धनलोभ का किया है।[4] शिल्पियों का वर्ग भी वर्तमान था। उनकी स्थिति अच्छी थी। अधिकरणिक ने शिल्पिवर्ग की निपुणता का वर्णन किया है।

---

१. अज्जे ! पाडलिउत्ते मे जम्मभूमी, गहवइदालके हगे, सवाहअश्श विति उवजीआमि।
संस्कृत छाया—आर्ये ! पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः, गृहपतिदारकोऽहम्, संवाहकस्य वृत्तिमुपजीवामि। द्वितीय अंक, पृ० १२७

२. तदो, तेण अज्जेण सवित्ती पलिचालके किदोम्हि चालित्तावशेशे अ तस्सिं जूदोवजीविम्हि संवुत्ते।
संस्कृत छाया—ततः तेन आर्येण सवृत्तिः परिचारकः कृतोऽस्मि।
चारित्र्यावशेषे च तस्मिन् द्यूतोपजीवी अस्मि संवृत्तः।
द्वितीय अंक पृ० १३१–१३२

३. जइ मम सच्छन्दो, तदा विणा अत्थं सव्वं परिजणं अनुजिस्सं करइस्सं।
संस्कृत छाया—यदि मम स्वच्छन्दः तदा विना अर्थं सर्वं परिजनमभुजिष्यं करिष्यामि। चतुर्थ अंक, पृ० २००

४. ......अवञ्चओ वाणिओ, अचोरो सुवण्णआरो, अकलहो गामसमागमो, अलुद्धा गणिआ त्ति दुक्करं एदे संभावीअन्ति।
संस्कृत छाया—अवञ्चको वणिक्, अचोरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसमागमः, अलुब्धा गणिका इति दुष्करमेते सम्भाव्यन्ते। पञ्चम अंक, पृ० २६०–२६१

वे आभूषणो की विश्वसनीय नकल करने मे दक्ष थे।[1]

राजनीतिक और प्रशासनिक अवस्था

देश की राजनीतिक अवस्था विचित्र थी। ऐसा प्रतीत होता है कि देश छोटे-छोटे राज्यो मे विभाजित था। देश मे कोई सार्वभौम सम्राट् नही था। इन राज्यो के राजा शासन के सम्बन्ध मे पूर्ण स्वतन्त्र थे और इसीलिये स्वेच्छाचारी थे। राजा की शक्तियाँ अनियन्त्रित थी। राज्य की सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी वही था। अनेक राजा थे और वे भी शक्तिहीन थे। उनका शासन-प्रबन्ध अच्छा नही था। राजा के कर्मचारी छोटी-छोटी बातो पर झगडते रहते थे। प्रत्येक राज्यकर्मचारी अपने-अपने पद का गर्व करता था। वह जब चाहता था अपना कार्य छोडकर चल देता था। वीरक और चन्दनक के कार्यकलापों से राज्यकर्मचारियो की अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। विभिन्न राज्यो मे विजय तथा आधिपत्य-स्थापन की परस्पर स्पर्धा चलती रहती थी। शासन प्रबन्ध की शिथिलता के कारण षड्यन्त्रकारियो को अपनी कुत्सित योजनाएँ पूर्ण करने का अच्छा अवसर मिलता था। दुर्बल, नृशंस एवं अयोग्य राजाओ के विरुद्ध क्रांति एवं विप्लव की योजना के द्वारा राज्य उलटना सहज काम था। षड्यन्त्रकारी देश के चोर, जुआरी, विद्रोही राज्यकर्मचारी तथा राजा द्वारा अपमानित व्यक्तियो को एकत्र करके उनकी सहायता से षड्यन्त्र करते थे। चतुर्थ अंक मे शर्विलक की उक्ति से षड्यन्त्र मे सम्मिलित व्यक्तियों पर सम्यक् प्रकाश पडता है—जिस प्रकार राजा उदयन की रक्षा के लिए यौगन्धरायण ने प्रयत्न किया था, उसी प्रकार अपने मित्र आर्यक के उद्धार के लिए आर्यक के सम्बन्धियो, विटों, अपनी भुजाओ के पराक्रम से यश प्राप्त करने वालो, राजा के निरादर से क्रुद्ध हुए लोगो तथा राजा के कर्मचारियो को उत्तेजित करता हूँ।[2]

दुर्जन शत्रुओ ने आर्यक से स्वयं शंकित होकर बिना कारण उस प्रिय मित्र को कारागार मे डाल दिया है। इसलिये राहुमुख मे पडे हुए चन्द्रमण्डल के समान मैं शीघ्र चलकर आर्यक का उद्धार करता हूँ।[3]

उस समय षड्यन्त्र का संदेह होने पर किसी भी पुरुष को पकडकर अनिश्चितकाल के लिये जेल मे डाल दिया जाता था। मृच्छकटिक प्रकरण मे राजा पालक

---

१. वस्त्वन्तराणि सदृशानि भवन्ति नून
रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
दृष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्ग-
स्सादृश्यमेव कृतहस्ततया च दृष्टम् ॥ ६।३४

२. ज्ञातीन्विटान्स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान् राजापमानकुपिताश्च नरेन्द्रभृत्यान्।
उत्तेजयामि सुहृद. परिमोक्षणाय यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः ॥ ४।२६

३. प्रियसुहृदमकारणे गृहीतं रिपुभिरसाधुभिराहितात्मशङ्कैः।
सरभसमभिपत्य मोचयामि स्थितमिव राहुमुखे शशाङ्कबिम्बम् ४।२७॥

ने आर्यक को सिद्धादेश को आधार बनाकर जेल मे डाल दिया था।[1] राजनीतिक कैदियों को बेड़िया पहनाई जाती थी। बेड़ियों से जकड़े आर्यक का कथन है कि राजा के महाबन्धन रूप कपट की आपत्ति से उत्पन्न दुःख-सागर को पार करके बन्धन को तोड़े हुए हाथी के समान चरण के अग्रभाग मे लगे हुए शृंखलापाश को खींचता हुआ मैं विचरण कर रहा हूं।[2]

विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों के बीच आन्तरिक कलह एवं विरोध एक सामान्य बात थी। दुर्बल शासक पर छोटा किंतु सबल शासक किस प्रकार आक्रमण करके उसे दबोच लेता है, इसका संकेत विट की निम्न उक्ति से प्राप्त होता है—सबल राजा नगर के बीच मन्द पराक्रम वाले शत्रु का सर्वस्व (कर समूह) उसी प्रकार अपहृत कर लेता है, जिस प्रकार आकाश मे मेघ मन्द तेज वाले चन्द्रमा की किरणों को आच्छादित कर लेता है।[3]

अपराधियों को पकड़ने के लिए मुख्य-मुख्य मार्गों पर पहरा बैठा दिया था। आने जाने वाली गाड़ियों की तलाशी लेने की भी प्रथा थी।[4] राजकुल मे किसी प्रकार की खुशी होने पर अथवा राज्य-परिवर्तन होने पर कैदी छोड़ दिये जाते थे। दशम अंक मे चाण्डाल कहता है कभी कोई साधु-पुरुष धन देकर वध्य पुरुष को छुड़ा लेता है, कभी राजा के यहाँ पुत्र उत्पन्न हो जाता है, जिससे बड़े महोत्सव के साथ सभी वध्य पुरुषों को छोड़ दिया जाता है। कभी हाथी बन्धन-स्तम्भ तोड़कर निकल पड़ता है, उस घबराहट से वध्य-जन मुक्त हो जाता है, कभी राज्य-परिवर्तन हो जाता है, जिसमे सभी वध्य पुरुषों की मुक्ति हो जाती है।[5]

---

१. (क) भो. ! अहं खलु सिद्धादेश-जनित-परित्रासेन राज्ञा पालकेन घोषादानीय विशमने गूढागारे बन्धनेन बद्ध । षष्ठ अंक, पृ० ३२८

(ख) चन्दनं ! भोः स्मरिष्यामि सिद्धादेशस्तथा यदि । ६।२६

(ग) किं घोषादानीय योऽसौ राज्ञा पालकेन बद्ध । सप्तम अंक, पृ० ३६५

२. हित्वाहं नरपतिबन्धनापदेशव्यापत्तिव्यसनमहार्णवं महान्तम् ।
पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी प्रभ्रष्टो गज इव बन्धनाद् भ्रमामि ॥ ६।१

३. हरति करसमूहं मे शशाकस्य मेघो
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रो ॥ ५।१६

४. अरे रे ! पेक्ख पेक्ख ! [अरे रे ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व।] षष्ठ अंक, पृ० ३३८
ओहारिओ पवहणो वच्चइ मज्झेण राअमग्गस्स ।
एदं दाव विआरह, कस्स कहिं पवसिओ पवहणो त्ति ॥
संस्कृत छाया—
अपवारितं प्रवहणं व्रजति मध्येन राजमार्गस्य ।
एतत्तावद्विचारय कस्य कुत्र प्रेषितं प्रवहणमिति ॥ ६।१२

५. कदावि कोवि साहू अत्थं दइअ वज्झं मोआवेदि। कदावि रण्णो पुत्तो होदि,
(शेष अगले पृष्ठ पर)

राज्यारोहण के समय राज्याभिषेक की प्रथा प्रचलित थी। आर्यक का विधिवत् अभिषेक हुआ था। राजा पालक के मारे जाने के बाद आर्यक के राज्याभिषेक के सम्बन्ध मे शर्विलक सहसा मंच पर आकर कहता है कि मैं दुष्ट राजा पालक को मार कर शीघ्र आर्यक को अभिषिक्त कर उसकी आज्ञा मस्तक पर रखकर दुःख मे पड़े हुए आर्य चारुदत्त का उद्धार करूँगा।[1] इसके अतिरिक्त वह यह भी कहता है कि मैं जनता को बताऊँगा कि सिद्धो के आदेशानुसार भाग्य के उत्कर्ष से सेना एव मन्त्रियो से रहित उस शत्रु पालक को मारकर तथा पुरवासियो को धैर्य धारण करवाकर, इन्द्र के राज्य के समान, शत्रुपालक के ससार मे श्रेष्ठ समस्त राज्य को आर्यक ने प्राप्त कर लिया।[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजा पालक एक स्वेच्छाचारी शासक था, इसीलिए उसे अपने सैनिको और मन्त्रियो से भी सहायता प्राप्त नही थी। इसी कारण अधिकारी वर्ग के देखते देखते उसे अपने प्राणो से हाथ धोने पड़े। उदार हृदय चारुदत्त ने भी राजा पालक को अविचारी कहा है।[3]

मृच्छकटिक-काल मे मुकदमो का फैसला करने के लिये न्यायालय होते थे। न्यायाधीश वेतन पाने वाला राजा का स्थायी नौकर होता था। राज्य की सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी होने के कारण राजा कानून भी बना सकता था। न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा सेवा-मुक्ति का भी उसे अधिकार था, इसी कारण नवम अंक मे शकार ने अधिकरणिक (न्यायाधीश) को धमकी दी थी कि यदि मुकदमा

(पिछले पृष्ठ का शेष)

तेण वद्धावेण शव्ववज्झाणं मोक्खे होदि। कदावि हत्थी बन्ध खण्डेदि, तेण शम्भमेण वज्झे मुक्के होदि। कदावि लाअपलिवत्तो होदि, तेण शव्ववज्झाण मोक्खे होदि।

संस्कृत छाया—कदापि कोऽपि साधुरर्थं दत्वा वध्य मोचयति। कदापि राज्ञः पुत्रो भवति। तेन वृद्धिमहोत्सवेन सर्ववध्याना मोक्षो भवति। कदापि हस्तिबन्धं खण्डयति तेन सम्भ्रमेण वध्यो मुक्तो भवति। कदापि राजपरिवर्तो भवति, तेन सर्ववध्याना मोक्षो भवति। दशम अंक, पृ० ५५८—५५६

१. हत्वा त कुनृपमहं हि पालकं भोस्तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम्। तस्याज्ञा शिरसि निधाय शेषभूता मोक्ष्येऽहं व्यसनगत च चारुदत्तम्। ॥ १०।४७

२. हत्वा रिपुं तं बलमन्त्रिहीन पौरान्समाश्वास्य पुनः प्रकर्षात्। प्राप्त समग्र वसुधाधिराज्य राज्य बलारेरिव शत्रुराज्यम् ॥१०।४८

३. (क) अहो अविमृश्यकारी राजा पालक। नवम अक, पृ० ५१६

(ख) इदमे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिता।
स्थाने खलु महीपाना गच्छन्ति कृपणा दशाम्॥ ६।४०

नहीं सुना गया तो राजा से कहकर कार्यमुक्त करवा दूँगा।[1]

न्यायालयों में एक न्यायाधीश, एक श्रेष्ठी और एक कायस्थ मिलकर न्याय करते थे। न्यायाधीश का कार्य केवल अपराध-निर्णय करना था, निर्णय की अन्तिम स्वीकृति देने अथवा निर्णय को कार्यान्वित करने का अधिकार राजा को ही था। चारुदत्त के अभियोग के विषय में अपना निर्णय सुना देने के बाद अधिकरणिक ने चारुदत्त से कहा—आर्य चारुदत्त ! निर्णय करने में हम लोग अधिकारी हैं और राजा की इच्छा। तथापि शोधनक ! राजा पालक को इसकी सूचना दे दो कि मनु के अनुसार यह पातकी ब्राह्मण मारा नहीं जा सकता है। सम्पूर्ण वैभव के साथ इसे इस राष्ट्र से बहिष्कृत कर दो।[2] अधिकरणिक के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उस युग में न्याय मनुस्मृति के अनुसार होता था। किन्तु पालक मनुस्मृति के अनुसार दिये गये उसके परामर्श पर ध्यान नहीं देता और आर्य चारुदत्त को फाँसी (शूली) का कठोर दण्ड देता है। इस प्रकार राजा अपनी इच्छानुसार न्यायालयों के निर्णय को उलट सकता था। राजाज्ञा ही सर्वोपरि न्याय माना जाता था। श्रेष्ठी वर्तमान न्यायालयों के असेसर के समान कहा जा सकता है और कायस्थ कदाचित् न्यायालय का पेशकार होता था। सभ्य एवं शिष्ट पुरुषों को न्यायालय में आसन दिया जाता था। न्यायालय पहुँचने पर चारुदत्त को आसन दिया जाता है। अधिकरणिक शोधनक से कहता है कि आर्य चारुदत्त के लिए आसन लाओ।[3]

राजा पालक के सम्बन्धी भी राजा की भाँति स्वेच्छाचारिता से दूर नहीं थे। एक बौद्ध सन्यासी सरोवर में कौपीन धोने पर राजा पालक के श्यालक शकार की फटकार पड़ने पर काँपते हुए कहता है—आश्चर्य है, यह तो राजा का साला संस्थानक आ गया है। एक भिक्षुक के अपराध करने पर, दूसरे भी जिस किसी

---

१. किं ण दीशदि मम ववहाले ? जइ ण दीशदि, तदो आउत्तं लाआणं पालअं बहिणीवदिं विण्णविअ बहिणिं अत्तिकं च विण्णविअ एदं अधिअलणिअं दूले फेलिअ एत्थ अण्णं अधिअलणिअं ठावइश्शं।

संस्कृत छाया—किं न दृश्यते मम व्यवहारः ? यदि न दृश्यते तदा आवुत्तं राजानं पालकं भगिनीपतिं विज्ञाप्य भगिनीं मातरं च विज्ञाप्य एतमधिकरणिकं दूरीकृत्य अत्र अन्यमधिकरणिकं स्थापयिष्यामि। नवम अंक, पृ० ४६१

२. आर्यचारुदत्त ! निर्णये वय प्रमाणम्, शेषे तु राजा। तथापि शोधनक ! विज्ञाप्यतां राजा पालकः—

अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।

राष्ट्रादस्मात् निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह ॥ ९।३९

३. (क) भद्र शोधनक ! आर्यस्यासनमुपनय। नवम अंक, पृ० ४८०

(ख) (आसनमुपनीय) एदं आसणं, एत्थ उवविसदु अज्जो।

संस्कृत छाया—इदमासनम् अत्रोपविशतु आर्यः। नवम अंक, पृ० ४८१

भिक्षुक को यह देखता है, उसी को गौ के समान नासिका छेद कर बाहर निकाल देता है। अब असहाय मैं किसकी शरण में जाऊँ अथवा भगवान् बुद्ध ही मेरे आश्रय हैं।[1]

मृच्छकटिक में अभियोग वाले प्रसंग में न्यायपद्धति का पूरा चित्र उपस्थित हो जाता है। न्यायालय को अधिकरण-मंडप कहा जाता था। उससे सम्बद्ध एक नौकर होता था जिसे शोधनक कहा जाता था इनका काम मंडप की सफाई करना, अधिकारियों के बैठने के लिए आसनादि की व्यवस्था करना, अपराधियों को प्रविष्ट कराना था। इसके अतिरिक्त न्यायाधीश की आज्ञाओं का सम्प्रेषण करना भी उसका कर्तव्य था। कायस्थ लिपिक का कार्य करता था। श्रेष्ठी के साथ कायस्थ भी अपराध-निर्णय में न्यायाधीश की सहायता करता था। अधिकरणिक ने न्यायाधीश के गुणों का वर्णन करते हुए स्वयं कहा है कि न्याय-पराधीन होने के कारण वादी-प्रतिवादी का मनोभाव जान लेना हम जैसे न्यायाधीशों के लिये बड़ा कठिन है। वादी एवं प्रतिवादी गण सत्य बात को छिपाकर अनीतिपूर्ण असत्य अभियोग को उपस्थित करते हैं। क्रोध के वशीभूत हो न्यायालय में वे अपने दोषों को नहीं कहते हैं। पक्ष और विपक्ष से परिवर्द्धित दोष ही राजा तक पहुँच पाता है, अतः न्याय होना असम्भव है। न्यायाधीश पर प्रायः दोष लगाया जाता है और उसके गुणों की सही परीक्षा नहीं की जाती है। क्रुद्ध होकर वादी-प्रतिवादी *अन्यायपूर्ण असत्य अभियोग उपस्थित करते हैं। सज्जन* भी न्यायालय में अपने दोषों को नहीं कहते हैं, अतः निश्चय ही वे नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार विचारकर्ता का कार्य अत्यन्त कठिन बन जाता है। इसलिए न्यायाधीश को धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि का विशेष ज्ञान होना चाहिए। वादी-प्रतिवादी के कपट-पूर्ण व्यवहार को समझने में चतुर, वक्ता तथा क्रोधरहित होना चाहिए। मित्र, शत्रु, पुत्रादि स्वजनों को समान दृष्टि से देखना, उनके अभियोगों पर उचित रूप से विचार कर निर्णय करना न्यायाधीश का पवित्र कर्तव्य है। उसे दुर्बलों का पालक, शठों को दण्ड देने वाला, धर्म-बुद्धि से निर्णय करने वाला, निर्णय-कार्य के वास्तविक तत्वों को समझने वाला और राजा के

---

१. ही अविदमाणहे ! एशे शे लाअशालशण्ठाणे आअदे। एक्केण भिक्खुणा अवलाहे किदे अण्णं पि जहिं जहिं भिक्खुं पेक्खदि, तहिं तहिं गोण विअ णास विन्धिअ ओवाहेदि। ता कहिं अशलणे शलणं गमिश्शं ? अधवा भट्टालके ज्जेव बुद्धे मे शलणे।

संस्कृत छाया—आश्चर्यम्। एष स राज-श्याल-संस्थान आगत। एकेन *भिक्षुणा अपराधे कृते, अन्यमपि यस्मिन् यस्मिन् भिक्षुं प्रेक्षते,* तस्मिन् तस्मिन् गामिव नासिका विद्ध्वा अपवाह्यति। तद् कस्मिन् अशरणः शरण गमिष्यामि। अथवा भट्टारक एव बुद्धो मे शरणम्।

अष्टम अंक, पृ० ३७५

कोर को दूर करने वाला होना चाहिए ।[1]

न्याय कार्य को व्यवहार तथा कानूनी तथ्यों को व्यवहारपद कहा जाता था। वादी तथा प्रतिवादी को क्रमशः कार्यार्थी अथवा व्यवहारार्थी कहा जाता था। वादी-प्रतिवादी के बयान लिये जाते थे। गवाहों की गवाहियाँ ली जाती थीं। कपट तथा छल का त्याग कर सत्यभाषण पर बल दिया जाता था।[2] सत्य की खोज में दो दृष्टियाँ अपनाने का वर्णन प्राप्त होता है—प्रथम वादी-प्रतिवादी के बयानों से क्या तथ्य निकलता है और दूसरी प्राप्त तथ्यों के परीक्षण से न्यायाधीश स्वयं सत्य के विषय में किस परिणाम पर पहुँचता है।[3]

जुए में हारे हुए धन को अदा न करना, स्त्री-हत्या तथा किसी राजनीतिक अपराधी की रक्षा करना या उनकी सहायता करना आदि अपराधों का उल्लेख मिलता है। इन अपराधों के लिये शारीरिक यन्त्रणा से लेकर मृत्यु-दण्ड तक के दण्ड दिये जाते थे। अपराधियों को सत्य कथन न करने पर कोड़े लगवाए जाते थे। नवम अंक में अधिकरणिक चारुदत्त से कहता है—आर्य चारुदत्त, सच बोलो। इस समय तुम्हारे सुकुमार शरीर पर कठोर बेंत पड़ेंगे। उन्हें निर्भीक होकर

---

१. अहो ! व्यवहारपराधीनतया दुष्करं खलु परचित्तग्रहणमधिकरणिकैः।

(क) छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम्।
तैः पक्षापरपक्षवर्द्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ॥ ९/३

(ख) छन्नं दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृताः
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे सन्तोऽपि नष्टा ध्रुवम्।
ये पक्षापरपक्षदोषसहिताः पापानि संकुर्वते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः॥ ९/४

(ग) मनः अधिकरणिकः खलु—
शास्त्रज्ञः कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधन—
स्तुल्यो मित्र-पर-स्वकेषु चरितं दृष्ट्वैव दत्तोत्तरः।
क्लीबान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्म्योऽतिलोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापहः ॥ ९/५

२. व्यवहारः सविघ्नोऽयं त्यज लज्जां हृदि स्थिताम्।
ब्रूहि सत्यमलं धैर्यं छलमत्र न गृह्यते ॥ ९/१८

३. वाक्यानुसारेण अर्थानुसारेण च। यस्तावद् वाक्यानुसारेण, स अर्थिप्रत्यर्थिभ्य, पश्चार्थानुसारेण, स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्यः।

नवम अङ्क, पृ० ४६७–४६८

सहो।[1] प्राणदण्ड देने का काम चाण्डाल करते थे। प्राणदण्ड श्मशान पर दिया जाता था।[2] वध्य पुरुष को अपमानित करने के लिये उसके शरीर का विचित्र शृंगार किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है। चारुदत्त के गले में करवीर पुष्प की माला पड़ी हुई थी, उसके सारे शरीर पर लालचन्दन का छापा मारा गया था, तिल, तंडुल, कुंकुम आदि के लेप से सभी अंग लिप्त कर दिये गये थे और इस प्रकार उसकी आकृति पशुवत् बना दी गई थी।[3] वध्यपुरुष को सड़कों पर घुमाया जाता था। चाण्डाल घोषणा-स्थलों पर नगाड़ा बजाकर विस्तारपूर्वक वध्य पुरुष के दुष्कृत्य तथा राजाज्ञा की घोषणा करते थे।[4] कभी-कभी स्वयं वध्य पुरुष को

---

१. आर्यचारुदत्त ! सत्यमभिधीयताम्। नवम अंक, पृ० ५११
इदानीं सुकुमारेऽस्मिन् निःशङ्कं कर्कशाः कशाः।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथैः।। ९।३६

२. *राजा पालओ भणादि—'जेण अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो वसन्तसेणा वावादिदा, तं ताइं ज्जेव आहरणाइं गले बन्धिअ डिण्डिमं ताडिअ दक्खिणमसाणं णइअ सूले भञ्जेध त्ति। जो को वि अवरो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि, सो एदिणा सणिआरदण्डेण सासीअदि।'*
संस्कृतछाया—राजा पालको भणति—'येन अर्थकल्यवर्तस्य कारणात् वसन्तसेना व्यापादिता तं तान्येव आभरणानि गले बद्ध्वा डिण्डिम ताडयित्वा, दक्षिणश्मशानं नीत्वा शूले भङ्क्त' इति। य कोऽपि अपरः ईदृशमकार्यमनुतिष्ठति, स एतेन सनिकारदण्डेन शिष्यते। नवम अंक, पृ० ५१५-५१६

३ (क) दिण्ण-करवीर-दामे, गहिदे अम्मेहि वज्झपुलिसेहिं।
दीवे व्व मन्दणेहे थोअं थोअं खअं जादि। १०।२
संस्कृत छाया—दत्त-करवीर-दामा-गृहीत आवाभ्यां वध्यपुरुषाभ्याम्।
दीप इव मन्दस्नेहः स्तोकं स्तोकं क्षयं याति।। १०।२

(ख) सर्वगात्रेषु विन्यस्तैं रक्तचन्दनहस्तकैः।
पिष्टचूर्णावकीर्णश्च पुरुषोऽहं पशूकृतः।। १०।५

४. शुणाध अज्जा ! शुणाध। एशे अज्जचालुदत्ते णाम। एदिणा किल अकज्जकालिणा गणिआ वसन्तशेणा अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो शुण्णं पुप्फकलण्डअजिण्णुज्जाणं पवेशिअ बाहुपाशबलक्कालेण मालेदि त्ति। एशे शलोत्ते गहिदे, शअं च पडिवण्णे। तदो लण्णा पालएण अम्हे आणत्ता एदं मालेदुं। जदि अवले ईदिशं उभअलोअविरुद्धं अकज्जं कलेदि, तं पि लाआ पालए एवं ज्जेव शाशदि।
संस्कृत छाया—शृणुत आर्या ! शृणुत। एष आर्यचारुदत्तो नाम। एतेन किल अकार्यकारिणा गणिका वसन्तसेना अर्थकल्यवर्तस्य कारणात् शून्यं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण मारितेति, एष सलोप्त्रो गृहीतः, स्वयञ्च प्रतिपन्नः, ततो राज्ञा पालकेन वयमाज्ञप्ता एतं मारयितुम्। यद्यपर ईदृशमुभयलोकविरुद्धमकार्यं करोति तमपि राजा पालकः एवमेव शास्ति।
दशम अंक, पृ० ५२८

अपने अपराध की घोषणा के लिये बाध्य किया जाता था। मृत्युदण्ड प्राप्त पुरुष के लिये शरीर पर आरा चलाकर मार डालने, विष खिलाने, पानी में डुबो देने, यंत्र पर चढ़ा देने तथा अग्नि में झोंक देने की भी प्रथाएं प्रचलित थीं।[1] अपराधी कुछ निश्चित अवसरों यथा राजा के पुत्रजन्मोत्सव, राज्य-परिवर्तन आदि पर मुक्त कर दिये जाते थे।[2]

न्यायमंडप की शोभा का चारुदत्त ने जो वर्णन किया है, उससे न्याय की निर्दयता तथा भीषणता का ध्वनन होती है—जहाँ राज्य-विषयक विविध चिन्ताओं में संलग्न मन्त्री जल के तुल्य हैं, जहाँ दूत-गण तरंग तथा शंख के सदृश व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ प्रान्तदेश में स्थित गुप्तचर नक्र तथा मकर के तुल्य है, जहाँ हाथी एवं घोड़े अन्य जलचर ग्राह आदि भयंकर जीवों के तुल्य प्रतीत हो रहे हैं, जहाँ विविध प्रकार से बोलते हुए वादी-प्रतिवादी जन कंकपक्षी के समान मनोरम लग रहे हैं जहाँ लेखक कायस्थ सर्प के समान कुटिल वृत्ति वाले दिखाई पड़ रहे हैं एवं जहाँ नीति ही भग्न तट है, वह न्यायालय हिंसात्मक आचरण के द्वारा समुद्र के समान व्यवहार कर रहा है।[3]

राज्य की रक्षा के लिए सैनिक-व्यवस्था होती थी। वसन्तसेना का सेवक चेट विदूषक से व्यंग्यपूर्ण प्रश्न करता है कि सुसमृद्ध ग्रामों की कौन रक्षा करता है। विदूषक ने उत्तर दिया-'रथ्या।' इस पर चेट हँस पड़ा। विदूषक अपने संदेह के निवारणार्थ चारुदत्त के पास पहुँच गया। चारुदत्त ने उसे बताया सेना रक्षा

---

१. विषसलिल-तुलाग्नि-प्रार्थिते मे विचारे क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य।
अथ रिपुवचनाद्वे ब्राह्मणं मां निहंसि पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेत. ।९।४३

२. कदावि कोवि शाहू अत्थं दइअ वज्झं मोआवेदि। कदावि लण्णो पुत्तो होदि, तेण वद्धावेण शव्ववज्झाणं मोक्खे होदि। कदावि हत्थी वन्धं खण्डेदि, तेण शम्भमेण वज्झे मुक्के होदि। कदावि लाअपलिवत्ते होदि, तेण शव्ववज्झाणं मोक्खे होदि।

संस्कृत छाया—कदापि कोऽपि साधुरर्थं दत्वा वध्यं मोचयति। कदापि राज्ञः पुत्रो भवति, तेन वृद्धिमहोत्सवेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति। कदापि हस्ती बन्धं खण्डयति, तेन सम्भ्रमेण वध्यो मुक्तो भवति। कदापि राजपरिवर्तो भवति, तेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति। दशम अंक, पृ० ५५८-५५९

३. चिन्तासक्त-निमग्न-मन्त्रि-सलिलं दूतोर्मिशङ्खाकुलं
पर्यन्त-स्थित-चार-नक्र-मकरं नागाश्व-हिंस्राश्रयम्।
नाना-वाशक-कङ्क-पक्षि-रुचिरं कायस्थ-सर्पास्पदं
नीति-क्षुण्ण-तटञ्च राज-करणं हिंस्रैः समुद्रायते ॥ ९।१४

करती है ।[1]

राज्य की ओर से गुप्तचर विभाग की भी व्यवस्था थी। राज्य सम्बन्धी सभी बातों की जानकारी के लिये और अपनी सत्ता की सुरक्षा के लिए गुप्तचरों का सीधा सम्बन्ध राजा से होता था। इसका परिचय आर्यक की रक्षा मे तत्पर चारुदत्त के कथन मे प्राप्त होता है—राजा पालक का इस प्रकार (आर्यक की रक्षा के रूप मे) महान् अनर्थ करके इस जगह क्षणभर भी ठहरना उचित नही है। हे मैत्रेय ! इस बेडी को पुराने कुएं मे गिरा दो। कही राजा दूत रूपी दृष्टि से इसे देख न ले।[2] नगर के चारो ओर प्राकार होता था और चारो दिशाओ मे चार बड़े-बड़े प्रतोलीद्वार होते थे, जहाँ बाहरी प्रवेश की निगरानी के लिए पुलिस अफसरो का पहरा रहता था। इसकी चर्चा छठे अंक मे वीरक और चन्दनक के प्रवहण-निरीक्षण-काल मे आई है। पुलिस-विभाग का मुख्य पदाधिकारी प्रधान-दण्डाधिकारी अथवा पृथ्वी-दण्डपालक कहलाता था। यह पद वीरक को प्राप्त था। नगर की सुरक्षा का भार इसी पर होता था: अतः यह नगररक्षाधिकारी कहलाता था। बलपति पदाधिकारी भी था। यह एक प्रकार का प्रधान-पुलिस अधिकारी होता था। यह पद चन्दनक को प्राप्त था। ये वीरक और चन्दनक राजा के विश्वास-पात्र थे।

राष्ट्रीय (पुलिस का अधीक्षक) का पद सामान्यत राजा के साले को ही प्राप्त होता था। शकार को इस पद पर रहने का सौभाग्य प्राप्त था। उपर्युक्त पदाधिकारियो के माध्यम से राजा राज्य की सुरक्षा का प्रयास करता था किन्तु सर्वोच्च नियन्त्रण राजा का ही था। इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य की व्यवस्था तो न्याय-विभाग और पुलिसविभाग द्वारा होती थी किन्तु नगरो की आवश्यकताओ की पूर्ति सम्भवतः शिष्ट-समुदाय की योजनाओं से होती होगी। यातायात के लिए चौडी-चौडी सडकें तथा गलियाँ बनी हुई थी। राजमार्ग तथा चतुष्पथ का भी

---

१. सुशमिद्धाए गामाणं का लक्खअ कलेदि?[सुसमृद्धाना ग्रामाणा का रक्षा करोति?]
अरे ! रच्छा [अरे ! रथ्या]
(सहासम्) अले णहि णहि (अरे नहि नहि)
भोदु मंसए पडिदम्हि। भोदु, चारुदत्त पुणो वि पुच्छिस्सं।
(भवतु संशये पतितोऽस्मि, भवतु चारुदत्त पुनरपि प्रक्ष्यामि।
वयस्य ! सेना)। पञ्चम अंक, पृ० २७१

२. कृत्वैवं मनुजपतेर्महद्व्यलीकं
स्थातुं हि क्षणमपि न प्रशस्तमस्मिन्।
मैत्रेय ! क्षिप निगडं पुराणकूपे
पश्येयुः क्षितिपतयो हि चारदृष्ट्या ॥ ७/८

उल्लेख आता है।[1] बरसात के मौसम में सड़कें कच्ची होने के कारण कीचड़ से युक्त हो जाती थी, इसका प्रमाण यही है कि जब आँधी और वर्षा में वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुँचती है, तब उसके मकान में प्रवेश करने से पूर्व अपने पैरों को धो लेती है।[2] उद्यानों की रक्षा उद्यानरक्षक करते थे। विट ने शकार को काणेलीपुत्र कहकर सम्बोधित करते हुए उद्यान की शोभा दिखाई है—फल एवं पुष्पों से शोभित, वायु के अभाव में निश्चल लताओं द्वारा अच्छी तरह आलिङ्गित ये वृक्ष राजा की आज्ञा से रक्षकों द्वारा रक्षित सपत्नीक पुरुषों के समान सुख का अनुभव कर रहे हैं।[3] द्यूतगृह का व्यवस्थापक सभिक होता था। यह बात विदूषक की उक्ति से ज्ञात होती है जो चारुदत्त की ओर से वसन्तसेना के प्रति कही गई है कि स्वर्णाभूषणों को अपना समझकर हार गया हूँ और जुए का सभाध्यक्ष वह राजदूत न मालूम कहाँ चला गया है। अतः उन्हीं आभूषणों को खरीद कर कैसे दिया जा सकता है।[4] तत्कालीन कर-व्यवस्था भी समीचीन थी। जनता से कर-वसूल करने के लिये विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। चारुदत्त के कथन से यह बात स्पष्ट होती है—वृक्ष वाणिज्य के समान सुशोभित हो रहे हैं, फूल विक्रेय वस्तु के समान वर्तमान हैं और भ्रमर राजपुरुष के समान राजभाग लेते हुए परिभ्रमण कर रहे हैं।[5] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मृच्छकटिक-काल में भी वर्तमान नगरपालिका जैसी कोई शासन-व्यवस्था अवश्य रही होगी।

मृच्छकटिककाल में देश में छोटे-छोटे राज्य थे, जो साधारणतः आत्मनिर्भर होते थे। उज्जयिनी भी एक राज्य था जिसके अन्तर्गत कुशावती का छोटा राज्य

---

१. (क) गच्छ, त्वमपि चतुष्पथे मातृभ्यो बलिमुपहर। प्रथम अंक, पृ० ३२
(ख) एदाये पदोसवेलाए इध राअमग्गे गणिआ विटा चेडा राअवल्लहा अ पुरिसा सञ्चरन्ति।

संस्कृतछाया—एतस्यां प्रदोषवेलायां इह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राज-वल्लभा च पुरुषा सञ्चरन्ति। पृ० ३४

२. पादौ नूपुर-लग्न-कर्दम-धरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता। ५।३५

३. अमी हि वृक्षाः फल-पुष्प-शोभिताः कठोर-निष्पन्द लतोपवेष्टिताः।
नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिता नराः सदारा इव यान्ति निर्वृतिम्॥ ८।७

४. मए तं सुवण्णभण्डअं विस्सम्भादो अत्तणकेरकेत्ति कदुअ जूदे हारिदं। सो अ सहिओ राअवात्थहारी ण जाणिअदि कहिं गदो त्ति।

संस्कृतछाया—मया तत् सुवर्णभाण्डं विस्रम्भादात्मीयमिति कृत्वा द्यूते हारितम्। स च सभिको राजवार्ताहारी न ज्ञायते कुत्र गत इति।

चतुर्थ अंक, पृ० २५१

५. वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर-पुरुषाः प्रविचरन्ति॥ ७।१

था। आर्यक ने पालक के वध के बाद सिंहासनासीन होने पर इस कुशावती राज्य को चारुदत्त को प्रदान कर दिया था।[1] राजतन्त्र होते हुए भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी। जनता की रक्षा-व्यवस्था शासन द्वारा समुचित नहीं थी। कुप्रबन्ध के कारण राजा को अधिकारियों पर विश्वास नहीं था और अधिकारी वर्ग को राजा का विश्वास नहीं था। प्रजा अनिश्चित दशा में थी।

१. प्रतिष्ठितमात्रेण तव सुहृदा आर्यकेण उज्जयिन्या वेणातटे कुशावत्या राज्य-मतिसृष्टम्। तद् प्रतिमान्यता प्रथमः सुहृत्प्रणय। दशम अंक, पृ० ५८३

शूद्रक की नाट्य-प्रतिभा

संस्कृत के विशाल नाट्यसाहित्य मे एक से एक सुन्दर रूपक हैं, उस नाट्य-शृंखला मे मृच्छकटिक का भी अपना विशिष्ट स्थान है। यह अपने ही ढंग का अनूठा प्रकरण है। वस्तुतः इसमे प्रणय-कथात्मक प्रकरण, धूर्तसंकुल भाण और राजनीतिक नाटक का वातावरण दिखाई देता है।

मृच्छकटिक प्रकरण की कथावस्तु, मध्यम वर्ग से ली गई है। इसमे चोर, जुआरी, धूर्त, भिक्षु, राजसेवक, पुलिस कर्मचारी, गणिका, उदार, दरिद्र आदि का वर्णन किया गया है। इसके पात्र देव या दानव नही है, वे इसी लोक के प्राणी हैं। लोकभाषा उनकी भाषा है और लोक-व्यवहार उनका जीवन है। यह एक ऐसी अकेली रचना है, जो अपने समय के मध्यमवर्ग की सामाजिक स्थिति को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करती है।

मृच्छकटिककार ने संस्कृत-नाट्य-लेखन की परम्परा का परित्याग किया है। समाज जिस गणिका को अनादर की दृष्टि से देखता है, यहाँ मृच्छकटिक मे उसे कुलवधू का सम्मान प्रदान किया गया है। वारागनाएं प्रेयसी हो सकती थी, पत्नी नही, किन्तु शूद्रक ने ब्राह्मण नायक को वेश्या युवती के साथ पति-पत्नी रूप मे मिला दिया। दूसरे ब्राह्मण शर्विलक से चौर्य कार्य करवाया उसे वेश्या-दासी मे अनुरक्त किया और फिर उस दासी को भी उसकी वधू बना दिया। इस प्रकार समाज को एक नया रूप देना मृच्छकटिककार का चरमलक्ष्य था। शूद्रक ने राज-वर्ग तथा सम्भ्रान्त वर्ग आदि के कृत्रिम प्रेम-संसार से नाट्य को पृथक् कर मृच्छकटिक में एक सर्वथा नवीन संसार की सृष्टि कर दी जिसमे लोक-जीवन साकार हो उठा और प्रेम अपने कायर तथा कातर स्वरूप का निर्मोक छोडकर सच्चे रूप मे चमत्कृत हो उठा।

भारत के नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार प्रकरण में लौकिक वृत्त होना चाहिए किन्तु संस्कृत के नाट्यकारों ने इतिहास एव पुराण का आश्रय लेते हुए लौकिक जीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। मृच्छकटिककार ने इस काल्पनिक तथा आदर्शात्मक नाट्यपरम्परा मे चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-कथा को इस ढंग से चित्रित किया है जिससे लौकिक जीवन का यथार्थवादी वातावरण बना रहे। नाट्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार संस्कृत रंगमंच पर शुद्ध यथार्थवाद की झाँकी कभी प्रस्तुत नही की गई किन्तु मृच्छकटिककार ने अपनी कृति मे इस परम्परा और मर्यादा का उल्लंघन कर वास्तविक चित्रण किया है। वस्तुतः मृच्छकटिक सामाजिक एवं कलात्मक चुनौतियों का नाट्य है।[1] शास्त्रीय परम्पराओं पर ध्यान न देते हुए जो यथोचित समझा गया, वही मृच्छकटिककार द्वारा अपनाया गया प्रतीत होता है। इसमे नायक चारुदत्त का प्रत्येक अंक मे

1. Dr. S. K. De—*History of Sanskrit Literature* (1947) पृ० २४८

उपस्थित न होना, रंगमंच पर निषिद्ध निद्रा और हिंसा का प्रदर्शन, दुर्दिन मे चारुदत्त तथा वसन्तसेना का परस्पर आलिंगन, सूत्रधार का संस्कृत मे बोलना प्रारम्भ करके प्रयोजनवशात्, नटी से प्राकृत मे बोलने लगना, राजपथ पर जुआरियों की लडाई, तृतीय अंक मे संधिच्छेद का साहसपूर्ण कार्य, छठे तथा नवम अंक मे क्रमश, वीरक और चन्दनक का तथा शकार एवं विदूषक का परस्पर संघर्ष, आठवे अंक मे वसन्तसेना का कंठनिपीडन एवं दशम अंक मे चितारोहण का भयानक एवं करुणापूर्ण दृश्य रंगमंच के लिए सर्वथा नवीन है, इनसे शास्त्रीयविधान का उल्लंघन स्पष्ट हो जाता है।

शूद्रक ने प्रकरण के नामकरण मे भी अपनी निराली मौलिक प्रतिभा को प्रदर्शित किया है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन के पडोसी के पुत्र के पास सोने की गाड़ी देखकर मचलने और रोने से तथा वसन्तसेना द्वारा अपने स्वर्णभूषणो को उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी मिट्टी की गाडी पर लाद देने की[1] घटना के आधार पर इसका नाम मृच्छकटिक रखा गया है। शूद्रक ने परम्परा से हटकर नायक-नायिका के नाम पर अपनी रचना का नामकरण नही करते हुए अपने मौलिक एवं नवीन प्रयोग की योजना को कार्यान्वित करने के लिये मृच्छकटिक जैसा अभिधान स्वीकार किया। कालिदास के नायक-नायिका स्वर्गीय तथा सामन्तीय वातावरण मे साँस लेते दिखाई पड़ते हैं तो शूद्रक के नायक-नायिका सामान्य तथा जीवन के यथार्थपूर्ण वातावरण मे। शूद्रक के पात्र मिट्टी के मनुष्य है, स्वर्ग अथवा देवता से उनका अप्रत्यक्ष (परोक्ष) सम्बन्ध भी नही है। मिट्टी के पात्र और मिट्टी वाली कला, मानुषी वातावरण और मानुषी शिल्प-योजना की स्थिति मे मृच्छकटिक के अतिरिक्त अन्य कौन-सा अभिधान अधिक प्रभावपूर्ण एवं व्यञ्जनापूर्ण हो सकता था? इसमे जीवन की कठोरता के वास्तविक दर्शन होते है।

मृच्छकटिक घटना-चक्र की दृष्टि से अद्भुत है। इसकी कथावस्तु मे घटना-चक्र की गतिशीलता है। इसकी सफलता एवं प्रसिद्धि इसके घटना-चक्र की तीव्रता के ही कारण है। नाटककार ने पालक तथा आर्यक की राजनैतिक कथा को चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणयकथा के साथ बड़ी कुशलता से संयुक्त किया है। इसमे आर्यक की कथा प्रणय-कथा का अभिन्न अंग बन गई है और इसमे मृच्छकटिक की कार्यान्विति मे कोई बाधा नहीं पडती। अभिज्ञानशाकुन्तल की भाँति इसमे विवादपूर्ण प्रेम और मालती की भाँति गम्भीर आदर्श प्रेम नही है, अपितु एक नागरिक और गणिका के प्रेम का चित्रण है, जो पवित्र, गम्भीर और कोमल है। सामान्यतः उच्चवर्ग के नागरिक का गणिका के साथ प्रणय-सम्बन्ध चित्रित

---

१. जाद ! कारेहि सोवण्णसअडिअं।
(जात ! कारय सौवर्णशकटिकाम्)। षष्ठ अंक पृ० ३२१

करने में कोई उलझन नहीं थी किन्तु जिन पेचीदी परिस्थितियों में यह चित्रित हो सका है, वह वस्तुत स्तुत्य है। एक ओर सम्पन्न तथा समृद्ध गणिका वसन्तसेना है जो उच्चवर्ग के किन्तु निर्धन नागरिक चारुदत्त मे आसक्त है और दूसरी ओर राजा का श्यालक शकार है जो उसे चाहता है, जिसका विरोध करना एक दुस्साहसपूर्ण कार्य है। अत इस प्रकार की विषम परिस्थिति मे इस प्रेम का निर्वाह करना सरल नही कहा जा सकता। घटनाओं का वैविध्य और उसके साथ भावो का वैविध्य, जो यहाँ गुम्फित मिलता है, वह संस्कृत नाट्य-परम्परा के लिये नितान्त अनोखा है। घटनाएँ उत्सुकता एव विस्मय उत्पन्न करती हैं और हर्ष, आश्चर्य, करुणा, भय, हास्य आदि भाव रह-रह कर उत्थित और विलीन होते रहते हैं। वस्तुविन्यास के अनुपम वैशिष्ट्य से प्रभावित होकर डा० राइडर ने कहा है—'प्रहसन से विषाद तक, व्यंग्य के करुणा तक मृच्छकटिक की कहानी उस विशदता एवं व्यापकता के साथ सचरण करती है, जो सच्चे अर्थों मे शेक्सपियर की कला की प्रतिस्पर्धी है।'[1] वस्तुत मृच्छकटिक मे एक अपूर्व सम्मिश्रण है प्रहसन और विषाद का, व्यंग्य और करुणा का, काव्य और प्रतिभा का, दया, और मानवता का।

मृच्छकटिक के संवाद सरल तथा सक्षिप्त हैं। उनमें वाग्वैदग्ध्य तथा व्यंग्य का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त सवादों मे जो उत्फुल्लता तथा ताजगी प्राप्त होती है, वह संस्कृत के अन्य नाटककारों मे नहीं मिलती। ऐसे स्थल बहुत कम है जहाँ कथोपकथन नीरस बन गया है।

संस्कृत नाट्यसाहित्य मे मृच्छकटिक एक मात्र चरित्र-प्रधान प्रकरण है। मृच्छकटिक के चरित्र-चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर सामने आता है, वह केवल प्रतिनिधि मात्र नही है।[2] चारुदत्त निर्धन होते हुए भी उदार एव शालीन है, वह जाति से ब्राह्मण तथा कर्म से श्रेष्ठ व्यापारी है। ब्राह्मणत्व तथा पुरुषोचित व्यक्तित्व का उसमे अच्छा संयोग है। वह प्रणय-व्यापार मे स्वयं प्रवृत्त नही होता, उसमें चारित्रिक दृढता है। वसन्तसेना गणिकादारिका होते हुए भी अपने दृढ़ संकल्प के कारण चारुदत्त की वधू बनती है और प्रणय-देवता को भी मृत्यु के मुख से निकाल लेती है। चेट स्थावरक सीधा-सरल, ईमानदार तथा परलोक से डरने वाला सेवक है। वह एक निर्दोष व्यक्ति की प्राण-रक्षा के लिये ऊँची अट्टालिका से नीचे कूदकर अपने प्राणों की बाजी लगाने में संकोच नही करता है। मदनिका एक साधारण दासी है

1. "From farce to tragedy, from satire to pathos, runs the story, with a breadth truly Shakesperean".
2. "Each of the twenty-seven personafes who take part in the action bears a particular mark, a special trait which strongly characterizes him" Prof. Levi

किन्तु वह इतनी निष्ठाशील है कि अपने प्रणयी को क्रुद्ध करने तथा अपनी दासता में मुक्ति के एक मात्र अवसर को खो देने का खतरा मोल ले लेती है। शर्विलक ब्राह्मण होते हुए भी चोर है तथा वेश्या-दासी के प्रेम-पाश में फँसा है तथापि राजा पालक के विरुद्ध राजनीतिक क्रान्ति का नायक है। दोनों चाण्डाल जन्म से तथा आजीविका से चाण्डाल होते हुए भी धार्मिक प्रवृत्ति वाले हैं। मानव-जीवन के प्रति सम्मान की भावना रखते हैं और चारुदत्त से क्षमा-याचना करते हुए कहते हैं कि वे केवल अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। शकार दुष्ट, लम्पट, कामुक तथा दुर्विनीत है। विदूषक मैत्रेय केवल परम्परागत विदूषक नहीं है अपितु अपने मित्र तथा स्वामी के हित के लिये निरन्तर चिन्तित दिखाई देता है। शास्त्रीय परम्पराओं की परिधि को लाँघकर जीवन्त चरित्र की सृष्टि करना शूद्रक की नाटकीय प्रतिभा की विशेषता है। सजीव एवं स्पष्ट व्यक्तित्व से युक्त इतने विविध रूपों वाले संख्या में सत्ताईस पात्रों के चरित्र अन्य किसी संस्कृत-नाटक में उपलब्ध नहीं होते। डॉ० राइडर ने मृच्छकटिक के पात्रों को सार्वदेशिक कहा है।[1]

मृच्छकटिक का एक अन्य वैशिष्ट्य उसमें प्राप्त हास-परिहास की योजना है। हास्य-रस की अभिव्यञ्जना में मृच्छकटिक संस्कृत-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ प्रकरण कहा जा सकता है। विदूषक हास्य-योजना के लिये परम्परागत प्रतिनिधि है, इसी कारण उसके चारित्रिक गुण हासोत्पादक है। उसकी भीरुता परिहास का विषय बनती है। स्वादिष्ट भोजन की लोलुपता के कारण वह हँसी का पात्र बनता है। शकार का दम्भ तथा उसकी कायरता उसे परिहास का पात्र बनाते हैं। मैत्रेय का हास-परिहास बुद्धिमत्ता-पूर्ण तथा व्यंग्यपूर्ण होता है, शकार का हास हास्यास्पद तथा निष्ठुरतापूर्ण होता है। डॉ० राइडर ने शूद्रक के हास-परिहास के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए कहा है कि यह हास-परिहास भयानक से लेकर प्रहसन तक, व्यंग्यात्मक से लेकर विचित्र तक सम्पूर्ण भाव-क्षेत्र में परिव्याप्त है। इसकी तीव्रता तथा विविधता ऐसी है कि बड़े से बड़े पाश्चात्य सुखान्तकी नाट्यकारों के साथ शूद्रक की तुलना आसानी से की जा सकती है।[2]

अनेक रमणीय, स्मरणीय पद्यों तथा सूक्तियों से यह प्रकरण अलंकृत है। इन पद्यों में कहीं व्यावहारिक आदर्श हैं, कहीं जीवन के लिये शिक्षायें हैं और कहीं काव्य-सौंदर्य विद्यमान है। थोड़े से चुने हुए सुन्दर पदों के प्रयोग-द्वारा

---

1. Shudraka, alone in the long line of Indian dramatists has a cosmopolitan character.—*The Little Clay Cart* : Introduction
2. "(It) runs the whole gamut, from grim to farcical, from satirical to quaint. Its variety and keenness are such that king Sudraka need not fear a comparison with the greatest of occidental writers of comedies."

अभीष्ट को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में शूद्रक अत्यन्त कुशल है।

मृच्छकटिक की भाषा-शैली सरल एवं रोचक है। इसमें पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। विविध प्राकृत भाषाओं के सफल प्रयोग की दृष्टि से तो मृच्छकटिक अद्वितीय ही है। नाट्यशास्त्र में विभिन्न प्राकृतों के प्रयोग के लिये जो विधान दिया गया है,[1] उसको चरितार्थ करने के लिये शूद्रक ने प्राकृत-प्रयोग की अपनी योजना को कार्यान्वित किया है।

साहित्य समाज का दर्पण है। इस उक्ति के आधार पर मृच्छकटिक अपने युग का प्रतिबिम्ब है। उस समय वर्णव्यवस्था प्रचलित थी, चाण्डालों की गणना पंचम वर्ण के रूप में की जाती थी। वर्णोचित कार्यों में शिथिलता आने लगी थी। सवर्ण विवाह के साथ-साथ किसी विशेष स्थिति में असवर्ण विवाह भी होते थे। वेश्या और गणिका भी विवाह कर सकती थी।

द्यूतक्रीडा का प्रचार था। मद्यपान की भी प्रथा थी। दास-प्रथा प्रचलित थी। संगीत कला अत्यन्त उन्नतावस्था में थी। संगीत-कला के साथ-साथ अन्य कलाओं का भी पर्याप्त विकास हो चुका था।

नागरिक व्यवस्था सुन्दर थी। राजमार्ग थे किन्तु रात में सडकों पर अँधेरा रहता था। नगर-रक्षक के रूप में पहरेदार नियुक्त थे तथापि सडको पर गणिका, विट, चेट आदि घूमा करते थे। बैलगाड़ियो की प्रथा थी। घोडों तथा हाथियों को भी रखने का प्रचलन था।

समाज में आर्थिक विषमता थी, कुछ अत्यधिक धनी थे तो कुछ अत्यन्त निर्धन। देश की राजनीतिक दशा भी उस समय अव्यवस्थित थी। देश में कोई सार्वभौम सम्राट् नहीं था। देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। शासन-व्यवस्था शिथिल थी। न्याय-व्यवस्था अच्छी थी किन्तु न्यायाधीशों को स्वतन्त्रता नही थी। इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में लोक-जीवन, सभ्यता-संस्कृति तथा शासकीय व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

किसी रूपक की अभिनेयता के लिए आवश्यक है कि वह अनावश्यक रूप से अधिक विस्तृत न हो, कथोपकथन अधिक लम्बे न हो तथा दृश्यों का विभाजन रंगमंच के अनुकूल किया गया हो। इन दृष्टियों से मृच्छकटिक पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मृच्छकटिक की कथावस्तु अत्यन्त विस्तृत है। इसका अभिनय एक बैठक में नहीं किया जा सकता।

कथावस्तु में गतिशीलता का वैशिष्ट्य है, किन्तु इसे पूर्णतया संश्लिष्ट नहीं माना जा सकता। प्रथम अंक के अन्त में चारुदत्त वसन्तसेना को उसके घर पहुँचाने जाता है। इतनी लम्बी पदयात्रा बिना किसी सम्भाषण के रंगमंच पर नहीं दिखाई जा सकती। द्वितीय अंक में संवाहक भिक्षु होने का निश्चय करके जैसे

1. नाट्यशास्त्र (चौखम्बा) १८/३५-४८

ही वसन्तसेना के घर से बाहर निकलता है, वैसे ही कर्णपूरक द्वारा भिक्षु-वेष मे उसकी रक्षा की जाती है। चतुर्थ अंक मे विदूषक द्वारा वसन्तसेना के भव्य प्रासाद के अष्ट प्रकोष्ठो का विस्तृत विवरण किया गया है। पञ्चम अंक का वर्षा-वर्णन भी अत्यन्त विस्तृत है। अष्टम अंक के अन्त मे शकार यह कहकर उद्यान से बाहर निकलता कि न्यायालय मे जाकर अभी व्यवहार लिखवाता हूँ[1] किन्तु न्यायालय मे दूसरे दिन जाता है। नवम अंक में न्यायाधीशों के पुन. पुनः पूछने पर भी चारुदत्त गणिका के साथ अपने प्रणय-सम्बन्ध के विषय मे मौन क्यो रहता है ? इस प्रकार के यत्किञ्चित दोषो से कथावस्तु की सुश्लिष्टता पर अपघात होता है।

मृच्छकटिक मे दृश्यो का समुचित विभाजन नही है, प्रत्येक अंक मे अनेक दृश्य हैं। एक ही समय मे कई दृश्यो की योजना की गई है। यथा प्रथम अक मे चारुदत्त के घर का दृश्य और राजमार्ग पर वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार का दृश्य। एक ही समय मे दोनो दृश्य रंगमच पर कैसे दिखलाये जा सकते है ?

उपर्युक्त आक्षेपो के विरोध में यह कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक की कथा अत्यन्त रोचक तथा आकर्षक है। इसमे क्रिया-व्यापार मे गतिशीलता है, यह अभिनय की दृष्टि से आवश्यक तथ्य है। जहाँ तक कथावस्तु के विस्तृत होने की बात है, कुछ अंशो को छोड़ा जा सकता है। दृश्य-विभाजन का क्रम अभिनय के अनुकूल बनाया जा सकता है। विशाल रंगमच पर एक साथ कई दृश्यों के दिखलाये जाने की भी व्यवस्था की जा सकती है। इसकी भाषा रङ्गमच के उपयुक्त है तथा सवाद अभिनेयता के सर्वथा अनुकूल हैं।

मृच्छकटिक मे तात्कालिक समाज, शासन तथा भाग्य के अनियंत्रित चक्रो की कथा निबद्ध की गई है, इसी को दृष्टि मे रखते हुए इसका वस्तु-विधान प्रभावशाली है। मृच्छकटिक के सम्बन्ध मे यह सोचना कि एक बैठक मे इसका अभिनय सम्भव नहीं हो सकता, अतः काट-छाँट किया जावे अथवा दो अभिनयों में इसे प्रस्तुत किया जाये, विचारणीय है। श्री हेनरी डब्ल्यू वेल्स ने ऐसा करने का विरोध किया है।[2]

---

१. सम्पद अधिअलणं गच्छिअ ववहालं लिहाविमि।
संस्कृतछाया—साम्प्रतमधिकरणं गत्वा व्यवहारं लेखयामि।
अष्टम अंक, पृ० ४४२–४४३

2 The whole is very much of a piece and far more than the some of its constituent parts. Althongh part one, than many conceivably be given without part two, the latter can not be given without part one. Effects are to a remarkable degree accumulative The relation is not more than of a pedestal to its statue, it is that of a growing organism from the trunk spring the many branches with their surprisingly abundant foliage — Henry W. Wells : *The Classical Drama of India* p. 133

डॉ० राइडर ने भी यही कहा है कि प्रकरण में से किसी दृश्य को छोड़ा नहीं जा सकता ।[1]

मृच्छकटिक प्रकरण की वस्तु-विन्यास-कला अपने ढंग की निराली है। इसकी वास्तविकता को समझने के लिये भीतर से बाहर जाने की अपेक्षा बाहर से भीतर आना पड़ता है। असम्बद्ध प्रतीत होने वाली घटनाओं के माध्यम से हमें उस स्थल पर पहुँचना पड़ता है, जहाँ वे घटनाएँ मूल से सम्बद्ध दिखाई देती हैं।[2]

सत्यमेव जयते नानृतम् तथा अनियंत्रित भाग्य चक्र सिद्धांतों के आधार पर मृच्छकटिक में वस्तु-विन्यास तथा कला-संयोजन के औचित्य पर दृष्टिपात करना असंगत न होगा। प्रथम अंक का प्रथम दृश्य चारुदत्त की गृहदेवों की पूजा तथा सन्ध्योपासना का है और दूसरा वसन्तसेना का शकार और उसके अनुचरों द्वारा पीछा किये जाने का है। आरम्भ में ऐसा लगता है कि अंधेरे में नगर की गलियों में वसन्तसेना अपना अनुगमन करने वाले शकार और उसके अनुचरों द्वारा पकड़ ली जायेगी किन्तु संयोग से वह चारुदत्त के घर में प्रविष्ट हो जाती है, जब मैत्रेय रदनिका के साथ मातृदेवियों की बलि चढ़ाने हेतु जाने के लिये दरवाजा खोलता है। वहाँ उसे चारुदत्त का साक्षात्कार भी होता है। जुआरियों वाले दृश्य में भी संवाहक संयोगवश ही वसन्तसेना के घर में प्रविष्ट हो जाता है और सभिक माथुर के अत्याचार से मुक्ति पा लेता है। आर्यक बन्दीगृह की दीवारों को तोड़कर भागते हुए चारुदत्त के घर के सामने स्थित उसकी गाड़ी में चढ़कर वसन्तसेना के स्थान पर स्वयं जीर्णोद्यान पहुँच जाता है और वहाँ चारुदत्त से से अभयदान प्राप्त कर सुरक्षित स्थल की ओर चला जाता है और वसन्तसेना दुर्भाग्यवश प्रवहण-विपर्यय के कारण शकार की गाड़ी में उसके पास पहुँच जाती है। इस प्रकार प्रवहण-विपर्यय की सारी घटना भी संयोग पर निर्भर है। न्यायालय का पूर्ण प्रकरण भी आकस्मिक परिस्थितियों पर ही निर्भर है। वीरक अचानक न्याय-मण्डप में पहुँचता है और चन्दनक के विरुद्ध आरोप लगाता है, इसके साथ ही वह चारुदत्त की गाड़ी में रमणार्थ जीर्णोद्यान जाने वाली वसन्तसेना की बात भी बताता है। अधिकरणिक वीरक को न्यायालय के द्वार पर स्थित अश्व पर चढ़कर पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में जाकर यह देखकर आने का आदेश देते हैं कि

---

1 In the Little clay cart at any rate we could ill-afford to spare a single scene.—Dr. A. W. Ryder—*The Little Clay Cart* (Introduction).

2. To use an arborial metaphor, the eye of an audience is led to realise the construction of the tree not by proceeding from the stem outwards but by proceeding from the tip of the branches inwards.—Henry W. Wells : *The Classical Drama of India*, p. 151

वहाँ कोई स्त्री मरी हुई पड़ी है या नहीं ? वीरक ने वहाँ जाकर और लौटकर मृतक स्त्री की सूचना दी। वृक्ष के नीचे किसी स्त्री का श्वापदों से खाया जाता हुआ शरीर भी केवल संयोग है।[1] न्याय-मंडप में नियति का अद्भुत चमत्कार उस समय देखने को मिलता है जब मैत्रेय विदूषक, स्वर्णाभूषणों की पिटारी बगल में दबाये हुए न्याय-मंडप में पहुँच जाता है और शकार के साथ संघर्ष करते हुए वह पिटारी जिसके वर भूमि पर गिर पड़ती है, जिससे यह प्रमाणित हो जाता है कि चारुदत्त ने ही वसन्तसेना की हत्या की है। हत्या के इस जघन्य अपराध के कारण चारुदत्त को प्राणदण्ड का आदेश दिया जाता है। इस अन्यायपूर्ण शासना-देश से न केवल नागरिक दुःखी होते हैं अपितु न्यायाधीश भी अपनी सारी सद्भावनाओं के होते हुए भी परिस्थितिजन्य प्रमाणों के कारण चारुदत्त को मृत्यु-दण्ड से बचा सकने में असमर्थ अनुभव करते हैं।[2] किन्तु नियति की सबलता एवं प्रबलता के कारण सारा दृश्य ही परिवर्तित हो जाता है जब संवाहक बौद्धभिक्षु वसन्तसेना के साथ अकस्मात् वहाँ पहुँच जाता है। यह भी संयोग ही था कि वसन्तसेना के कंठपीडन के बाद शकार उसकी मृत्यु निश्चित समझ लेता है और इसी कारण उस की पुष्टि की आवश्यकता नहीं समझता। चाण्डाल के हाथ से तलवार अचानक गिर जाती है और बौद्धभिक्षु (संवाहक) वसन्तसेना को लेकर वध्यस्थल पर पहुँच जाता है। चारुदत्त वध्यस्थल से नीचे उतर आता है और वसन्तसेना से कहता है कि तुम्हारे कारण मृत्यु-मुख में जाता हुआ यह शरीर तुम्हारे द्वारा ही रक्षित किया गया है। अहो ! प्रियजन के सम्मिलन का कैसा प्रभाव है ! अन्यथा मरा हुआ भी क्या कोई जीवित हो सकता है ?[3] प्रियतमा की प्राप्ति के अवसर पर विवाह के समय जिस प्रकार वर की सजावट होती है, उसी प्रकार यह लाल वर-वस्त्र और माला है और ये वध के समय की नगाड़ो

---

१. गदो म्हि तहिं, दिट्ठं च मए इत्थिआकलेवरं सावदेहिं विलुप्पन्तं। (गतोऽस्मि तस्मिन्, दृष्टञ्च मया स्त्रीकलेवरं श्वापदैर्विलुप्यमानम्)। कधं तुए जाणिद इत्थिआकलेवर त्ति ? [कथं त्वया ज्ञातं स्त्रीकलेवरमिति]।
वीरक—सावसेसेहिं केस-हत्थ-पाणि-पादेहिं उवलक्खिद मए।
—[सावशेषैः केश-हस्त-पाणि-पादैरुपलक्षितं मया।]
नवम अंक, पृ० ४६४

२. अहो धिग् वैषम्यं लोकव्यवहारस्य।
यत्रापीदं निपुणं विचार्यते तथा तथा सङ्कटमेव दृश्यते।
अहो सुमन्ना व्यवहारनीतयो मतिस्तु गौः पङ्कगतेव सीदति॥ ९/२५

३. त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमानं देहं त्वयैव प्रतिमोचितं मे।
अहो प्रभाव प्रियसंगमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत ?॥ १०/४३

की ध्वनियाँ विवाह के समय के बाजों की ध्वनियों के समान हो गई हैं।[1]

चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रणय-सम्बन्ध के विकास में आई जटिल समस्याओं का निराकरण करके अन्तिम सफलता जिस रूप में प्रकरण में प्रदर्शित की गई है, उसको देखते हुए यह कहना युक्ति-युक्त होगा कि इसमें स्थान, समय तथा कार्य-अन्वितियों का अनुपालन समुचित रूप में हुआ है। मृच्छकटिक के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें शास्त्रीय मान-मर्यादा का अधिकांश में पालन किया गया है। अनेक विषम परिस्थितियों के बावजूद नायक-नायिका का अन्तिम सुखद मिलन चित्रित किया गया है।

मृच्छकटिक संस्कृत साहित्य का अकेला यथार्थवादी प्रकरण है। यह अपनी शैली का अकेला प्रकरण है। कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल और भवभूति के उत्तररामचरित में काव्य और भावना का सुन्दर वातावरण मिलता है किन्तु कठोर जीवन की वास्तविकता देखने को नहीं मिलती। इसके विपरीत मृच्छकटिक में जीवन की पग-पग की कठिनाइयों के साथ काव्य और भावना का उदात्त वातावरण भी दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु इसमें चरित्र-वैविध्य के साथ पात्रों की भी अधिकता है। अन्य संस्कृत नाटकों की तरह इसके पात्र प्रतिनिधि पात्र नहीं हैं, अपितु पृथक्-पृथक् अस्तित्व रखते हैं। शास्त्रीय एवं काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह प्रकरण उच्च कोटि का है। इसका प्रणय-चित्रण भी कुछ अपूर्व है। यह अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रदर्शित दुष्यन्त तथा लोकोत्तर-सुन्दरी प्रकृति-पोषिता शकुन्तला के विलासपूर्ण प्रेम जैसा नहीं है और न उत्तर-रामचरित में वर्णित राम और सीता के गम्भीर आदर्श प्रेम की भाँति है। यह तो एक सम्भ्रान्त नागरिक और वेश्या के प्रणय की कथा है जिसे प्रकरण-शैली के रूप में निबद्ध किया गया है। इसकी अन्यतम विशेषता यह भी है कि प्रणय-कथा के साथ राजनीतिक षड्यन्त्र भी सम्मिलित है। मृच्छकटिक में षड्यन्त्र और विप्लव तथा सरलता और कुटिलता का अद्भुत संयोग है। नाटक का नाम सामान्यतः नायक-नायिका के नाम पर रखा जाता है किन्तु मृच्छकटिक का नाम एक ऐसे केन्द्र बिन्दु पर आधारित है, जहाँ बालक के बालस्वभाव-सुलभता का मनोवैज्ञानिक चित्रण है और साथ ही गणिका वसन्तसेना की उदारता तथा प्रत्ये-[illegible] का परिचायक भी है जिसने बालक की सुवर्ण-शकटिका के लिए सोने के आभूषण दिये। इस प्रकार प्रकरण के मृच्छकटिक नामकरण की सार्थकता स्पष्ट है। समस्त प्रकरण सामान्य से विशेष की ओर बढ़ने वाली प्रवृत्ति से ओत-प्रोत है। इसकी भाषा-शैली सरल एवं मनोज्ञ है। संस्कृत-साहित्य में ऐसा कोई

---

१. रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः। १०/४४

नाटक नही है जिसमें सभी प्रकार की प्राकृतभाषाओं का प्रयोग किया गया हो। इस दृष्टि से भी मृच्छकटिक अद्भुत रचना है क्योंकि इसमें सभी प्राकृत भाषाओं का प्रयोग उपलब्ध होता है। .

मृच्छकटिक में यद्यपि कालिदास जैसा सुकुमारसौंदर्य, भवभूति जैसा भावों का वैभव, बाण जैसा कल्पना-लालित्य का अभाव कुछ अवश्य है, किन्तु वास्तव में समाज की डगमगाती नींव की ओर जहाँ कलाकारों का ध्यान नही जा सका, वहाँ मृच्छकटिककार की प्रतिभा ने अद्वितीय एवं अद्भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है। डॉ० रमाशंकर तिवारी का कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि शूद्रक अपने संसार का एकमात्र स्वामी है और वहाँ कालिदास अथवा भवभूति द्वितीय श्रेणी के नागरिक (Second class citizans) समझे जायेंगे।[1] शूद्रक को सौंदर्य तथा प्रेम के मादक चित्र अंकित करने की फुर्सत ही नही थी, शायद उसकी दृष्टि उधर गई ही नही। प्रेम को फांसी के तख्ते पर तथा सौंदर्य को मृत्यु के मुख में ले आना और तब उनकी दूसरी परिभाषा करना उसका अभीष्ट था। अतएव न तो भावों की सुकुमारता का और न शिल्प के सौंदर्य का मनन करने के लिए *उसके पास अवकाश अथवा धैर्य था। कालिदास की सौंदर्य-समाधि*[2] शूद्रक लगा ही नही सकता था। सुतरां, प्रेम तथा सौंदर्य के नयनाभिराम एवं हृदयावर्जक चित्रों की प्रदर्शनी सजाने में वह असमर्थ रहा। शूद्रक जहाँ महान् है वहाँ संस्कृत का कोई कवि अथवा नाटककार पहुँच ही नही सका है।[3]

संस्कृत के अन्य नाटककार समाज के जिस चित्र को प्रतिबिम्बित नही कर सके और दूसरी बातों में ही उलझे रहे, वहाँ शूद्रक ने यह सिद्ध कर दिखाया कि कला कला के लिये नही, वरन् कला जीवन के लिये है। डॉ० रमाशंकर तिवारी का कथन उचित है कि "सच्चाई यह है कि शूद्रक की प्रतिभा की जाति ही दूसरी है, उसका उपादानकारण ही भिन्न है। जीवन के जिस क्षितिज पर बैठकर, वह उसके चित्रपट का अवलोकन करता है, वहाँ से वह कालिदास अथवा भवभूति के सौंदर्य-संसार की रमणीय छवियों के दर्शन कर ही नही सकता और यह उतना ही सही है कि उसकी प्रतिभा ने जीवन के रंगमंच पर से जिन पर्दों को हटाया है, वे कालिदास तथा भवभूति के लिये एकदम अकल्पनीय हैं।[4]

शूद्रक ने इस मिट्टी की गाड़ी (मृच्छकटिक) के माध्यम से अपनी साहित्य-वधू को कैसे सजाया और संवारा है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण चारुदत्त की उक्ति से प्राप्त होता है—'हमारे चरित्र में वसन्तसेना की हत्या का जो कलंक लगा था,

१. डॉ० रमाशंकर तिवारी : महाकवि शूद्रक, पृ० ४०२

२. चित्र-गतायामस्या कान्तिविसंवादशंकि मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिल-समाधि मन्ये येनेयमालिखिता॥ मालविकाग्निमित्र २/२

३. डॉ० रमाशंकर तिवारी—महाकवि शूद्रक, पृ० ४०२-४०३

४. वही, पृ० ४०२

वह मिट गया। मेरे चरणों में गिरा हुआ यह शत्रु (शकार) भी मारे जाने से बच गया। शत्रुओं का उच्छेद कर, प्रिय मित्र आर्यक पृथ्वी का शासन कर रहा है। यह प्रिया वसन्तसेना मुझे पुनः प्राप्त हो गई है। परम प्रिय सुहृद् आर्यक से मिले हुए आप (शर्विलक) मेरे मित्र हो गये हैं। अब इससे अधिक और क्या प्राकाम्य वस्तु हो सकती है, जिसे मांगा जाए।[1]

मौत के मुख से सौभाग्यवशात् खिचने वाले चारुदत्त की यह वाणी है जिसने असाधारण उदारता के कारण दानव शकार को क्षमा कर दिया है। समस्त आपदाओं का बवंडर शान्त हो गया है, कटुता और शत्रुता स्नेह एवं सद्भाव के उद्दाम प्रवाह में लुप्त हो गई है। प्रियतम-प्रियतमा का अभीष्ट संगम हो गया है, मित्र-मित्र मिल गये हैं। इस प्रकार मृच्छकटिक के अनुपम कथानक में मानव-जीवन का वास्तविक चित्र, वर्ग की परिधि को भंग करके प्रस्तुत है। इसमें मानव को नहीं अपितु मानवता को गौरवपद प्रदान किया गया है। आंग्ल कवि मिल्टन के शब्दों में—शूद्रक की कला 'अनेक भूलभुलैयों में से संचरण करती हुई तथा विभिन्न बंधनों को खोलती और सुलझाती हुई, जीवन-संगीत का स्निग्ध-शान्त उद्घोष कर रही है।'[2]

संक्षेप में मृच्छकटिक संस्कृत-साहित्य का एक अनूठा रूपक-प्रबन्ध है। भारत के ही नहीं पश्चिम के समालोचकों ने भी इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[3] कालिदास की सी उदात्तता के अभाव में भी मृच्छकटिक में अनूठी रोचकता

---

१. लब्धा चारित्रशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्त
प्रोत्खातारातिमूल. प्रियसुहृदचलामार्यक. शास्ति राजा।
प्राप्ता भूय प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान्सङ्गतो मे वयस्यो
लभ्यं किं चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम्॥ १०/५८

2. The melting voice through mazes running
Untwisting all the chains that tie
The hidden soul of harmony .....". (*L' Allegro*)

3. (a) The plot of the little clay cart rejoices in bringing in direction *to a goal criss-crossing the incidents with the utmost caprice.*—
Henry W. Wells—*The Classical Drama of India*, p 154.

(b) The drama Mrichhakatika is of extraordinary value in respect of cultural history, above all for our knowledge of the ways of harlots and that of their social status in ancient India.
—*A History of Indian Literature*, Vol III, part I—M. Winternitz p. 231.

(c) The drama is very much instructive also for a knowledge of relationship existing between the different castes and for that of religious practices, p. 232 (Continued on next page)

एवं मनोज्ञता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। यदि संस्कृत में नाटकों का अपना वैशिष्ट्य है[1] तो मृच्छकटिक से संस्कृत का वैशिष्ट्य है—यह कहना अयुक्तिसंगत न होगा। परम्परा का विद्रोही शूद्रक मूलतः भारतीय संस्कृति की प्राणधारा मानवता के साथ एकतान गान्धर्व का गान करता हुआ जिस यथार्थवादी बिन्दु-स्थल पर महान् है, वहाँ संस्कृत का कोई नाटककार नहीं पहुँच सका है। मृच्छकटिक रूपक का अभिनय विश्व के अनेक राष्ट्रों में हुआ है। साम्यवादी देशों में तो इसे विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इसका एकमात्र कारण यह है कि इसमें यथार्थ-वादी मनोवृत्ति तथा समाज के पिछड़े हुए शोषित वर्ग का सहानुभूतिपूर्ण विशद चित्रण है।

(Continued from last page)

(d) The real Indian character of the Drama reveals itself in the demand for conventional happy ending which shows us every person in a condition of happiness with the solitary exception of the evil king.—Prof. A. B. Keith—*The Sanskrit Drama*, p. 140.

१. काव्येषु नाटकं रम्यम्।

मृच्छकटिक-प्रकरण के विषय में कतिपय विद्वानों के समीक्षात्मक विचार

1. (It) runs the whole gamut, from grim to farcical, from satirical to quaint. Its variety and keenness are such that king Shudraka need not fear a comparison with the greatest of occidental writers of commedies.

From farce to tragedy, from satire to pathos, runs the story, with a breadth truly Shakespearen

—Dr. Arthur William Ryder—*The Little Clay Cart* : Introduction.

2. Though composite in origin and in no sense a transcript from life, the merits of the Mrichhakatika are great and most amply justify what else would have been an inexcusable plagiarism.

—Prof A B Keith : *The Sanskrit Drama*, p 134

३ मृच्छकटिक अपने पूर्ण रूप में एक ऐसा रूपक है, जो भारतीय विचार-धारा और जीवन में ओत-प्रोत है।··· ·· ··इस रूपक के पात्रों की विवधता निर्विवाद रूप से प्रशंसनीय है, परन्तु उसका आंशिक श्रेय भास को है, उनके उत्तरवर्ती (शूद्रक) को नहीं। ··· ·· ··कथावस्तु की विविधता भास में पूर्व भासित है, किन्तु रूपक के विकास का श्रेय शूद्रक को है।

—प्रो० ए० बी० कीथ—संस्कृत ड्रामा, हिन्दी अनुवाद, पृ० १३८

4. The Plot of the Littl clay cart rejoices in bringing in direction to a goal criss-crossing the incidents with the utmost caprice.

—Henry W. Wells · *The Classical Drama of India*, p. 154

5. On the contrary in Europe, the drama has enjoyed high grade of popularity and has been always held in esteem. The work fully merits this honour. It deviates from the model more than any other Indian drama and it has been fashioned wholly on actual life. The characters are presented in a lively manner.

—M. Winternitz : *A History of Indian Literature*, Vol. III Part I p. 226.

6. The drama of Mrichhakatika is of extraordinary in respect of cultural history, above all for our knowledge of the ways of harlots and that of their social status in ancient India (p. 231)

The drma is very much instructive also for a knowledge of relationship existing between the different castes and for that of religious practices (p. 232)

—M Winternitz : *A History of Indan Literature*, Vol. III part I

7. Whatever may have been the date and whoever may have been the author, there can be no doubt that the Mrichhkatika is one of the few Sanskrit dramas in which the dramatist departs from the beaten track and attempts to envisage directly a wider, fuller and deeper life.

The drama is also singular in conceiving a large number of interesting characters, drawn from all grades of society from the high souled Brahman to the sneaking thief. They are presented not as types but as individuals of diversified interest and it includes in its broad scope, farce and tragedy, satire and pathos, poetry and wisdom, kindlines and humanity.

—S N, Dass Goupta & S K. De. *History of Sanskrit Literature : Classical Period*, Vol. I, Chap. Sanskrit Drama.

८. संस्कृत रूपकों में पात्र प्रायः प्रतिनिधि होते हैं किन्तु मृच्छकटिक के पात्र व्यक्ति(Individuals) हैं। प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर सामने आता है। (पृ० २८९-९०)

मृच्छकटिक अपने ढंग का अकेला नाटक है, जिसमें एक साथ प्रणय-कथात्मक प्रकरण, धूर्तसकुल भाण तथा राजनीतिक नाटक का वातावरण दिखाई देता है। यही अकेला ऐसा नाटक है जो उस काल के मध्यवर्ग की सामाजिक स्थिति को पूर्णतः प्रतिबिम्बित करता है। (पृ० २७८)

—डॉ० भोलाशंकर व्यास : संस्कृत कविदर्शन

९. कवि ने सुवर्ण को समझा और मृत्तिका को परखा, तो बरबस नाम बना मृच्छकटिक। सचमुच मृच्छकटिक की मिट्टी की पहचान कितनों को है? है न अद्‌भुत यह संविधान। मृच्छकटिक और कुछ नहीं इसी सुवर्ण की लीला है। इसी स्वर्ण को खोकर गणिका वन्द्य बनती है और इसी सुवर्ण के अभाव में वन्द्य चारुदत्त पापी। स्मरण रहे यह वह नाटक है जो सोने पर नहीं शील पर चलता है और इसी से अपना अलग चरित भी बना जाता है।

—श्री चन्द्रबली पाण्डेय : शूद्रक में वर्णित विचार, पृ० ६६–६७

१०. उनके पात्र दिन-प्रतिदिन हमारे सड़कों और गलियों में चलने-फिरने वाले रक्तमांस से निर्मित पात्र हैं, जिनके काम को जांचने के लिये न तो कल्पना को दौड़ाना पड़ता है और न उनके भावों को समझने के लिये मन की दौड़ की जरूरत होती है········ आख्यान तथा वातावरण की इस यथार्थवादिता और नैसर्गिकता के कारण ही मृच्छकटिक पाश्चात्य आलोचकों की विपुल-प्रशंसा का भाजन बना। डॉ० कीथ भले ही इन्हें पूरे भारतीय होने की राय दें परन्तु पात्रों के चरित्र में कुछ ऐसा जादू है कि वह दर्शकों के सिर पर चढ़कर बोलता है।

तात्पर्य यह है कि शूद्रक के मध्यम तथा प्रथम श्रेणी के रोचक पात्र हैं, जिनका इतना सुन्दर चित्रण संस्कृत के रूपकों मे फिर नही हो सका। शूद्रक की नाट्य-कला वस्तुतः श्लाघनीय तथा स्पृहणीय है।

—डॉ० बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५५२

११. इस नाटक का नाम मृच्छकटिक अर्थात् मिट्टी की गाड़ी है। नायक है चारुदत्त, नायिका है वसन्तसेना, फिर नाम मिट्टी की गाड़ी क्यों रखा गया? पूरी कथा में मिट्टी की गाडी का नाम छठे अक में आता है और मामूली सी बात लगती है। परन्तु वास्तव में यह बात नही है। मिट्टी की गाड़ी ही कथा को बदलती है। न मिट्टी की गाडी की बात आती, न वसन्तसेना सुवर्ण-शकटिका बनवाने के लिये अपने आभूषण देती, न मौके पर न्यायालय मे विदूषक की कोख में दबे गहने नीचे गिरते और न चारुदत्त का अपराध प्रमाणित होता। फिर आर्यक-कथा का इससे क्या सम्बन्ध हो सकता है?

देखा जाए, तो सारा प्रकरण ही गाडियो की कहानी है। आर्यक भी गाडी से ही बच पाता हैं। मानो लेखक कहता है कि जीवन मे कोई गाडी ठीक जगह पहुँचती है, कोई गलत जगह, सब कुछ भाग्य का खेल है। इसीलिये लेखक कहता है कि वास्तव में जीवन मिट्टी की गाडी मे ही चलता है। उसका और कोई वाहन नहीं। आदमी सोने की गाडी के लिये मचलता है परन्तु खेल दिखलाती है मिट्टी की गाडी ही। नाटक मे भाग्य का हाथ काफी है और विशेष बात यह है कि पाप-पुण्य का आधार मनुष्य का लोक-परलोक का तीव्र विश्वास हैं। उस समय वर्णों की विषमता समझने का यह भारतीय प्रयत्न था कि क्यों कोई धनी और क्यो कोई दरिद्र होता है। स्थावरक कहता है कि वह भाग्य के कारण दास है और दास वह पूर्व जन्म के पापों के कारण बना है। अच्छे कर्म करने से इस जन्म मे राजा का साला संस्थानक इतनी ऊँची जगह जन्म लेता है, पर वह अविचारी है। चारुदत्त परलोक से डरता है, क्योंकि वह अच्छा आदमी है। वास्तव में परलोक का भय उस युग मे उच्चवर्ग की निरंकुशता को रोकने के लिए था।······दैव ही यहाँ खेल रहा है। यह खेल गाड़ियों के बदल जाने से है। कवि स्पष्ट कहता है जब वृद्ध विट कह उठता है कि राजा के साले की जगह स्थावरक को होना चाहिए था। लेखक ने अपने युग के समाज पर तीखा प्रहार किया है। गणिका मे कुलवधू के गुण हैं, न केवल वसन्तसेना मे बल्कि मदनिका मे भी। इसीलिये नाटक का नाम बहुत उचित रखा गया है।

यह नाटक संस्कृत साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखता है। गणिका का प्रेम है। विशुद्ध धन के लिये नही, क्योंकि वसन्तसेना दरिद्र चारुदत्त से प्रेम करती है। गणिका कलायें जानने वाली थी। ऊँचे दर्जे की वेश्यायें होती थीं, जिनका समाज में आदर होता था। ग्रीक लोगों में ऐसी ही हितयरा हुआ करती थीं। गणिका गृहस्थी और प्रेम की अधिकारिणी बनती है, वधू बनती है और

कवि उसका समाज के सामान्य पुरुष ब्राह्मण चारुदत्त से विवाह कराता है, रखैल नही बनाता। स्त्री-विद्रोह के प्रति कवि की सहानुभूति है। पाँचवें अंक में ही चारुदत्त और वसन्तसेना मिल जाते हैं, परन्तु लेखक का उद्देश्य पूरा नही होता। वह दशवें अंक तक कथा बढ़ाकर राजा की सम्पत्ति दिलवाकर प्रेमभाव नही विवाह कराता है। वसन्तसेना अन्त:पुर में पहुँचना चाहती है। लेखक ने इरादतन यह नतीजा अपने सामने रखा है।

इस नाटक मे कचहरी मे होने वाले पाप और राजकाज की पोल का बड़ा यथार्थवादी चित्रण है, जनता के विद्रोह की कथा है। इस नाटक का नायक राजा नही है, व्यापारी है, जो व्यापारी वर्ग के उत्थान का प्रतीक है। ये इसकी विशेषताएँ हैं। राजनीतिक विशेषता यह है कि इसमें क्षत्रिय राजा बुरा बताया गया है। गोपपुत्र आर्यक एक ग्वाला है जिसे कवि राजा बनाता है। यद्यपि कवि वर्णाश्रम को मानता है, पर वह गोप को ही राजा बनाता है।

—डॉ० रांगेय राघव : मृच्छकटिक अथवा मिट्टी की गाड़ी : भूमिका

परिशिष्ट २

मृच्छकटिक में प्रयुक्त सुभाषितावली

प्रथम अङ्क

१. शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्।
मूर्खस्य दिशः शून्याः, सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ॥ १/८
२. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात् यो याति नरो दरिद्रताम्, धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥ १/
३. अपक्नेयं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥ १/११
४. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति। १/१३
५. अहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम् ॥ १/१४
६. गुणः खलु अनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः।[१] [गद्य, प्रथम अंक, पृ
७ रत्नं रत्नेन सङ्गच्छते। [गद्य, प्रथम अंक, पृ० ५३]
८ मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम्। १/३७
९. चारित्र्येण विहीन आढ्योऽपि च दुर्गतो भवति।[२] १/४३
१०. यदा तु भाग्यक्षयपीडिता दशा नरः कृतान्तोपहिता प्रपद्यते।
तदाऽस्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रता चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जन. ॥ १/५३
११. न युक्तं परकलत्रदर्शनम्। [गद्य, पृ० ८४]

१. गुणो क्खु अणुराअस्स कारणं, ण उण बलक्कारो।
मृच्छकटिक, प्रथम अंक पृ० ५२
२. चारित्तेण विहीणो अड्ढो विअ दुग्गदो होइ। वही, १/४३

१२. पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु ।[1] [गद्य, पृ० ८६]

द्वितीय अङ्क

१. दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवचनीया भवति ।[2]

गद्य, द्वितीय अंक, पृ० ६६

२. द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनं राज्यम् । गद्य, द्वितीय अंक, पृ० ११३

३. य आत्मबलं ज्ञात्वा भारं तुलितं वहति मनुष्यः ।
तस्य स्खलनं न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते ॥ २/१४

४. सत्कार धन खलु सज्जनः कस्य न भवति चलाचलं धनम् । २/१५

तृतीय अंक

१. सुजनः खलु भृत्यानुकम्पक स्वामी निर्धनकोऽपि शोभते ।
पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्कर खलु परिणामदारुण । ३/१

२. योऽपि स्वाभाविकदोषो न शक्यो वारयितुम् ॥ ३/२

३. स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः ॥ ३/११

४. अनतिक्रमणीया भगवती गोकाम्या ब्राह्मणकाम्या च ॥

गद्य, तृतीय अंक पृ० १६८

५. शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ॥ ३/२४

६. आत्मभाग्यक्षतद्रव्य. स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः ।
अर्थतः पुरुषो नारी, या नारी सार्थतः पुमान् ॥ ३/२७

चतुर्थ अंक

१. सखीजनचित्तानुवर्ती अबलाजनो भवति ।[3] गद्य, चतुर्थ अंक, पृ० १६२

२. स्वदोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः । ४/२

३. साहसे श्रीः प्रतिवसति । [गद्य, चतुर्थ अंक, पृ० २०१]

४. इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमा ।
निष्फलत्वमन यान्ति वेश्याविहगभक्षिता. ॥ ४/१०

५. भयञ्च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः ।
नराणा यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ ४/११

६. अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति ।
श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्या परिसर्पणानि ॥ ४/१२

७ स्त्रीषु न राग कार्यो रक्त पुरुष स्त्रियः परिभवन्ति ।
रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या ॥ ४/१३

---

१. पुरुसेसु णासा णिक्खिविअन्ति, ण उण गेहेसु । वही, प्रथम अंक, पृ० ८६

२. दलिद्दपुरिससङ्कन्तमणा क्खु गणिआ लोए अवअणीआ भोदि ।

वही, द्वितीय अंक, पृ० ६६

३. सहीजणचित्ताणुवत्ती अबलाजणो भोदि । चतुर्थ अंक, पृ० १६२

८. एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतोः विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति ।
   तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ॥ ४/१४
९. समुद्रवीचीव चलस्वभावा सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः ।
   स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति ॥ ४/१५
१०. न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति ।
   यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुच्यस्तथाऽङ्गनाः ॥ ४/१७
११. न चन्द्रादातपो भवति ।[1] गद्य, चतुर्थ अंक, पृ० २१५
१२. निशाया नष्टचन्द्राया दुर्लभो मार्गदर्शकः । ४/२१
१३. गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्न पुरुषैः सदा ।
   गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः ॥ ४/२२
१४. गुणेषु यत्न पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् । ४/२३
१५. द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च । ४/२५

पंचम अंक

१. अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी अवञ्चको वणिक् अचौरः सुवर्णकारः अकलहो ग्रामससागम, अलुब्धा गणिका इति दुष्करमेते सम्भाव्यन्ते ।[2]
   गद्य, पंचम अंक, पृ० २६१
२ सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चला. स्वभावा:
   खिन्नास्ते हृदयमेव पुनर्विशन्ति ॥ ५/८
३. कामो वाम ।[3] गद्य, पञ्चम अक, पृ० २६१
४. गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ॥ ५/१६
५. न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ ५/३१
६. धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत् ।
   यस्य प्रतीकार निरर्थकत्वात् कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ॥ ५/४०
७. पक्षविकलश्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः सरश्च जलहीनम् ।
   सर्पश्चोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च ॥ ५/४१
८. शून्यैर्गृहै खलु समा पुरुषा दरिद्रा. कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः ।
   यद्दृष्ट-पूर्वजनसंगम-विस्मृतानामेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः ॥ ५/४२
९. शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता । ५/४३

---

१. ण चन्दादो आदवो होदि । चतुर्थ अंक, पृ० २१५
२. अकन्दसमुत्थिदा पउमिणी, अवञ्चओ वाणिओ, अचोरो सुवण्णआरो, अकलहो गामसमागमो, अलुद्धा गणिआ त्ति, दुक्करं एदे सभावीअन्ति ।
   पंचम अंक, पृ० २६१
३. कामो वामो त्ति । पञ्चम अंक, पृ० २३५

षष्ठ अंक

१. दैवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या । ६।२

२. बलवता सह को विरोधः । ६।२

३. वरं व्यायच्छमो मृत्युर्न ग्रहीतस्य बन्धने । ६।१७

४. त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति ॥ ६।१८

५. भीताभयप्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य ।
यदि भवति भवतु नाशस्तथापि च लोके गुण एव ॥[1] ६/१६

सप्तम अंक

१. न कालमपेक्षते स्नेहः । गद्य, सप्तम अंक, पृ० ३७४

अष्टम अंक

१. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम् ॥[2] ८।१

२. पञ्चजना येन मारिताः स्त्रियं मारयित्वा ग्रामो रक्षित ।
अबलश्च चाण्डालो मारितः अवश्यं स नरः स्वर्गं गाहते ॥[3] ८।२

३. शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किं मुण्डितम् ।
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ॥ ८।३

४. विपर्यस्तमश्वष्टं शिलाशकलवर्ष्मभिः ।
मांसवृक्षैरियं मूर्वभाराक्रान्ता वसुन्धरा ॥ ८।६

५. स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्धते मदनः ।
सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुः नैव वा भवति ॥ ८।६

६. किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥ ८।२६

७. विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः ॥ ८।३०

८. सुचरितचरितं विशुद्धदेहं नहि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति ॥ ८।३२

९. यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि ।
शोभा हि पणस्त्रीणां सदृशजनसमाश्रयः कामः ॥ ८।३३

१०. धिक् प्रीतिं परिभवकारिकामनार्याम् । ८।४१

---

१. भीदाभअप्पदाणं दत्तस्स परोवआर रसिअस्स ।
जइ होइ होउ णासो तहवि अ लोए गुणो ज्जेव ॥ ६।१६

२. विसमा इन्दिअ-चोला हलन्ति चिलसञ्चिद धम्मं ॥ ८।१

३. पञ्चज्जण जेण मालिदा इत्थिअ मालिअ गामं लक्खिदे ।
अबल अ चण्डाल मालिदे अवशंवि शे णल शग्ग गाहदि ॥ ८।२

११. हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मानुष ।
कि करोति राजकुल तस्य परलोको हस्ते निश्चलः ॥[1] ८।४७

नवम अंक

१. संक्षेपादवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरत ॥ ९।४
२. नह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् । ९।१६
३. यथैव पुष्प प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति ।
एव मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ ९।२६
४. *सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यालापी न भवति पातकी ।*
सत्यमिति द्वे अपि अक्षर मा सत्यमलीकेन गूहय ॥[1] ९।३५
५ ईदृशैं श्वेतकाकीयै राज' शासनदूषकैः ।
अपापाना सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च ॥ ८।४१
६ मूले छिन्ने कुत पादपस्य पालनम् ।[1] गद्य, नवम अक पृ० ५१७
७ नृणा लोकान्तरस्थाना देहप्रतिकृतिः सुत ॥ ९।४२

दशम अक

१. सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थिताना चिन्तायुक्तः ।
विनिपतिताना नराणा प्रियकारी दुर्लभो भवति ॥[1]
२ अभ्युदये अवसादे तथैव रात्रिन्दिवमहतमार्गा ।
उद्दामेव किशोरी नियति खलु प्रतीप्टं याति ॥ १०।१६
३. राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य ॥ १०।२०
४ ये अभिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डालाः ।[1] १०।१२
६ इदं तत् स्नेहसर्वस्व सममाढ्यदरिद्रयो ।
अचन्दनमनौशीर हृदयस्यानुलेपनम् ॥ १०।१३
७. हन्त [1] ईदृशो दासभावः, यत् सत्यमपि न प्रत्याययति ।[1]
गद्य, दशम अक, पृ० ५५२
८. *आर्यचारुदत्त [1] गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्ति लभेते, कि पुनर्जना मरणभीरवो मानवा वा । लोके कोऽपि उत्थितः पतति, कोऽपि पतित उत्ति-*

---

१ हत्थशञ्जदो मुहशञ्जदो इन्दिअशञ्जदो शे क्खु माणुशे ।
कि कलेदि लाअउले तश्श पललोओ हत्थे णिच्चलो ॥ ८।४७
२. सच्चेण सुहं क्खु लब्भइ सच्चालावि ण होइ पादई ।
सच्च त्ति दुवेवि अक्खरा मा सच्चं अलिएण गूहेहि ॥ ९।३५
३. मूले छिण्णे कुदो पादवस्स पालणं । गद्य, नवम अंक, पृ० ५१७
४ सव्वे क्खु होइ लोए लोओ सुहसण्ठिदाण तत्तिल्ला ।
विणिवडिदाण णलाए पिअकाली दुल्लहो होदि ॥ १०।१५
५. जे अहिभवन्ति साहू ते पावा ते अ चाण्डाला ॥ १०।२२
६ हीमादिके ! ईदिशे दाशभावे, ज सच्च क पि ण पत्तिआअदि ।
गद्य, दशम अक, पृ० ५५५

ष्ठति ।[1] दशम अंक, पृ० ५६२

९. अहो प्रभावः प्रियसंगमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत ? ॥ १०।४३

१०. सर्ववार्जवं शोभते । दशम अंक, पृ० ५८१

११. शत्रु कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः ।
शस्त्रेण न हन्तव्यः उपकारहतस्तु कर्तव्यः ॥ १०।५५

१२. समीहितसिद्धये प्रवृत्तेन ब्राह्मणः अग्रतः कर्तव्यः ।[2] दशम अंक, पृ० ५६४

१३. कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलम् ।
अन्योन्यप्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय-
न्नेव क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः ॥ १०।५६

---

१. अज्जचारुदत्त ! गअणदले पडिवसन्ता चन्दसुज्जा वि विपत्तिं लहन्ति, किं उण जणा मलणभीरुआ माणवा वा । लोए कोवि उट्ठिदो पडदि, कोवि पडिदो उट्ठेदि । दशम अंक, पृ० ५५२

२. समीहिद सिद्धिए पउत्तेण बम्हणो अग्गदो कादव्वो । दशम अंक, पृ० ५६४